महाभारत

शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासिक,
मौषल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व्व
समाप्त ।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास-कृत मूल संस्कृतसे
योग्य पण्डितोंके द्वारा
अनुवादित
और
११७। १ बहूबाजार ष्ट्रीट, कलकत्तेसे
श्री शरच्चन्द्र सोमके द्वारा
प्रकाशित ।

द्वितीय संस्करण ।

VOL. III.

कलकत्ता ;
श्री माणिकचन्द्र चक्रवर्त्तीके द्वारा
११७। १ बहूबाजार ष्ट्रीट,—कलिज मेशिन प्रेससे मुद्रित ।

१९०७ ।

महाभारत ।
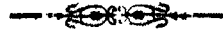
शान्तिपर्व्व ।

राजधर्म-प्रकरण ।

नर, नारायण, व्यासदेव और सरस्वती देवीको प्रणाम करके महाभारत पुराणकी कथा कहे ।

महात्मा राजा धृतराष्ट्र, विदुर, भरत-कुलकी स्त्रियें और पाण्डव लोग दुर्य्योधन आदि मृत सुहृद पुरुषोंको जलदानादिक क्रिया विधि-पूर्व्वक करके शोकित चित्तसे एक महीनेतक नगरके बाहर गङ्गा तीरपर वास करने लगे। उस ही समय साधुओंमें श्रेष्ठ महात्मा नारद, वेदव्यास, देवल, देवस्थान, और कण्व आदि सिद्ध, ब्रह्मर्षि, महर्षि तथा उन महात्माओंके मुख्य मुख्य शिष्य तर्पणसे निवृत्त धर्मराज युधिष्ठिरके समीप उपस्थित हुए साधु, पवित्र, शुद्ध-बुद्धिवाले तथा वेद जाननेवाले, गृहस्थ और स्नातक ब्राह्मणोंने आकर कुरुसत्तम युधिष्ठिरका दर्शन किया। अनन्तर वे सब वहांपर इकट्ठे हुए। महर्षि लोग यथा उचित रीतिसे पूजित होकर सुन्दर आसनोंपर बैठ गये। इसी भांति सैकड़ों सहस्रों ब्राह्मण लोग उस समयके अनुसार पूजा और दान ग्रहण करके पवित्र भागीरथीके तीरपर स्थित हुए और शोकसे व्याकुल राजा युधिष्ठिरको घेरकर उनके चारों ओर बैठके धीरज धारण कराते हुए उनके सङ्ग वार्त्तालाप करनेमें प्रवृत्त हुए। देवऋषि नारद कृष्णद्वैपायन आदि मुनियोंसे सङ्ग मिलकर धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरसे उस समयके अनुसार यही वचन बोले, महाराज! आपने अपने बाहुबलके प्रभाव और कृष्णकी प्रसन्नतासे धर्म्म-पूर्व्वक इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है; प्रारब्धसे ही आप इस महाभयङ्कर संग्रामसे जीवित मुक्त हुए हैं; इससे इस समय आप क्षत्रिय धर्म्ममें रत होकर सन्तुष्ट तो हैं? आप युद्धभूमिमें सम्पूर्ण शत्रुओंको पराजित करके इस समय इष्टमित्रोंके आनन्दको बढ़ाते तो हैं? आपने इस समय सम्पूर्ण राज-लक्ष्मी प्राप्तकी है, इससे शोकादि क्लेश तुम्हारे चित्तको दुःखित तो नहीं करते हैं?

राजा युधिष्ठिर देवर्षि नारदके ऐसे वचनोंको सुनकर बोले, हे भगवन्! कृष्णके बाहु-बलके सहारे ब्राह्मणोंको प्रसन्नता और भीम अर्जुनके पराक्रमसे मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है, यह ठीक है; परन्तु लोभके वशमें होकर जातिके पुरुषोंके नाश करनेसे मेरा चित्त सदा दुःखित रहता है। देखिये सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पांचों पुत्र,—इन सम्पूर्ण प्रिय पुत्रोंके युद्धमें मारे जानेसे मेरी विजय लाभ भी पराजयके समान ही मालूम हो रही है। मेरे भाईकी भार्या वृष्णि-कुल नन्दिनी सुभद्रा मुझे क्या कहेगी! और तीनों तापके हरनेवाले, मधुसूदन कृष्ण भी जब यहांसे द्वारकापुरीमें जायगे, तब उनको द्वारिकावासी लोगोंने भी क्या कहेंगे? यह देखिये। हम लोगोंके प्रियकार्य्यमें सदा रत

और हितकारिणी द्रौपदी देवीके पिता, भ्राता और पुत्र मारे गये हैं, उसहीसे यह अत्यन्त कातर होके रुदन करती हुई मेरे चित्तको दुःखित कर रही हैं। हे भगवन्! मैं आपसे और भी एक दुःखका विषय कहता हूं, आप सुनिये। मेरी माता कुन्ती देवीने एक बात गोपनकी थी, उससे मैं इस समय अधिक दुःखसे व्याकुल होरहा हूं। जो बुद्धिमान इस पृथ्वीके बीच अद्वितीय रथी कहके विख्यात थे, जिनकी गति और पराक्रम सिंहके समान था। जो दश हजार हाथियोंके समान बलशाली, दयावान, दाता और सदा व्रताचरणमें रत, अत्यन्त पराक्रमी, निर्भय-चित्तवाले, क्रुद्ध-स्वभाव, मानी और धृतराष्ट्र पुत्रोंके आश्रय स्वरूप थे। जो अद्भुत पराक्रम प्रकाशित करनेवाले कृती, चित्रयोधी, शीघ्र अस्त्र चलानेमें समर्थ महाबलवान और प्रतियुद्धमें हम लोगोंके चित्तमें शंसय उत्पन्न करते थे; वह हम लोगोंके भ्राता थे और गुप्त रूपसे उन्होंने कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। आज मृत पुरुषोंको जल देनेके समय कुन्तीने कहा, कि कर्ण सूर्यके प्रभावसे मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए थे। माताने ऐसे गुणवान पुत्रको जन्मते ही मञ्जूषामें रखकर गङ्गाके स्रोतमें बहा दिया था। हे ऋषिसत्तम! जिसे सब कोई सूतवंशमें उत्पन्न हुआ समझते थे, वह कुन्तीके ज्येष्ठपुत्र हम लोगोंके सहोदर भाई थे। हे महर्षि! मैंने बिना जाने ही जो अपने भाईका वध किया है, इस ही कारण मेरा शरीर शोकरूपी अग्निसे इस प्रकार भस्म हुआ चाहता है, जैसे अग्नि रूईको भस्म कर देती है। कर्ण हम लोगोंके सहोदर भ्राता थे, इस वृत्तान्तको मैं तथा भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव कोई भी नहीं जानते थे; परन्तु श्रेष्ठ व्रत करनेवाले कर्ण हम लोगोंको अपना भ्राता ही जानते थे! मैंने सुना है, कि मेरी माता कुन्ती देवी हम लोगोंके विषयमें शान्ति स्थापित करनेकी इच्छासे कर्णके समीप जाके उनसे बोली कि "हे कर्ण! तुम मेरे पुत्र हो"। माताके वचनको सुनकर महात्मा कर्णने उनकी इच्छा पूर्ण न की। मैंने ऐसा सुना है, कि अन्तमें कर्णने यह उत्तर दिया था, कि "मैं इस उपस्थित युद्धमें दुर्य्योधनको किसी भांति परित्याग न कर सकूंगा, यदि मैं ऐसा कर्म करूं तो मेरी नीचता नृशंसता और कृतघ्नता प्रकाशित होगी। विशेष करके यदि मैं तुम्हारे मतके अनुसार युधिष्ठिरके सङ्ग सन्धि करूं, तो सब कोई मुझे अर्जुनसे भयभीत हुआ समझेंगे; इससे मैं कृष्णके सहित अर्जुनको पराजित करके पश्चात् युधिष्ठिरके सङ्ग सन्धि करूंगा।" महाबाहु कर्णके ऐसे वचनको सुनकर अन्तमें माताने उनसे यह वचन कहा, "हे पुत्र! तब तुम केवल अर्जुनके ही सङ्ग युद्ध करना; और अर्जुनके अतिरिक्त मेरे अन्य जो चार पुत्र हैं, उन्हें युद्धमें अभयदान करो!" उस समय कर्ण हाथ जोड़के भयसे कांपते हुए मातासे यह वचन बोले,—"हे देवी! यदि तुम्हारे अन्य चारों पुत्र युद्ध करते असमर्थ होकर मेरे वशमें भी होजावेंगे, तोभी मैं तुम्हारे अन्य चारों पुत्रोंका प्राण नाश नहीं करूंगा। इस युद्धमें मेरे अथवा अर्जुनके मारे जानेपर भी तुम्हारे पांच पुत्र उपस्थित रहेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।" अनन्तर पुत्रोंके कल्याणकी इच्छा करनेवाली माताने फिर कर्णसे कहा "हे पुत्र! जाओ तुम जिसके मङ्गल कामनाकी अभिलाषा करते हो, उस भरण-कर्त्ता दुर्य्योधनादिकोंके कल्याण साधनके कार्य्यको करनेमें प्रवृत्त रहो; उस विषयमें मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है"—ऐसा वचन कहके मेरी माता कुन्तीदेवी कर्णको परित्याग करके अपने गृहमें चली आई थी। हम लोगोंके बड़े सहोदर भ्राता महाबाहु कर्ण अपने भाई अर्जुनके हाथसे मारे गये हैं; परन्तु इस

गुप्त-वृत्तान्तको कुन्तीदेवी अथवा कर्ण,—इन दोनोंमेंसे किसीने भी प्रकाशित नहीं किया था, इस कारण मेरे सहोदर भ्राता महाधनुर्द्धर कर्ण अपने भाई अर्ज्जुनके हाथसे मारे गये। हे द्विजसत्तम! मैंने माताके मुंहसे इस समय वह वृत्तान्त सुना है, कि कर्ण हम लोगोंके ज्येष्ठ भ्राता थे। जबसे मैंने इस वृत्तान्तको सुना है, तभीसे भ्रातृहत्याके कारण शोकसे मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल होरहा है क्यों कि कर्ण अर्ज्जुनकी सहायतासे मैं देवतोंके सहित इन्द्रको भी जीत सक्ता। कौरवोंकी सभाके बीच जब धृतराष्ट्रके दुष्ट पुत्रोंने हम लोगोंका बहुत अपमान किया उस समय अकस्मात् मेरे चित्तमें क्रोध उत्पन्न हुआ था, परन्तु कर्णके दोनों चरणोंको देखते ही शान्त होगया; क्यों कि कर्णके दोनों चरण मेरी माता कुन्तीदेवीके चरणके समान ही थे। उनके पांव मेरी माताके पांव समान कैसे हुए, इस बातकी मैंने बहुत ही खोज की परन्तु मुझे कुछ भी न मालूम हुआ। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ आप सब बातोंके जाननेवाले हैं और संसारकी भूत भविष्य कालकी सम्पूर्ण घटनाओंको जानते हैं, इससे मैं आपसे पूछता हूं, कि मेरे भाई कर्णके रथके चक्रको पृथ्वीने क्यों ग्रास किया था, और किस भांतिसे उन्हें शाप मिला था? मैं इन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे आप इस विषयके सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन कीजिये।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिरने ऐसा वचन कहा तब देवऋषि नारदने कर्णके शापके विषयमें जो कुछ घटना हुई थी, उन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको कहना आरम्भ किया।

नारद मुनि बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है युद्धभूमिमें अर्ज्जुन और कर्णसे कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं थे, परन्तु मैं तुम्हारे समीप देवताओंसे भी गोपनीय वृत्तान्त वर्णन करता हूं तुम चित्त लगाके सुनो, हे राजन्! किसी समय ब्रह्माने अपने मनमें चिन्ता की, कि ये सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष शस्त्रसे मरकर किस भांति स्वर्ग लोकमें गमन करेंगे, ऐसा ही विचार करके कुन्तीको कन्या अवस्थामें क्षत्रियोंके बीच युद्धका रूपी अग्नि प्रगट करनेवाला एक गर्भ उत्पन्न किया! उस गर्भसे जो बालक उत्पन्न हुआ था वही समयके अनुसार सूतपुत्र कहके विख्यात हुआ और अङ्गिरा वंशमें मुख्य द्रोणाचार्य्यके निकट धनुष विद्या सीखा था; परन्तु वह भीमसेनके बल, अर्ज्जुनके अस्त्र लाघव, तुम्हारी बुद्धि और नकुल, सहदेवके विनय, विशेष करके बालक अवस्थामें श्रीकृष्णके साथ अर्ज्जुनकी मित्रता और प्रजाका तुम्हारे ऊपर अनुराग देखकर दुःखित हुए थे। अनन्तर कर्णने भी बालक अवस्थामें दुर्य्योधनके साथ मित्रता की, परन्तु दैवी संयोगके कारण वह तुम लोगोंके द्वेषी हुए। तिसके अनन्तर कर्णने अर्ज्जुनको धनुर्वेदमें सबसे श्रेष्ठ देख गुप्तरीतिसे द्रोणाचार्य्यके निकट जाकर कहा, हे आचार्य्य! मैं रहस्य, प्रयोग और प्रतिसंहारके सहित ब्रह्मास्त्र सीखनेकी इच्छा करता हूं क्यों कि मेरे मनमें अर्ज्जुनके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषा है, पुत्र और शिष्योंके ऊपर आपकी समान ही प्रीति है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, जिससे बुद्धिमान क्षत्रियोंके बीच कोई मुझे अस्त्रहीन न कह सके।

द्रोणाचार्य्यने कर्णके वचनोंको सुनकर उसके चित्तके विषयको जान लिया, और अर्ज्जुनके पक्षपाती होकर यह वचन बोले,—व्रताचरण करनेवाले ब्राह्मणों और तपस्यामें निष्ठा

वान क्षत्रियोंको ही ब्रह्मास्त्र जानना उचित है; दूसरी जातिके मनुष्योंको ब्रह्मास्त्र सीखनेका अधिकार नहीं है। जब द्रोणाचार्य्यने ऐसा उत्तर दिया, तब कर्ण उनका सम्मान करते हुए उनकी अनुमतिसे महेन्द्र पर्व्वत पर वास करनेवाले परशुरामजीके निकट गये; कर्णने परशुरामके समीप जाके शिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, कि "मैं भृगुवंशीय ब्राह्मण हूं।" परशुरामने उनका नाम गोत्र और शुभागमनका विषय पूंछ कर आदर पूर्व्वक उन्हें अपने आश्रम पर ठहराया। कर्ण प्रसन्न चित्तसे वहां रहने लगे, वह जब परशुराम जीके निकटमें जाकर महेन्द्र पर्व्वत पर निवास करने लगे, तब धीरे धीरे देवता गन्धर्व्व, यक्ष और सब राक्षसोंके संग उनसे मिलाप हुआ। वहां पर रहके कर्णने भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ परशुराम जीसे विधिपूर्व्वक सम्पूर्ण महा अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या सीख ली; और देवता, दानव तथा राक्षसोंके अत्यन्त ही प्रीति पात्र हुए। अनन्तर किसी समय सूर्य्यपुत्र कर्ण तलवार और धनुष बाण धारण करके समुद्रके निकटमें ही एक आश्रमके समीप भ्रमण कर रहे थे, उस समय दैवके वशमें होकर बिना जाने उन्होंने एक अग्निहोत्र करनेवाले ब्रह्मवादी ब्राह्मणके यज्ञकी गऊका प्राण नाश किया; कुछ समय बीतने पर जब कर्णने जाना, कि बिना जाने भूलसे मैंने ब्राह्मणकी गऊका बध किया है; तब उस ब्राह्मणके निकट जाके बहुत बिनती और प्रार्थनासे उस तपस्वी ब्राह्मणको प्रसन्न करनेके वास्ते यह वचन बोले,—"हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने बिना जाने आपकी गऊका बध किया है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।" जब वह बार बार उस ब्राह्मणकी प्रार्थना करके ऐसा ही बचन कहने लगे, तब वह ब्राह्मण बहुत ही क्रुद्ध हुआ और कठोर बचनोंसे कर्णकी निन्दा करके यह वचन बोला, रे दुष्टबुद्धिवाले नीच पुरुष! तेरा बध करना ही उचित है। जो हो, तू अब अपने किये हुए पाप कर्म्मके फलको भोग कर; तू जिसके ऊपर सदा ही ईर्षा किया करता है, और जिसके वास्ते दृढ़ताके सहित अस्त्र शस्त्रोंका अभ्यास कर रहा है,—रे पापी! उसके सङ्ग जब तेरा द्वैरथ युद्ध उपस्थित होगा, उस समय तेरे रथके चक्रको पृथ्वी ग्रास करेगी; रथचक्रको जब पृथ्वी ग्रास कर लेगी, और तू उस ही शोक तथा दुःखसे मोहित होजावेगा; उस ही समय तेरा शत्रु दृढ़ पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारा शिर काटेगा। अरे अधम पुरुष! इस समय तू यहांसे चलाजा। रे मूढ़! जैसे तूने प्रमत्त होकर मेरे यज्ञकी गऊका प्राणनाश किया है, वैसेही तेरे प्रमत्त अव स्थामें ही तेरा शत्रु तेरे शिरको काटके पृथ्वीमें गिरावेगा।" जब उस ब्राह्मणने कर्णको इस प्रकार शाप दिया, तब कर्ण अनेक गऊ और रत्न आदि वस्तुओंसे उस ब्राह्मणको यत्नपूर्व्वक प्रसन्न करने लगे। तब यह तपस्वी ब्राह्मण बोला, "मेरे मुखसे जो वचन निकला है, उसे सम्पूर्ण लोकके प्राणी इकट्ठे होकर भी मिथ्या करनेमें समर्थ नहीं हैं।"—ऐसा विचार कर चाहे तुम यहांसे प्रस्थान करो, चाहे इसी स्थानमें निवास करो। ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनके कर्ण अत्यन्त दीनताके सहित नीचा शिर करके उस ब्राह्मणके आश्रमसे बाहर हुए और विप्रशापसे भय भीत होकर चिन्ता करते हुए उन्होंने परशुराम जीके निकट गमन किया।

२ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ तपस्वी परशुरामजी एकाग्रचित्तसे कर्णके बाहुवीर्य्य, शिक्षानुराग, इन्द्रियसंयम और गुरुशुश्रूषासे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्होंने

स्थिरताके सहित अस्त्रशस्त्रोंके सम्पूर्ण रहस्यको प्रयोग और निवारण करनेके कौशल सहित सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्रका उपदेश किया। तिसके अनन्तर अद्भुत पराक्रमी कर्ण समस्त अस्त्र शस्त्रोंको जानके प्रसन्नतापूर्व्वक परशुरामके आश्रममें रहके धनुर्वेदमें विशेष परिश्रम करने लगे। किसी समय कर्णके सहित परशुरामजी आश्रमके निकट भ्रमण करते करते उपवासके क्लेशसे थक गये। अनन्तर विश्वासपात्र तथा स्नेह भाजन अपने शिष्य कर्णको जङ्घापर शिर रखके सोगये। जब परशुरामजी निद्रित हुए तब मांस मूत्र रुधिर तथा पुरीष भोजन करनेवाला एक भयङ्कर कोड़ा कर्णके समीप आके रुधिर पीनेकी इच्छासे उनके जङ्घेको छेद कर लोहू पीने लगा; कर्ण गुरुके भयसे न तो उसे दूर फेंक सके और न उसका बध कर सके। हे राजेन्द्र! कर्णने केवल परशुरामकी निद्रा-भङ्ग होनेकी शङ्का करके अपने घावकी पीड़ाको धीरज धरके सहन किया और तनिक भी विचलित न होकर परशुरामजीके शिरको अपने जङ्घेके ऊपर धारण किया। जब कर्णके जांघके घावसे रुधिर बहके महातेजस्वी परशुरामजीके शरीरमें लगा, तब वह निद्रासे जागके उठे और कर्णसे बोले, कि तुमने यह क्या किया? हाय! मेरा शरीर इस समय अपवित्र होगया! जो हो, अब तुम भय त्यागकर इसका यथार्थ कारण मुझसे वर्णन करो? अनन्तर कर्णने जिस प्रकार वह कोड़ा जङ्घाको छेदकर मांस रुधिरके बीच प्रविष्ट हुआ था, वह वृतान्त परशुरामजीको सुना दिया। इसके अनन्तर परशुरामजीने देखा, आठ पांव और तीक्ष्ण दांतोंसे युक्त सुईके समान, रुवोंसे पूरित कायसे सिकुड़ा हुआ सूकरके समान आकृतिवाला अलर्क नाम एक कोड़ा कर्णके घावके भीतर स्थित है। उसने परशुरामके दृष्टिमात्रसे ही विकल होके उस रुधिरमें ही फंसके प्राण त्याग किया; उस समय उसकी मृत्यु अद्भुत रूपसे दीख पड़ी। उसके अनन्तर आकाशमें मेघमण्डलके बीच काला स्वरूप, लाल गर्दन और भयङ्कर मूर्त्तिवाला एक राक्षस दीख पड़ा। वह सफल मनोरथ होकर हाथ जोड़के परशुरामसे यह वचन बोला, हे भृगुकुल भूषण परशुराम! आपका कल्याण होवे इस समय अब मैं अपने योग्य स्थानपर गमन करूंगा। हे मुनिसत्तम! आपने मुझे इस नरकसे मुक्त करके मेरा बहुत ही प्रियकार्य्य किया है, मैं आपको प्रणाम करता हूं।"

महाबाहु प्रतापी जमदग्निपुत्र परशुरामने उसका ऐसा वचन सुनके उससे पूछा, कि "तुम कौन हो और किस कारणसे नरकमें पड़े थे"? यह समाचार मेरे समीप वर्णन करो। वह कहने लगा, हे तात! सतयुगमें मैं दंश नामक एक महान् राक्षस था; मेरी अवस्था तुम्हारे पूर्व्वपितामह महर्षि भृगुके समान ही थी। अनन्तर मैंने महर्षि भृगुकी प्यारी स्त्रीको बलपूर्व्वक हरण किया, इसीसे महात्मा भृगुके शापसे कोड़ा होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा। हे परशुराम! अनन्तर तुम्हारे पितामह महर्षि भृगु क्रोधित होकर मुझसे यह वचन बोले, अरे पापी! "तू महाघोर नरकमें पड़के सदा मलमूत्र रुधिर और मांसभक्षी होगा।" उनका ऐसा दारुण वचन सुनके मैंने उनसे कहा, हे ब्राह्मण! कितने दिनोंमें मैं तुम्हारे इस शापसे मुक्त होऊंगा? मेरे वचनको सुनके भगवान् भृगु मुनि बोले, कि "मेरे कुलमें राम नामक जो महात्मा पुरुष उत्पन्न होगा, उसके दर्शनसे तूं शापसे छूटेगा।" हे राम! इस ही कारणसे मैं दुष्टात्मा लोगोंकी भांति इस नीच गतिको प्राप्त हुआ था; अब आपके दर्शनसे इस पापयोनिसे मुक्त हुआ हूं। वह राक्षस परशुरामजीके निकट अपना सम्पूर्ण वृतान्त इसी भांति वर्णन कर उन्हें प्रणाम करके अपने स्थानपर

गया। अनन्तर परशुराम जी क्रुद्ध होके कर्णसे बोले, अरे मूढ़! तेरा धीरज देखके मुझे बोध होता है; कि तू क्षत्रिय है, क्यों कि ब्राह्मण जाति कभी भी बहुत कष्ट नहीं सह सक्ती; इससे तू निर्भय होके अपना सत्य वृतान्त वर्णन कर। !

अनन्तर कर्ण शाप भयसे डरके गुरुको प्रसन्न करनेकी अभिलाषासे यह वचन बोले, हे भार्गव! ब्राह्मण और क्षत्रियके मेलसे सूत जाति प्रकट भई है; मुझे भी आप उस ही सूत कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष समझिये; क्यों कि इस ही कारणसे सब कोई मुझे राधापुत्र कर्ण कहके आवाहन करते हैं। हे ब्राह्मण! आप मुझ अस्त्रलोभी पुरुषके ऊपर प्रसन्न होइये। वेद और विद्या देनेवाले, गुरु जो पिता कहके वर्णन किये गये हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; इस ही कारणसे मैंने आपके निकट भार्गव गोत्रीय ब्राह्मण कहके अपना परिचय दिया था। भृगुवंशिय श्रेष्ठ परशुराम जो कर्णके ऐसे वचनको सुनके अन्तःकरणसे क्रोधित हुए परन्तु बाहरी भावसे हंसके उस पृथ्वीमें गिरे, भयसे कांपते, दोनों हाथ जोड़े तथा अत्यन्त दीनभावसे युक्त कर्णसे यह वचन बोले। अरे मूढ़! तूने जब अस्त्रलोभसे मेरे समीप मिथ्या व्यवहार किया है, तब तेरा सीखा हुआ सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे अन्तकालमें भूल जायगा; परन्तु जबतक तू अपने समान वीर योद्धाके सङ्ग रणभूमिमें युद्ध करते हुए विपद-ग्रस्त नहीं होगा, उस मृत्युकालके अति रिक्त ये सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे स्मरण रहेंगे; क्यों कि ब्रह्मास्त्र ब्राह्मणके सिवा अन्य किसी जातिके पुरुषोंको मृत्युके समय स्मरण नहीं रहता, तौभी इस पृथ्वीके बीच कोई क्षत्रिय तेरे समान शूरवीर योद्धा नहीं होगा। इस समय अब तुम इस स्थानसे गमन करो, क्यों कि मिथ्या व्यवहार करनेवाले पुरुष इस स्थानमें रहने योग्य नहीं हैं। कर्ण परशुरामजीके ऐसे न्याय युक्त वचनको सुनके वहांसे विदा हो दुर्योधनके समीप गमन करके उनसे यह वचन बोले, "हे महाराज! अब मैं कृतास्त्र होके आया हूं।

३ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! इसी भांति कर्ण भृगुकुल भूषण परशुराम जीके निकटसे अस्त्र विद्या सीखनेके अनन्तर दुर्योधनके सङ्ग मिलके परम आनन्दसे अपने जीवनका समय व्यतीत करने लगे। किसी समयमें पृथ्वीके सैकड़ों राजा कलिङ्ग देशमें राजा चित्राङ्गदकी राजधानी सौभाग्ययुक्त "राजपुर" नाम नगरीमें स्वयम्वर सभाके बीचमें कन्या प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इकट्ठे हुए थे, राजा दुर्योधन भी स्वयम्वरका वृतान्त सुनके कर्णको सङ्ग लेकर सुवर्णभूषित रथमें बैठ कर राजाओंकी मण्डलीके बीच उपस्थित हुए अनन्तर उस स्वयम्वरके महोत्सवको सुनके महाराज जरासन्ध, शिशुपाल भीष्मक, वक्र, कपोत-रोमा नील, दृढ़ पराक्रमी रुक्मी, स्त्रीराज्यके स्वामी महाराज शृगाल, शतधन्वा, अशोक, वीरनामा, भोजराज और इनके अति रिक्त दक्षिण, पूर्व और उत्तर देशीय बहुतेरे म्लेच्छाचारी राजा लोग कन्या प्राप्त होनेकी इच्छासे उस स्वयम्वरके बीच उपस्थित हुए। वे सम्पूर्ण राजा लोग सुवर्णभूषित कवच और तपाये हुए जाम्बुनद सोनेके समान प्रकाशमान शरीरसे युक्त तथा सिंहके समान बलवान् थे, इसी भांति जब सम्पूर्ण राजा राज सभामें बैठ गये, तब राजकन्या सहेली और नपुंसकोंको सङ्ग लेकर रङ्गभूमि तथा स्वयम्वरकी सभामें प्रविष्ट हुई। तिसके अनन्तर राजाओंके नाम, गोत्र तथा वंशका वृतान्त दासियोंके मुखसे

सुनती हुई वह राजकन्या अन्य राजाओंकी भांति राजा दुर्य्योधनको भी अतिक्रम करके आगे बढ़ी, कुरुनन्दन दुर्य्योधनसे यह अपमान नहीं सहा गया, अनन्तर उन्होंने सम्पूर्ण राजाओंको असम्मानित करके उस राजकन्याको आगे बढ़नेसे निषेध किया और भीष्म तथा द्रोणाचार्य्यके आसरे तथा अपने बलके घमण्डसे उस राजकन्याको रथमें बैठा कर वहांसे प्रस्थान किया। शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी कर्ण कवच और अङ्गुलित्राणसे युक्त हो तलवार आदि अस्त्रशस्त्रोंको धारण करके रथ पर चढ़ कर दुर्य्योधनके पीछे पीछे गमन करने लगे, उसे देखकर राजाओंको मण्डलोंके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा। अनन्तर वे सम्पूर्ण राजा लोग कवच पहरके तथा अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण कर रथ पर चढ़के कर्ण और दुर्य्योधनके ऊपर इस भांति अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े जैसे बादल दो पर्व्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं। जब इस भांतिसे सम्पूर्ण राजा लोग सम्मुख उपस्थित हुए, तब पराक्रमी कर्णने एक एक बाणसे उन सम्पूर्ण राजाओंके धनुष बाणको काट काट पृथ्वीमें गिरा दिया। उस समय कोई कोई धनुष चढ़ाके तथा कोई कोई राजा गदा आदि अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके कर्णके सम्मुख उपस्थित हुए परन्तु योद्धाओंमें मुख्य कर्णने अपने हस्त लाघवसे बाण चला कर समस्त राजाओंको व्याकुल कर दिया, तथा कितनोंको धनुष रहित और कितनोंके सारथीका प्राण नाश करके उन सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया, उस समय सम्पूर्ण राजाओंका मनोरथ निष्फल होगया और वे लोग पराजित होकर स्वयं अपने रथके घोड़ोंको हांकते तथा कितने ही राजा अपने सारथियोंको "चलो! पीछे लौटो!„ ऐसा वचन कहते हुए रणभूमि छोड़कर भागने लगे।

नारद मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर! उस समय राजा दुर्य्योधन इसी भांति कर्णके भुजबलसे रक्षित होकर कन्या ग्रहण करके हर्षयुक्त तथा आनन्दित चित्तसे हस्तिनापुरमें आ विराजे।

४ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मगधदेशके राजा पराक्रमी जरासन्धने कर्णके बल-पराक्रमका वृत्तान्त सुनके उन्हें द्वैरथ युद्धके वास्ते आह्वान किया। अनन्तर परम अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले वे दोनों वीर नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। धीरे धीरे जब उन दोनों वीरोंके धनुष कट गये और तूणीर बाणोंसे रहित हुए तथा तलवार आदिक अस्त्र टूट गये, तब वे दोनों वीर रथसे उतरके आपसमें मल्लयुद्ध करने लगे। अनन्तर पराक्रमी कर्णने बाहुयुद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए जरासन्धके जरा राक्षसीके जोड़े हुए सन्धिस्थलको छितरा दिया, तब जरासन्ध अपने शरीरका विकृत भाव देखकर शत्रुता त्यागके कर्णसे यह वचन बोले, "हे कर्ण! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।" अनन्तर उस ही प्रसन्नताके कारण जरासन्धने कर्णको मालिनी नाम्नी नगरी दान किया। हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! शत्रुनाशन कर्ण पहिले केवल अङ्गदेशहीके राजा थे, तिसके अनन्तर जरासन्धकी दी हुई चम्पा अर्थात् मालिनी नगरीको भी दुर्य्योधनकी अनुमतिसे पालन करने लगे, वह सब वृत्तान्त तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है। महा बलवान तेजस्वी कर्ण केवल इसी भांति शस्त्र बलके प्रभावसे पृथ्वीके बीच विख्यात हुए थे, शेषमें देवराज इन्द्रने तुम्हारे हितकी अभिलाषासे कर्णके निकट जाके उनके शरीरसे ही उत्पन्न हुए अभेद्य कवच और कुण्डलका दान मांगा; उस समय कर्णने देवी माया

से मोहित होकर अपने शरीरसे उत्पन्न हुए उस अभेद कवच कुण्डलको देवराज इन्द्रको दे दिया था। महाराज! वह गर्भसे ही उत्पन्न हुए अपने शरीरके अभेदकवच और कुण्डलको दान करके ठगे गये थे; इसही कारण युद्धभूमि में श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनके हाथसे मारे गये। तौभी देखिये कि महात्मा परशुराम और होमकी गऊके प्राण नाश होनेसे ब्राह्मणके शाप, कुन्तीके वरदान, इन्द्रकी मायाकौशल, सभाके बीच भीष्मके अर्द्धरथी कहके पुकारे जानेका अपमान, शल्यके कठोर वचनोंसे तेज-हानि, और श्रीकृष्णचन्द्रके नीतिबल, वा उपायके एकत्र मिलित होनेसे तथा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने रुद्र, देवराज इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, महात्मा द्रोणाचार्य्यके निकटसे सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रशस्त्रोंको प्राप्त किया था; इसी ही कारण सूर्य्यके समान तेजस्वी सूर्य्य पुत्र कर्ण मारे गये हैं महाराज! तुम्हारे भ्राता पुरुषसिंह कर्ण इसी प्रकारमहात्मा-ओंके शापसे युक्त और वञ्चित हुए थे; तौ भी सम्मुख संग्राममें मारे गये; इससे उसके वास्ते अब आप शोक न कीजिये।

५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनमुनि बोले, देवऋषि नारद इतनी कथा सुनाके चुप होगये। अनन्तर राज-ऋषि युधिष्ठिर अत्यन्तही शोक और चिन्तासे मोहित होकर दुःखित चित्तसे बार बार सर्पकी भांति लम्बी सांस छोड़ते हुए आंखोंसे आंसू बहाने लगे। राजा युधिष्ठिरकी ऐसी दशादेखके शोक और दुःखसे विह्वल होकर कुन्ती देवी उस समयके अनुसार यह अर्थ-युक्त वचन बोली, हेतात युधिष्ठिर! तुम महा बुद्धिमान और वीर पुरुष हो; इससे तुम्हें इस भांतिसे शोकित होना उचित नहीं है; तुम शोक त्यागके मेरा वचन चित्त लगाके सुनो। तुम कर्णके भ्राता हो,—यह वृत्तान्त कर्णको विदित करानेके वास्ते पहिले कर्णके पिता भगवान सूर्य्यदेव और मैंने बहुत ही यत्न किया, अधिक क्या कहूं, तुम्हारे सङ्ग मेल करानेके वास्ते हम दोनोंने कर्णसे अत्यन्त ही बिनती करी थी; विशेष करके भगवान सूर्य्यने कर्णके हितकी अभिलाष करके जो कुछ वचन कहना उचित था, वह स्वप्नमें तथा मेरे सम्मुखमें कहे थे; परन्तु प्रीति प्रेम तथा नाना कारण दिखाके भी हम दोनों किसी भांति कृतकार्य्य न होसके। वह कालके वशमें होकर सदा तुम लोगोंके सङ्ग शत्रुता चरण करनेमें प्रवृत्त था, इससे मैंने भी उसके पराक्रमको देखनेकी इच्छासे उसके विषयका वृत्तान्त तुम्हारे समीप नहीं वर्णन किया। राजा युधिष्ठिर कुन्तीके वचनको सुन कर आंखोंमें आंसू भरके यह वचन बोले,—हे माता! तुमने जो इस विषयको छिपा रक्खा, इसी निमित्त इस समय मुझे इतना दुख तथा शोक हुआ है। ऐसा वचन कहते कहते महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त ही दुःखित हो कर यह वचन कहके सम्पूर्ण स्त्रियोंको शाप दिया, कि, "आजसे कोई स्त्री भी गूढ़ बिचा-रको छिपानेमें समर्थ न होगी" अनन्तर बुद्धि-मान राजा युधिष्ठिर पुत्र, पौत्र, सम्बन्धी तथा इष्ट मित्रोंकी मृत्युको स्मरण करके अत्यन्त ही व्याकुल हुए; वह धीरे धीरे शोक तथा दुःखसे अत्यन्त ही विकल होके धूएंसे व्याप्त अग्निकी भांति मन मलिन चित्त होकर बहुत चिन्ता करने लगे।

६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर महारथी कर्णको स्मरण करके शोक तथा दुःखसे व्याकुल होकर अत्यन्त ही चिन्ता

करने लगी। वह बार बार दुःख और शोकसे पीड़ित होकर लम्बी सांस छोड़ते हुए अर्जुनको सम्मुख देखकर यह वचन बोले,—हे अर्जुन! यदि हम लोग इसके पहिले वृष्णि और अन्धक प्रदेशमें जाके भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके अपनी जीविकाका निर्व्वाह करते तो जातिके पुरुषोंका नाश न होता; और न हम लोगोंको ऐसी दुर्गति ही होती। हम लोगोंके शत्रु कौरव लोग ही इस समय अधिक ऐश्वर्य्यवान हुए हैं, क्यों कि वे लोग क्षत्रिय धर्मके अनुसार सम्मुख संग्राममें मरके स्वर्ग लोकमे गये हैं; और जातिके लोगोंका वध करनेसे हम लोगोंका बल पुरुषार्थ घटगया है; क्यों कि जो पुरुष स्वयं अपना नाश करते हैं, उन्हें धर्म्म-लाभकी कौनसी सम्भावना है? इससे क्षत्रियोंके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है! और क्रोधको भी धिक्कार है, जिसके कारणसे हम लोगोंको इस भांति विपद्ग्रस्त होना पड़ा। इस समय मुझे यह खूबही निश्चय हुआ है, कि क्षमा इन्द्रियसंयम, पवित्रता, वैराग्य, स्तेय, अहिंसा और सत्य वचन आदि वनवासी ऋषि मुनियोंके व्यवहार ही उत्तम हैं; हम लोग केवल लोभ और मोहके वशमें होकर राज्य लोभकी लालसा तथा दम्भ और अभिमानके वशमें होकर ही ऐसी दशाको प्राप्त भये हैं। पृथ्वीके विजयकी अभिलाष करनेवाले बन्धुबान्धवोंको मरे हुए देखकर हम लोगोंका चित्त जैसा दुःखित हुआ है, उससे ऐसा बोध होता है, कि कोई तीनो लोकोंका राज्य देकर भी हम लोगोंको सन्तुष्ट नहीं कर सकता है। हम लोग राज्यके वास्ते पृथ्वीको तरह न त्यागने योग्य अवध्य स्वजनोंको मारकर भी इस समय जीवित हैं, मांसके लोभसे आपसमें लड़नेवाले कुत्तोंके समूहकी भांति राज्य लोभसे स्वजनोंका नाश करके हमको इस प्रकार अमङ्गल प्राप्त हुआ है; इससे अब इस समय इस राज्यरूपी मांसको ग्रहण करनेमें हमारी अभिलाषा नहीं होती है; वो इसको त्यागनाही उत्तम है; क्यों कि इस युद्धमें जो लोग मारे गये हैं, वे लोग सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य, सुवर्णके ढेर अथवा गज, घोड़े आदि समस्त वस्तुओंके वास्ते भी वध करनेके योग्य नहीं थे। परन्तु वे सब लोग कामना दुःख क्रोध तथा हर्षसे आत्माको युक्तकर मृत्युरूपी विमान पर चढ़के यमलोकको गये हैं। पिता सत्य, तितिक्षा और ब्रह्मचर्य्य आदि तपस्याओंके अनुष्ठानसे कल्याण भाजन पुत्रकी इच्छा करता है; इसी भांति माता भी उपवास, यज्ञ और व्रतादि नाना भांतिके माङ्गलिक कार्य्योंके अनुष्ठानसे गर्भिणी होकर दश महीने तक उस गर्भको धारण करती है। अनन्तर "क्या यह सन्तान कुशलसे जन्मेगी? क्या यह उत्पन्न होके जीवित रहेगी? क्या यह बलयुक्त और सर्व्वत्र सम्मानित होकर हमारे सुखका विधान करेगी?" मातायें इस जन्म और दूसरे जन्मके निमित्त (पुत्रके विषयमें) इसी भांति फल पानेकी आशा करती हुई सदा कातर रहती हैं। हाय! हम लोगोंके मरे हुए स्वजन तथा बान्धवोंकी माताओंके ये सम्पूर्ण मनोरथ अब निष्फल होगये; क्यों कि उन लोगोंके सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित युवा पुत्र राज्यादि बिना भोगेही युद्धभूमिमें मरकर यमलोकको चलेगये! इन सम्पूर्ण राजाओंके पिता माताओंने जिस समय उनके बल वीर्य्य और प्रभावके फल देखनेकी आशा की थी, उसही समय वे मारे गये। परन्तु वे सब सदा सर्व्वदा अनेक भांतिकी वासना तथा मनुष्योंसे युक्त और बहुत क्रोध तथा हर्षके वशमें रहनेके कारण किसी समयमें भी कदाचित मनुष्य जन्मके शुभ फलोंको न भोग सकेंगे; इससे मेरे विचारमें कौरव और पाञ्चालोंमेंसे जो लोग युद्धमें मारे गये हैं, उनके नाम सदाके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे नष्ट होगये हैं;

क्यों कि वैसे क्रोध और दाहके वशवर्ती पुरुष भी यदि शुभ लोकोंमें गमन करें, तो क्रोध मन्युसे युक्त आत्मावाला वधिक भी अपने जीवका नाश आदि कार्य करके शुभ लोकमें गमन कर सकते हैं! जो हो हम ही इन सम्पूर्ण प्राणियोंके नाशके मूल हैं; अथवा धृतराष्ट्र पुत्रोंके ऊपर यह समस्त दोष आरोपित किया जा सकता है।

दुर्य्योधन सदाही कपट-बुद्धि, द्वेषी और मायाजीवी था; हमारे निरपराध रहनेपर भी वह सदा हमसे असत् व्यवहार करता था, परन्तु क्या दुर्य्योधन और क्या हम कोई भी अपने पूर्ण मनोरथको सिद्ध नहीं कर सके! इससे इस युद्धमें दोनो ओरकी पराजयका होना ही स्वीकार करना पड़ेगा। दुर्य्योधन पहिले हम लोगोंके विशाल-ऐश्वर्य्यको देखकर पृथ्वीके राज्य, स्त्री, गीत-वाद्यका आनन्द सुख तथा अनगिनत रत्न, सम्पत्ति और अनेक भांतिके वस्तुओंसे सञ्चित कोष—इन सम्पूर्ण भोग्य वस्तुओंमेंसे कुछ भी उपभोग करनेमें समर्थ नहीं हुआ। उस समय उसने दीर्घदर्शी मन्त्री और सुहृद-पुरुष आदि किसीके वचनको भी नहीं सुना; हमसे सदा द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलते रहकर क्रोधके कारण प्रीति तथा सुख आदिको एकबारगी त्याग किया था। इसी भांति राजा धृतराष्ट्र भी सुबलपुत्र शकुनीके मुखसे हम लोगोंकी सम्पत्तिका समस्त वृत्तान्त सुनकर दुःखसे पीले तथा दुबले होगये थे, वह पुत्र-स्नेहके कारण महाबुद्धिमान पितामह भीष्म और विदुरके वचनका अनादर करके "दुर्य्योधन न्याय युक्त कार्य्यही कर रहा है,—" ऐसाही समझते थे और उस लोभी अशुचि और कामके वशवर्त्ती अपने पुत्रको नियममें स्थित न करके ही मेरी भांति क्षयकी दशाको प्राप्त हुए हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। परन्तु सदा पाप बुद्धिवाला दुर्य्योधन हमसे द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलकर युद्ध उपस्थित करके रणभूमिके बीच शत्रुके हाथसे अपने सहोदर भाइयोंका नाश कराके अपने बूढ़े माता पिताको शोकाग्निमें डालकर यश रहित हुआ है। दुर्य्योधनने युद्धकी इच्छाकर श्रीकृष्णके समीप हम लोगोंके विषयमें जैसे वचनोंका प्रयोग किया था, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा स्वजन होकर कौन पुरुष अपने कुटुम्ब तथा बन्धुबान्धवोंके विषयमें वैसे नीच वचनोंको कहेगा? सूर्य्य जैसे अपने प्रभावसे समस्त दिशाओंको जला देते हैं, वैसे ही हम भी युद्धमें स्वजन और बन्धुओंको नष्ट करके अपने दोषके कारणसेही सदाके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हुए। वह शत्रु नीचबुद्धि दुर्य्योधन हम लोगोंके निमित्त पूरा ग्रहरूप बना था, उसहीके वास्ते हमारे समस्त कुलका नाश हुआ! परन्तु हम लोग अवध्य पुरुषोंका वधकरके इस समय साधारण पुरुषोंके बीच निन्दनीय हुए हैं। राजा धृतराष्ट्रने उस नीचबुद्धि पापी कुलनाशी दुर्य्योधनको राज्यका स्वामी बनाया था, इस ही कारण इस समय उनको शोक करना पड़ता है। हाय! इस युद्धमें सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष मारे गये, धन भी चुक गया और हम लोग भी पापभागी हुए हैं। शत्रुओंको मारके हम लोगोंका क्रोध शान्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु शोक केवल मुझे ही मोहित कर रहा है। हे अर्जुन! शास्त्रमें ऐसा वर्णित है, कि मनुष्यके दुष्कर्म्म मनुष्य समाजमें प्रकाश करनेसे अनुताप, दान, तपस्या, नाना भांतिके मांगलिक कर्म्मोंके अनुष्ठानसे अथवा वैभवको त्यागके तीर्थयात्रा श्रुति स्मृतिआदिके पाठ और जपसे घट सकते हैं; उनमेंसे सम्पूर्ण भाग्यमान पुरुष फिर पापमें लिप्त नहीं होते यह श्रुति-सम्मत वचन है। वेदमें ऐसा वर्णित है, सन्यासी जन्म मरणसे रहित होकर ज्ञान-रूपी दीपकके सहारे यथार्थ मार्ग पाकर ब्रह्म

लोककी जाते हैं; इससे हे शत्रुको तपानेवाले अर्ज्जुन! मैं तुम सब लोगोंकी सम्मति लेकर सुखदुःखको त्याग और मौनावलम्बन करके ज्ञानपथको आश्रय करके वनवासी बनूंगा। यह स्पष्टरूपसे वेदमें कहा है कि दान लेनेवाले पुरुष कदाचित सार धर्म्मको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होसकते, और मैंने भी उसे खूब निश्चय करके प्रत्यक्ष देख लिया है। इससे आसक्ति युक्त पुरुष वेदमें कहे हुए जन्म मरणके कारणरूपी जिस प्रकार पापाचार करते हैं; मैंने भी राज्य भोगकी अभिलाषासे युक्त होकर वैसा ही पापाचरण किया है; इससे इस समय मैं समस्त परिग्रह और राज्यभोग परित्याग करके ममताशून्य, शोकरहित और संगादिसे मुक्त होकर किसी वनके बीच गमन करूंगा। हे कुरुसत्तम, शत्रुसूदन अर्ज्जुन! इस समय तुम ही इस निष्कण्टक और कल्याणयुक्त समस्त भूमण्डल तथा पृथ्वीका राज्य करो, मुझे अब धन, राज्य तथा भोग आदि किसी भी वस्तुका प्रयोजन नहीं है। धर्म्मराज युधिष्ठिरके इतना वचन कहके चुप होने पर छोटे भाई अर्ज्जुनने इस प्रकार उत्तर दिया।

७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! जैसे कोई पुरुष किसीसे अपमानित होके सहनेको समर्थ नहीं होता, वैसे ही महापराक्रमी बोलनेवालोंमें मुख्य महातेजस्वी अर्ज्जुन युधिष्ठिरका वचन सुनके न सह सके, और अपना उग्रभाव दिखाके ओठ काटते हुए गर्व्वपूर्व्वक इस प्रकारसे नीतियुक्त वचन कहने लगे। आहो कैसा दुःख, कैसा कष्ट और क्या ही अद्भुत कातरता है, कि आप अमानुषी कार्य्य पूर्ण और अतुल ऐश्वर्य्य प्राप्त करके भी उसे परित्याग करनेमें प्रवृत्त होरहे हैं। धर्म्मराज! आप सम्पूर्ण शत्रुओंको नाश करके क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पृथ्वी हस्तगत करके भी इस समय क्यों बुद्धि-लाघवके कारण यह सब त्यागनेकी इच्छा करते हैं? इस संसारके बीच क्लीव वा दीर्घसूत्री किसी समयमें भी राज्य भोग नहीं कर सक्ता। परन्तु यदि आपकी इसी भांति त्याग धर्म्मकी इच्छा थी, तो क्यों क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण राजाओंको मारा? जो पुरुष भिक्षावृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेकी इच्छा करता है, वह कदापि पुत्र, कलत्र और पशु आदि सामग्रीको पाने तथा लोकसमाजमें विख्यात होनेमें समर्थ नहीं होता, क्यों कि अकल्याणके पात्र दरिद्र मनुष्य किसी कर्म्मसे भी ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते। महाराज! आप यदि इस समृद्ध राज्यको त्यागके पापयुक्त कापालिक-वृत्तिको अवलम्बन करके जीवन धारण करेंगे, तो लोकसमाज आपको क्या कहेगा! आप सम्पूर्ण जगतके स्वामी होकर यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य त्यागके कल्याणरहित दरिद्र और साधारण पुरुषकी भांति क्यों भिक्षावृत्ति अवलम्बन करनेकी इच्छा करते हैं? आप राजकुलमें जन्म लेकर बाहुबलसे समस्त पृथ्वीको पराजित करके भी केवल मूर्खताके कारण धर्म्म और अर्थ त्यागकर वनमें गमन करनेके वास्ते तय्यार हुए हैं! और आप यथार्थ अधिकारी होकर भी राज्य त्यागके वनमें चले जायेंगे, तब दुष्ट लोग राजा रहित पृथ्वीको सूनी पाकर हव्य कव्य आदि सुकृतकार्य्योंको लोप करेंगे, उससे आपको ही पापभागी होना पड़ेगा। राजा नहुषने निर्द्धनावस्थामें स्वयं नीचताके कार्य्योंको करके निर्द्धनताको धिक्कार देकर मुनियोंके कर्त्तव्य कर्म्मको तुच्छ कहके वर्णन किया है! और अगाड़ीके वास्ते कुछ भी वस्तु सञ्चय करके न रखना, यह ऋषियोंका धर्म्म है, वह आपको भी विदित है। इससे पण्डितोंने जिसे राजधर्म्म कहके

वर्णन किया है, और वह धनसे ही सिद्ध होता है।

हे महाराज! इस संसारके बीच जो पुरुष किसीके धनको हरण करता है, वह उसके धर्मको भी हर लेता है; इससे जो धन इस प्रकार धर्मको सिद्ध करनेवाला है, उसे यदि कोई हरण करे, तो क्या हम लोग चमा-कर सक्ते हैं? इस लोकके बीच दरिद्रता अत्यन्त ही पाप जनक है, दरिद्र पुरुष समीप रहनेपर मनुष्य उसे मिथ्या अपवादोंसे दूषित करते रहते हैं; इससे आपको इस प्रकार दरिद्रताको प्रशंसा करनी उचित नहीं है। इस पृथ्वीपर पतित और निर्धन दोनोंको ही शोक करना पड़ता है; इससे नीच और निर्धन पुरुषोंमें कुछ विशेषता नहीं बोध होती। जैसे सम्पूर्ण नदियां पहाड़ोंसे निकल कर धीरे धीरे विस्तृत होती हैं, वैसे ही बहुतसे धन सब कर्म क्रमसे सिद्ध होते हैं। महाराज! धनके विना इस पृथ्वीके बीच मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम वा स्वर्ग-गमन और प्राण-यात्राका भी निर्व्वाह नहीं हो सक्ता। जैसे ग्रीष्मकालमें छोटी छोटी नदियां सूख जाती हैं, वैसे ही इस लोकमें धनसे हीन अल्प बुद्धि मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य्य नष्ट होजाते हैं। इस जगत्के बीच जिसके धन है, उसीके मित्र और बान्धव हैं, जिसके धन है, वही पण्डित है, जिसके धन है, वही पुरुष है। निर्धन मनुष्य यदि किसी विषयकी अभिलाषा करके उसके सिद्ध करनेका उपाय करे तो कदापि वह सिद्ध नहीं होते। परन्तु जैसा महा बलवान हाथीसे अन्य हाथियोंको पकड़ लेते हैं, वैसे ही धनसे समस्त प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं।

महाराज! धर्म, बहुदर्शिता, धृति, हर्ष कामना, क्रोध ममता ये सब ही धनसे सिद्ध होसकते हैं। धनसे ही लोगोंके कुल गौरव और धर्मकी वृद्धि होती है। निर्धन पुरुषको यह लोक और परलोक कोई भी सुखदायक नहीं होता। जैसे पहाड़से नदी प्रकट होती हैं, वैसे ही धनसे धर्म उत्पन्न होता है। हे राजन्! मनुष्यका शरीर कृश होनेसे ही उसे दुर्बल नहीं कहा जा सकता; जिसके घोड़े गज पशु तथा सेवकोंकी अल्पता होती है, और जिसके गृहमें अतिथि नहीं उपस्थित होते, उसे ही कृश कहा जा सकता है। महाराज आप न्यायपूर्व्वक देवासुर संग्रामका विषय विचार करके देखिये देवता लोग ज्ञातिवधके अतिरिक्त सम्पत्ति प्राप्त करनेकी कौनसी अभिलाषा करते हैं? और यदि दूसरेका धन लेना, यह धर्म आपके विचारमें उत्तम नहीं है; तो भला कहिये तो सही, राजा लोग किस प्रकारसे धर्मका अनुष्ठान कर सकेंगे? क्यों कि पर-धनके अतिरिक्त अपना धन राजाओंके पास कुछ भी नहीं हैं; और वेदमें भी पण्डितोंने "प्रति दिन साम आदि तीनों वेदोंके अध्ययन, ज्ञान उपार्ज्जन और यत्न पूर्व्वक धन प्राप्त करके यज्ञ करना उचित है," ऐसीही विधि निश्चयकी है। जब कि देवता लोग भी ज्ञातिविद्रोहकी अभिलाषा करते हैं, तब ज्ञाति विरोधके विना कौनसी वस्तु प्राप्त हो सकती है? और देवताओंने विद्रोहितासे ही स्वर्गलोक प्राप्त किये हैं, इससे देवता लोग भी इसी भांति व्यवहार करते हैं और वेदमें भी कहा हुआ है, कि राजा लोग अन्य पुरुषोंके निकटसे जो धन प्राप्त करते हैं, उस ही धनसे उनका कल्याण होता है; क्यों कि पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना, और देना ये सम्पूर्ण कर्म धनसे ही सिद्ध होसक्ते हैं; इसमें यदि दोष समझा जावे, तो कहीं भी ऐसा कोई अर्थ नहीं दीख पड़ता जो दूसरे पुरुषोंके अनिष्टके विना ही संग्रह किया जा सकता होवे! जैसे पुत्र पिताके धनको अपना समझता है, वैसे ही वे लोग भी युद्ध जीतके जो धन पाते हैं, उसे अपना ही

समझते हैं; और स्वर्गीय राजर्षियोंने राजधर्मोके विषयमें ऐसा ही वर्णन किया है।

जैसे समुद्रसे बहुतसा जल सूर्य्यतेजसे आकाशमें आकर दशों दिशामें व्याप्त होता है, वैसे ही सम्पूर्ण धन राजकुलसे निकलकर पृथ्वीका पालन कार्य्य सिद्ध करता है। देखिये यह पृथ्वी पहिले दिलीप, नृग, नहुष अम्बरीष और मान्धाता आदि राजाओंके अधिकारमें थी, इस समय आपके हस्तगत हुई है। इससे आप अनेक सामग्री और सर्व्व-दक्षिणासे पूरित यज्ञोंको अपनी मुट्ठीमें प्राप्त समझिये। यदि अब आप यह समस्त सामग्री पाके यज्ञ आदि शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करेंगे, तो अवश्य ही आपको राज्यके पापका भार उठाना पड़ेगा। राजा जो प्रजाके धनको लेकर दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करता है, वह सम्पन्न होनेसे उसकी सम्पूर्ण प्रजा अवभृत स्नानसे पवित्र होती है। दूसरेकी बात दूर रहे, विश्वमूर्त्ति महादेवने भी स्वयं सर्व्वमेध यज्ञमें समस्त प्राणियोंको और उनके अन्तमें अपने शरीरको भी आहुतिमें प्रदान किया था। हे राजन्! जिस यज्ञमें यजमान पत्नीके सहित स्वयं दीक्षित हो और एक पशु, तीन वेद, चार ऋत्विक,—ये दश स्थित रहें, वह दाशरथ नाम महत् यज्ञका पथ ही नित्य है; उसका फल अविनाशी है, ऐसा ही सुना गया है; इससे आप ऐसे मार्गको त्यागके कुपथमें न जाइये।

८ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे अर्जुन! तुम क्षण भर मन और आत्माको स्थिर कर एकाग्र भावको धारण करो, ऐसा होनेसे मेरे वचनको सुननेके अनन्तर उसमें तुम्हारी रुचि होगी। इस समय मैं ग्राम्यसुख त्यागके साधुओंके गमन करने योग्य मार्गसे गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, इससे अब तुम्हारे अनुरोधसे विषय मार्गमें नहीं गमन करूंगा। परन्तु एक बारगी गमन करनेमें प्रवृत्त होनेसे इस समय मुझे कौनसा मार्ग कल्याणदायक है? यदि तुम मुझसे ऐसा प्रश्न करो, अथवा तुम्हारी पूछनेकी इच्छा न रहनेसे भी मैं स्वयं कहता हूं सुनो। मैं ग्राम्य-व्यवहारके सम्पूर्ण सुखको परित्याग करके अरण्यवासी और फल मूलाहारी होकर महत् तपस्याका अनुष्ठान करते हुए मृगोंके संग वनमें भ्रमण करूंगा। मैं वहां निवास करके यथा समय अग्निमें आहुति, प्रात और सन्ध्याके समय स्नान, मृगछालाका वस्त्र, जटाधारण और परिमित भोजन करके शरीरको कृशित करूंगा; सर्दी, गर्मी, क्षुधा, और प्यास आदि क्लेशोंको सहनेका अभ्यास करते हुए विधिपूर्व्वक तपस्यासे धीरे धीरे अपने शरीरको सुखा दूंगा; वनवासी मृग और पक्षियोंके मनोहर शब्दको सुनूंगा, सुगन्धित फूलोंका घ्राण लूंगा और स्वाध्यायमें रत वाणप्रस्थ आदि नाना वेषधारी सुन्दर मूर्तिवाले वनवासियोंको दर्शन करते हुए निवास करूंगा। मैं अब किसीके अनिष्टाचरणमें नहीं प्रवृत्त होऊंगा; इससे ग्रामवासी मनुष्योंके सङ्ग मेरा अब कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, उस विषयमें कहनाही क्या है? मैं वहां एकान्त स्थलमें शिलो वृत्ति अवलम्बन करके वनके वृक्षोंके पके तथा बे पके फल, झरनोंके पानी और स्तोत्र आदिसे देवता तथा पितरोंको तृप्त करते हुए समय व्यतीत करूंगा; इसी भांति शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार आरण्यक कठोर व्रतका अनुष्ठान करके शरीर छूटनेके समयकी प्रतीक्षा करूंगा अथवा सिर मुड़ाके प्रति दिन एक एक वृक्षकी नीचे फल मांगके शरीरयात्रा निर्व्वाह करूंगा; और निराश्रय होकर भस्मपूरित शरीरसे चारों ओर पर्य्यटन करूंगा; अथवा सम्पूर्ण प्रिय और

अप्रिय वस्तुओंको परित्याग करके किसी वृक्षके नीचे वनके बीच निवास करूंगा और सम्पूर्ण परिग्रह शून्य और सुखदुःखसे रहित होकर ममता तथा विषय,वासनाको त्याग दूंगा, मैं कदापि शोक और हर्षके वशमें न होऊंगा, स्तुति और निन्दाको समान समझूंगा। मैं अब, कदापि किसीके सङ्ग वार्त्तालाप न करके बाहरी भावसे अन्धे जड़ वा बधिर पुरुषोंको भांति स्थित होके आत्म-उपासनामें रत रहूंगा। मैं अब जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंके बीच किसीको भी हिंसा न करके धार्म्मिक और इन्द्रियपरायण पुरुषोंका समदृष्टिसे अवलोकन करूंगा। किसीको अवज्ञा वा किसीकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे नहीं देखूंगा; सदा सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे स्थित होके इन्द्रियोंको संयम करनेमें यत्नवान होऊंगा। मार्गमें गमन करनेके समय किसी दिशा, कोई देश तथा पीछेकी ओर दृष्टि न करके स्थूल और सूक्ष्म शरीरका अभिमान त्यागकर निरपेक्ष होके स्थिर और सरलचित्तसे इच्छापूर्व्वक गमन करूंगा। स्वभाव सम्पूर्ण जीवोंके आगे आगे गमन करता है, इससे आहार आदि स्वाभाविक कार्य्य संस्कार वश ही निर्व्वाहित होंगे; परन्तु मैं ज्ञानके विरोधी उन सुखदुःखोंको कुछ भी चिन्ता न करूंगा। पवित्र भोजन यदि प्रथम गृहमें कुछ भी न मिलेगा, तो दूसरे घर जाऊंगा; वहां भी यदि न मिलेगा तो क्रमसे सात घर घूमकर उदर-पूर्त्ति करूंगा। जिस समय ग्रामवासी समस्त पुरुषोंके आखली मूसल आदि सबका कार्य्य समाप्त और आग बूझके रसोईका घर धूएंसे रहित होगा और सब गृहस्थ पुरुष भोजन करके निवृत्त होंगे, अधिक क्या कहूं, जिस समय अतिथि और भिक्षुकोंका भी गमनागमन नहीं रहेगा, मैं उसही समयमें आकर दो तीन वा पांच घरमें भिक्षा मांगूंगा, और सम्पूर्ण आशापाशसे मुक्त होकर इस पृथ्वी पर भ्रमण करूंगा हानि और लाभको समान ही समझके बृहत् तपस्यामें रत होऊंगा। जीवितार्थी वा मुमुर्षु इन दोनोंमेंसे किसीकी भांति व्यवहार नहीं करूंगा मैं जीने और मरनेको समान समझूंगा, किसी विषयमें हर्ष वा विषाद नहीं करूंगा। यदि कोई पुरुष कुठार ग्रहण करके मेरी एक भुजा काट डाले और दूसरा पुरुष दूसरी भुजामें चन्दन लगावे,-तो मैं उन दोनोंके बीच किसीके भी कल्याण और अमङ्गलकी इच्छा नहीं करूंगा। मनुष्य लोग अपनी उन्नतिके वास्ते जिन सम्पूर्ण कार्य्योंका अनुष्ठान करते हैं, मैं उन समस्त कार्योंको त्यागके केवल एक शरीर निर्वाहके योग्य कर्म्म करके समय व्यतीत करूंगा। सर्व्वदा सम्पूर्ण कर्म्मोंमें आसक्ति रहित होकर इन्द्रियोंको वशमें करनेके वास्ते यत्नवान होऊंगा, और सब भांति सङ्कल्प-रहित होकर अपने मनकी मलीनताको दूर करूंगा। संसारके बन्धनोंको तोड़के माया ममतासे हीन होके वायुकी भांति स्वतन्त्र रूपसे पृथ्वीपर भ्रमण करूंगा मैंने अज्ञानसे विषय वासनामें फंस कर बहुत ही पाप किया है, इससे ऐसी विषय-वासनासे आसक्ति रहित होकर ही असीम आनन्द प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। कोई कोई मूढ़ पुरुष अनेक भांतिके शुभाशुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करके कई कार्य्य कारणोंसे सम्बन्धीय स्त्री, पुत्र आदिका पालन करते हैं; अन्तमें इस जड़ शरीरको परित्याग करनेके अनन्तर परलोकमें उस पापके फलका भागी होना पड़ता है, क्यों कि कर्त्ताको ही सम्पूर्ण कर्म्मोंका फल भोगना होता है। इसी भांति समस्त प्राणी कर्म्मरूपी सूत्रमें बन्धके घूमते हुए रथचक्रकी भांति सदा इस संसारके बीच आवागमन करते रहते हैं। जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिकी आपदासे युक्त इस असार संसारको जो पुरुष त्याग सकते हैं, उनको ही

नित्य सुख प्राप्त होता है। जब कि देवता लोग स्वर्गसे और महर्षि लोग अपने अपने स्थानोंसे भी भ्रष्ट होते हैं, तब इन सम्पूर्ण कारणोंको जानकर भी कौन पुरुष इस अनित्य स्वर्ग आदि ऐश्वर्य्यकी इच्छा करेगा? और भी देखो, कि समयके अनुसार सामान्य राजा भी कपटता आदि विविध उपाय अवलम्बन करके किसी कारणसे महाराजको भी मार सकता है। जो हो, बहुत समयके अनन्तर मेरे लिये यह ज्ञानरूपी अमृत उत्पन्न हुआ है, इसको ही अवलम्बन करके मैं इस समय उस अक्षय, अव्यय और नित्य स्थानको प्राप्त करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं। ऐसी ही बुद्धि सदा हृदयमें धारण करके निर्भय मार्गमें आरूढ़ होके जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिके क्लेशोंसे युक्त इस शरीरको त्याग करूंगा।

९ अध्याय समाप्त ।

भीमसेन बोले, हे महाराज! जैसे मन्दबुद्धि अर्थज्ञानरहित वेदपाठी ब्राह्मणकी बुद्धि वेदपाठ करते करते स्तम्भित होजाती है, वैसे ही आपकी भी बुद्धि कलुषित होनेसे तत्त्वदर्शिनी नहीं होती है। राजधर्म्ममें दोषारोपण करके यदि वृथा शान्ति तथा आलस-भावको अवलम्बन करना ही अभिप्राय था, तब धृतराष्ट्र पुत्रोंका नाश करके तुम्हें कौनसा फल मिला? क्षमा, दया करुणा और अनृशंसता आदि अन्य गुण क्या तुम्हारे अतिरिक्त क्षत्रिय धर्म्मावलम्बी दूसरे राजाओंमें वर्त्तमान नहीं है, यदि मैं आपके ऐसे अभिप्रायको पहिले जान सकता, तो कदापि शस्त्र ग्रहण करके किसीका वध न करता। जीवनके समय पर्य्यन्त अवश्य ही भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके दिन बिताता,— ऐसा होनेसे राजाओंके बीच कदापि इस प्रकार भयङ्कर युद्ध उपस्थित न होता।

हे राजन्! ज्ञानी पुरुष "स्थावर जङ्गमसे युक्त इस पृथ्वीको बलवान पुरुषोंके द्वारा ही भोग्या और पालनीया" कहके वर्णन करते हैं; और क्षत्रिय धर्म्मके जाननेवाले पण्डितोंका ऐसा ही मत है, कि बलवान् पुरुषको राज्य ग्रहण करनेके समय यदि कोई शत्रुताचरण करे, तो उस ही समय उसका वध करना उचित है। महाराज! हमारे शत्रु कौरव लोग भी उस ही दोषसे दूषित होकर हम लोगोंके हाथसे मारे गये हैं; इससे आप इस समय शत्रु-रहित होके धर्म्मपूर्व्वक यह पृथ्वी-भोग कीजिये। जैसे कोई पुरुष कुआं खोदके उसमें जल न पाकर केवल कीचड़ लिपटे हुए शरीरसे निवृत्त होता है; जैसे कोई बड़े वृक्ष पर चढ़के मधु ग्रहण करके भी उसका स्वाद न पाकर ही मृत्युको प्राप्त होता है; जैसे कोई आशा पाससे बन्धके महा घोर पथसे गमन करते हुए फिर निराश होके निवृत्त होता है; जैसे कोई शूरवीर पुरुष समस्त शत्रुओंका नाश करके पीछे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होता है; अथवा जैसे भूखे मनुष्यका अन्न पाकर भी भोजन न करना और कामी पुरुषके इच्छानुरूप स्त्री पाके भी उसे भोग न करनेकी भांति आपके वन गमनमें उद्यत होनेसे हम लोगोंके शत्रुनाश आदि सम्पूर्ण कार्य्य निरर्थक होरहे हैं। हे राजन्! आप निर्बुद्धि होरहे हैं, तौभी हम लोग आपको ज्येष्ठ समझके मान्य करते हुए आपके अनुगामी होते हैं, तब हम लोग ही इस विषयमें निन्दनीय हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हम लोग सब कोई बाहुबलसे युक्त कृतविद्य और सब विषयोंके निश्चय करनेवाले हैं, परन्तु असमर्थकी भांति आपकी निरर्थक आज्ञामें स्थित हैं। हे राजन्! मेरा वचन युक्तियुक्त है वा नहीं, इसे विचारके देखिये, हम लोग अनाथोंके रक्षक हैं तब भी यदि अर्थसे भ्रष्ट

होंगे, तो प्रयोजन-सिद्धिके विषयमें सब कोई हम लोगोंको क्या अकर्मण्य न समझेंगे? क्योंकि ऐसी विधि है, कि राजा लोग वृद्धावस्था और शत्रुसे पराजित होनेपर, अर्थात् आपद-कालमें ही सन्यास धर्म्म ग्रहण कर सकते हैं; अतएव सूक्ष्म तत्त्वदर्शी पण्डितोंने दूसरे समयमें क्षत्रियोंको सन्न्यासधर्म्मकी विधि नहीं दी है, वरन उससे धर्म्मकी हानि होती है, ऐसा ही सूक्ष्मदर्शी पण्डितोंने वर्णन किया है। जो पुरुष क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होके उसहीमें निष्ठावान तथा हिंसा धर्म्मसे ही जीविका निर्व्वाह करते हैं, वे किस प्रकारसे दैव निर्दिष्ट धर्म्मकी निन्दा कर सकते हैं? ऐसा करनेसे उस विषयमें विधाताकी ही निन्दा करनी होती है, इससे दैव निर्दिष्ट धर्म्म दूषित होने पर भी निन्दित नहीं है। क्षत्रियोंको भी जो वेदमें सन्यास ग्रहण करनेके अधिकार कहा गया है; वह यथार्थमें न होने पर भी ऋक, यजु, और साम इन तीनों वेदों तथा विधि विषयमें अनभिज्ञ, निर्द्धन और नास्तिक पुरुषोंने ही वेदोक्त सन्यास धर्म्मके प्रशंसा-रहित वचनको सत्यकी भांति समझके अपना मत प्रकाशित किया है। क्षत्रियोंका सिर मुड़ाकर कपट सन्यास धर्म्म अवलम्बन करके शरीरको चेष्टा-रहितकी भांति रक्षित करनेसे वह नाशके वास्ते ही समझा जाता है, जीवन रक्षाके निमित्त नहीं! तब केवल देवता, ऋषि, अतिथि, पितर, पुत्र और पौत्र आदिके पालन पोषणमें असमर्थ पुरुष ही जङ्गलके बीच अकेले ही निवास करके सुखी हो सकते हैं। जैसे मृग सूअर और पक्षी वनवासी होके भी स्वर्गके अधिकारी नहीं हैं, वैसेही सत्कर्म्मोंके अनुष्ठानसे विमुख होनेवाले शक्तिमान क्षत्रिय पुरुष भी आरण्यक धर्म्मसे किसी प्रकार स्वर्गके अधिकारी नहीं हो सकते। हे राजेन्द्र! यदि सन्यास धर्म्मसे ही सिद्धि प्राप्त होती, तो ऐसा होनेसे पहाड़ और वृक्षोंके समूह शीघ्र ही सिद्धिलाभ करते। जगत्के बीच ये ही प्रकृत सन्यासी और ब्रह्मचारीकी भांति दीख पड़ते हैं, क्योंकि इन्हें परिग्रह वा किसी उपद्रवकी कुछ भी बाधा नहीं है। महाराज! पुरुष अपनी प्रारब्धके अतिरिक्त पराये भाग्यसे कदापि फल भागी नहीं होसकता; इससे अवश्य ही कर्म्म करना उचित है, कर्म्म हीन मनुष्य कभी सिद्धि-लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते! और अपना उदर भरनेसे ही यदि सिद्धि प्राप्त होसकती, तो जिसे उदर भरनेके अतिरिक्त और कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, वे मछली आदि जलजन्तु भी सन्न्यासरूपी मुक्ति फल प्राप्त करनेमें समर्थ होते।

अधिक और क्या कहूं, आप विशेष रीतिसे विचारके देखिये, इस जगत्के सम्पूर्ण प्राणी अपने अपने कर्म्ममें प्रवृत्त होरहे हैं, इससे अवश्य ही कर्म्म करना चाहिये; कर्म्महीन पुरुषको दूसरे किसी विषयसे भी सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती।

१० अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, महाराज! इस विषयमें तपस्वियोंके सङ्ग देवराज इन्द्रके वार्त्तालापका एक पुराना इतिहास वर्णित है, मैं कहता हूं, आप सुनिये।

किसी समयमें उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए बहुतसे अजातश्मश्रु ब्राह्मणोंका निर्बोध बालकोंने परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करके घर त्यागके वनमें गमन किया। वे सब महाधनवान होके भी सन्न्यासको ही यथार्थ धर्म्म समझके पिता भ्राता आदि बन्धुबान्धवोंको परित्याग कर ब्रह्मचर्य्य व्रत अवलम्बन करके चारोंओर पर्य्यटन करने लगे, देवराज इन्द्रने उन बालकोंके ऊपर कृपा करी। भगवान इन्द्रने सुवर्णमय

जो राजनीतिज्ञ जितेन्द्रिय राजा धर्म्मशास्त्रके तात्पर्य्यको विशेष रूपसे ग्रहण करके राज्य करते हुए प्रिय और अप्रिय वस्तुओंको समान समझते, यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन, दुष्ट पुरुषोंको दण्ड, साधुओंके ऊपर कृपा करते तथा प्रजाको धर्म्म मार्गमें स्थापित करते हुए स्वयं निज धर्म्ममें तत्पर रहते हैं, और अन्तमें पुत्रको राज्यभार समर्पण करके वनवासी होकर वेदमें कही हुई विधिके अनुसार आसक्ति त्यागके कर्म्मोंके अनुष्ठानमें रत रहते हैं, उन्हें इस लोक और परलोक दोनोंमें शुभ फल प्राप्त होता है। आप जो निर्व्वाणमुक्तिके विषयको वर्णन करते थे, मेरे विचारसे वह अत्यन्त ही दुःसाध्य और अनेक विघ्नोंसे परिपूरित है। हे धर्म्मराज ! मैंने राजधर्म्मके विषयको वर्णन किया है; सत्य और दानपरायण अनेक राजा लोगोंने ऊपर कहे हुए धर्म्मके आसरे काम क्रोध, नृशंसता त्यागके गौ ब्राह्मणोंकी रक्षाके वास्ते अस्त्र धारण करके प्रजा पालन करते तथा निज उत्तम धर्म्मको उपार्ज्जन करते हुए शीघ्र ही परम गतिको प्राप्त हुए हैं। इसी भांति रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य और राजर्षि लोग सावधान होकर राजधर्म्मके सहारे अपने परम कर्म्मोंसे स्वर्गलोकमें गये हैं।

२१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवस्थान ऋषिके वचन समाप्त होनेपर अर्ज्जुन फिर शोकित चित्तसे युक्त अपने जेठे भाई अच्युत युधिष्ठिरसे बोले, महाराज ! आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शत्रुओंको पराजित करके इस दुर्लभ राज्यको प्राप्त किया है; तो अब किस कारणसे इतना दुःखित होरहे हैं। अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी बढ़के युद्धभूमिमें क्षत्रिय पुरुषोंकी मृत्यु श्रेष्ठ है, यह क्षत्रियोंका धर्म्म कहके वर्णित है। ब्राह्मणोंकी तपस्या तथा सन्न्यास और क्षत्रियोंकी युद्धमें मृत्यु होनी यही पारलौकिक धर्म्म है, काल प्राप्त होनेपर क्षत्रियोंको युद्धभूमिमें गमन करके शस्त्रसे मरना ही धर्म्म है; क्यों कि क्षत्रियधर्म्म शस्त्रमूलक और अत्यन्त ही कठिन है। क्षत्रियकुल ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ है, इससे यदि ब्राह्मण भी क्षत्रिय-धर्म्म अवलम्बन करें, तो उनका जीवन धन्य है, महाराज ! क्षत्रियोंके वास्ते सन्न्यास, समाधि, तपस्या और दूसरेके समीप भीख मांगके जीविका निर्व्वाह करनेकी विधि नहीं है। आप भी राजा, मनीषी, सब कार्य्योंको जानने-वाले, धर्म्मात्मा और सम्पूर्ण धर्म्मोंके जानने-वाले हैं, आपको पर और अपर दोनों ही विषय विदित हैं; विशेष करके क्षत्रियोंका हृदय वज्रके समान कठोर होता है, इससे आप दुःख जनित शोक त्यागके कर्म्मोंके अनुष्ठानमें कटिबद्ध होइये। आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनु-सार शत्रुओंका नाश करके यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है, इस समय इन्द्रियोंको वशमें करके दान और यज्ञ आदिक कर्म्मोंके करनेमें प्रवृत्त होइये। मैंने सुना है, कि देव-राज इन्द्र ब्राह्मण होकर भी केवल कार्य्यके वशमें होकर क्षत्रिय धर्म्मावलम्बी हुए हैं; उन्होंने जातिके पापी पुरुषोंको युद्धमें आठ सौ दश बार पराजित किया था, उनका वह कर्म्म जगत्में पूजनीय और प्रशंसनीय कहके गिना गया है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है; और उस क्षत्रिय धर्म्मके प्रभावसे ही उन्होंने देवताओंके बीच इन्द्रत्व पद पाया है। जैसे देवराज इन्द्रने निष्कण्टक होके यज्ञानुष्ठान किया था, वैसे ही आप भी इस निष्कण्टक राज्यका शासन करते हुए अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञ कार्य्यमें प्रवृत्त होइये, महाराज ! आप बीते हुए विषयोंके निमित्त तनिक भी शोक न कीजिये, कौरव लोग क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शरीर त्यागके

पक्षीका रूप धरके उन बालकोंसे कहा,—इस संसारके बीच जो लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करते हैं, वे साधारण मनुष्योंसे न होने योग्य अत्यन्त कठिन कर्म करते हैं, और वही पवित्र कर्म है ; इससे ऐसे ही कर्म करनेवाले पुरुषोंका जीवन धन्य है और वेही धर्म्मपरायण पुरुष सिद्ध मनोरथ होकर परम गति लाभ करते हैं।

तपस्वियोंने कहा, ओहो ! यह पक्षी यज्ञसे बचे हुए अन्न भोजन करनेवाले मनुष्योंकी प्रशंसा करता है ! हमलोग भी यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन किया करते हैं ; इससे अवश्य ही यह पक्षी हमलोगोंको यह विषय विज्ञापित करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

पक्षी बोला, हे तपस्वी पुरुषो ! मैं तुम लोगोंकी प्रशंसा नहीं करता हूं ; तुम लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेवाले नहीं हो ; तुम लोग जूठे अन्नको भोजन करनेवाले मन्दबुद्धि अल्प पराक्रमी और पापी हो।

तपस्वियोंने कहा, हे विहङ्गम ! हम लोग इसे ही परम श्रेष्ठ कल्याणदायक मार्ग समझकर इसही की उपासना करते हैं ; इस समय जो हम लोगोंके निमित्त उत्तम हो, तुम उसहीका उपदेश करो ; तुम्हारे बचनोंमें हमलोगोंकी अत्यन्त ही श्रद्धा उत्पन्न होरही है।

पक्षी बोला, कि वक्ता और श्रोताका अन्तःकरण भिन्न भिन्न अंशोंमें बंटा रहता है, इससे यदि मेरे बचनोंमें तुम लोग कोई शङ्का न करो तो मैं तुम लोगोंके निमित्त यथार्थ हितकर बचनोंका उपदेश करूंगा।

तपस्वियोंने कहा, हे धर्म्मात्मन् ! आर्य्य ! हमलोग तुम्हारे बचनको सुनेंगे ; इस जगत्के सम्पूर्ण मार्ग तुम्हें विदित है ; इससे हम लोग तुम्हारी आज्ञाके अनुसार इस स्थानमें स्थित हैं; अब तुम हमलोगोंको यथार्थ पथका उपदेश प्रदान करो।

पक्षी बोला, सम्पूर्ण चौपाये पशुओंमें गऊ श्रेष्ठ हैं, धातुओंमें सुवर्ण, शब्दोंमें मन्त्र, और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। वेद मन्त्र ही ब्राह्मणोंको जन्मसे लेकर जीवन कालके समय पर्य्यन्त गर्भ क्रियाँ आदि सम्पूर्ण संस्कारोंका विधि पूर्व्वक विधान करता है ! और यह वैदिककर्म्म ही सब किसीका उत्तम यज्ञ और स्वर्ग प्राप्त होनेका पथ स्वरूप है ! और यदि इसे न स्वीकार करो तो इस कर्म्मसे किस भांति सैकड़ों कर्म्म-निष्ट स्वर्गार्थी पूर्व्व पुरुषोंके मनोरथ तथा कार्य्य सिद्ध हुए हैं ? इस विषयमें मैंने बहुत कुछ प्रत्यक्ष मालूम किया है। इससे लोकके बीच जो पुरुष दृढ़ विश्वासके सहित इस आत्माको जिस देव रूपसे भजता है, वह उसही भावसे सिद्धि प्राप्त करता है।

इस जगत्के बीच जीवोंको तीन प्रकारसे सिद्धि प्राप्त होती है ; प्रथम माघ महीनेसे लेकर असाढ़ पर्य्यन्त छः महीने उत्तरायण कालमें मृत्यु होनेसे शुक्ल अर्थात् प्रकाशमय मार्गसे आदित्य लोक प्राप्त होता है; इस लोकमें इसे क्रम-मुक्ति कहते हैं। दूसरा श्रावण महीनेसे लेकर पौषमास छः महीने तक दक्षिणायण समयमें कृष्ण अर्थात् अन्धकारमय मार्गसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है, इसी भांति मुक्त जीवोंका पुनरावृत्ति होती है। तीसरे अविमुक्त उपासकोंको अन्तिम समयमें भगवान रुद्रदेव स्वयं आगमन करके तारकब्रह्म मन्त्र उपदेश करते हैं, उससे वे लोग ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं ; इसको अनावृत्ति मुक्ति कहते हैं। परन्तु इन तीनों प्रकारकी सिद्धियोंको सब प्राणी कर्म्मसे ही प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। यह गृहस्थाश्रम ही अत्यन्त पवित्र सिद्ध क्षेत्र और बड़ा है। जो मनुष्य कर्म्मकी निन्दा करके कुमार्गमें गमन अर्थात् सन्यास-धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे सम्पूर्ण मूढ़ पुरुष अर्थ-भ्रष्ट होकर पापमें लिप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग

पितर लोक और ब्रह्मप्राप्ति रूपी यह नित्य भांतिकी नित्य सिद्धियोंको परित्याग करके मूढ़की भांति इस लोकमें जीवित रहके शीघ्रही कीट आदि हीन योनिको प्राप्त होते हैं। देखिये मन्त्रमें ऐसी विधि है, कि "हे यजमान! द्रव्यदान आदि यज्ञ करो, मैं तुम्हें पुत्र पशु और स्वर्गादि सुख प्रदान करूंगा," इससे जिस प्रकारकी विधि है, उसही विधिके अनुसार चलनेसे तपस्विनोंको परम तपस्या कही गई है। इससे इसही भांतिका यज्ञ और दानरूपी तपस्या तुम लोगोंको अवश्य कर्त्तव्य है। यथा नियमसे देवतोंकी पूजा, वेदाध्ययन, पितृ तर्पण और गुरुसेवाको ही पण्डितोंने कठिन तपस्या कहके वर्णन किया है; देवता लोग इसी भांति कठोर तपस्या करके परम ऐश्वर्य्यको प्राप्त भये हैं। इसही निमित्त मैं तुम लोगोंको अत्यन्त कठिन गृहस्थ धर्म्मके भारको ग्रहण करनेका उपदेश करताहूं। यह वेदोक्त कर्म्म ही जो मुख्य तपस्या और प्रजाको उत्पत्तिका मूल है, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, क्यों कि वेदमें गाई स्थ्याश्रम विधिके स्थानमें "गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंका मूल कहके वर्णित हुआ है। काम क्रोधसे रहित ब्राह्मणोंने इसी भांति धर्म्मानुष्ठानको परम तपस्या कहके स्वीकार किया है, और ब्रह्मचर्य्यादि व्रतोंको मध्यम तपस्या कहके वर्णित किया है। जो लोग दिन और रात्रिमें कुटम्बको विधि पूर्व्वक अन्नप्रदान करके भोजन करते हैं, वे विघ्ननाशी पुरुष दूसरेको न प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते हैं। हे तपस्वी लोगो! देवता पितर, अतिथि कुटम्ब और अपने आश्रित लोगोंको यथारीतिसे अन्नप्रदान करके भोजन कराते हैं, वे विघ्ननाशी पुरुष दूसरेके न प्राप्त होने योग्य स्थानमें गमन करते हैं। इससे जो लोग इस लोकमें सत्यवादी और उत्तम व्रताचरणमें रत होके अपने धर्म्मके आसरेसे स्वयं संशय रहित होके यह विषय दूसरेको उपदेश करते हैं, वह निर्म्मत्सरी कठिन कर्म्म करनेवाले पुरुष शरीर त्यागनेके अनन्तर इन्द्र लोकको प्राप्त करके बहुत समय तक स्वर्गमें वास करते हैं।

अर्ज्जुन बोले, हे महाराज! तिसके अनन्तर उन तपस्वी लोगोंने पक्षी रूपी देवराज इन्द्रके धर्म्मार्थ युक्त हितकर वचन सुनकर सन्यास धर्म्मको निष्फल समझ उसे त्यागके गृहस्थ धर्म्म अवलम्बन किया। हे धर्म्मज्ञ! आप भी इस समय उस चिरभ्यस्त धीरज धारण करके निष्कण्टक यह पृथ्वी शासन कीजिये।

११ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! धर्म्मात्मा बोलनेवालोंमें मुख्य दुःखसे क्रुशित, चौड़ी छातीवाले महाभुज बुद्धिमान शत्रुनाशन नकुल अर्ज्जुनके वचन समाप्त होनेपर निज भाई धर्म्मराज युधिष्ठिरको ओर देखकर उनके चित्तको परिवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे यह वचन बोले, हे महाराज! विशाखयूप नाम किसी क्षेत्र विशेषमें अग्नि स्थापित करनेके वास्ते देवतावोंने एक अग्नि कुण्ड बनाया था, वह अबतक भी दीख पड़ता है; इससे देवलाभ भी आप कर्म्मफलसे ही समझिये! और जो लोग जलवृष्टि आदिसे नास्तिकोंको भी प्राणदान करते रहते हैं; वे पितर लोग भी विधिपूर्व्वक कर्म्म किया करते हैं। जो लोग वेदोक्त धर्म्मका परित्याग करनेवाले हैं; उन्हें अवश्य ही नास्तिक समझिये; क्यों कि ब्राह्मण लोग कभी किसी कर्म्ममें वेदोक्त विधिको परित्याग करके किसी प्रकारसे स्थित नहीं रह सकते। वेद जाननेवाले पण्डितोंने ऐसा कहा है, कि गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है; उस गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले मनुष्योंको देवार्च्चनासे ब्रह्मलोक

प्राप्त होता है। हे महाराज! निश्चय कीजिये कि जो पुरुष श्रेष्ठ यज्ञको करते हुए वेदज्ञ ब्राह्मणोंको धर्मसे उपार्ज्जित धन प्रदान करते, और अहङ्कार तथा ममता आदि त्यागके इन्द्रियसंयममें रत रहते हैं, उन्हें ही पण्डित लोग सात्विक त्यागी कहते हैं। जो पुरुष सुखभोग्य गृहस्थाश्रमको त्यागके जंगलमें गमन करता है अथवा अनशन आदिसे शरीर त्याग करता है, उसे तामसत्यागी समझिये। जो गृहत्यागके मौनावलम्बन पूर्व्वक वृक्ष आदिके नीचे सर्व्वदा स्थित होके योगाभ्यासमें रत रहते हैं और कोई अभिलाषा न करके केवल शरीर निर्व्वाहके वास्ते भिक्षा मांगनेके वास्ते भ्रमण करते हैं, वे भिक्षुक सन्न्यासी कहके प्रसिद्ध हैं; और जो ब्राह्मण क्रोध, हर्ष और चुगलीको त्यागके वेदाध्ययनमें रत रहते हैं, उन्हें भी भिक्षुक सन्न्यासी कहा जाता है। पण्डित लोग कहते हैं, कि सब आश्रमोंको बराबरी करनेमें एक ओर तीनों आश्रम और एक ओर गृहस्थाश्रम; क्योंकि गृहस्थाश्रम ही ब्रह्मचर्य्यादि तीनों आश्रमोंका आश्रयस्वरूप है। लोकोंके तत्वको जाननेवाले महर्षियोंने सब आश्रमोंके तारतम्यकी समालोचना करके जब समझा कि, गृहस्थाश्रममें स्वर्ग और काम दोनों ही प्राप्त होते हैं, तब यही उन लोगोंको गति और अवलम्बस्वरूप हुआ। हे भरत-श्रेष्ठ! जैसे मूढ़ लोग गृहत्यागके बनवासी बनते हैं, वैसा न करके फलासक्तिसे रहित होकर गृहस्थाश्रममें ही कर्त्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेवाले पुरुष उन बनवासियोंसे श्रेष्ठ और प्रकृत सन्यासी हैं; और जो पुरुष सन्न्यास वेष धरके मनमें सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त वस्तुओंका ध्यान करता है, उसको गर्द्दनमें यमराज अपना फांस डालके उसे बांध लेता है। हे राजन्! जो कर्म्म अहङ्कार सम किये जाते हैं, वे फलदायक अर्थात् मुक्ति देनेवाले नहीं होते। और जो कर्म्म आसक्ति रहित होकर किया जाता है, वह महा फलदायक होता है, क्यों कि वह मुक्तिका कारण समझा जाता है। शम, दम, धैर्य्य, पवित्रता, सरलता, धृति, यज्ञ और धर्म्म ये सब नियमित आचार ऋषि-प्रणीत विधि कहके वर्णित हैं। गृहस्थाश्रममें देवता, पितर और अतिथिके उद्देश्यसे यज्ञ आदि कर्म्म करना योग्य है ऐसा करनेसे ही त्रिवर्ग योग साधन होता है। इससे आसक्तिरहित होकर गृहस्थाश्रममें स्थित सन्न्यासी पुरुषके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नष्ट नहीं होता।

महाराज! पापरहित प्रजापतिने "नाना भांतिकी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञ करके ये लोग मेरी पूजा अर्चा करेंगे," इसी अभिप्रायसे प्रजाओंको उत्पन्न किया है। देखिये वृक्ष, लता, औषधि पशु और मेध आदि सम्पूर्ण सामग्री यज्ञके निमित्त ही उत्पन्न हुई हैं; और पवित्र घृत भी यज्ञमें प्रयोजनीय है। यज्ञकर्म्म गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले पुरुषोंके ज्ञानको बढ़ानेवाला है; इससे इस दुर्लभ गृहस्थाश्रम धर्म्मके कर्म्मोंका अनुष्ठान करना अत्यन्त कठिन कार्य्य है। उस अति दुर्लभ गृहस्थाश्रममें निवास करके तथा पशु और धनधान्य आदि सामग्रियोंसे युक्त होकर भी जो गृहस्थ पुरुष यज्ञादि कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करते, वह बहुत दिनोंतक पापभोग करते हैं। महाराज! ऋषियोंके बीच कोई वेदाध्ययन, कोई ज्ञानकी समालोचना और कोई मनहोमन शास्त्र आलोचनारूपी महायज्ञका अनुष्ठान करते रहते हैं। इसी भांति स्थिर चित्तवाले ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मणोंके संसर्गमें रहनेके वास्ते देवता लोग भी अभिलाष करते हैं। हे राजन्! शत्रुओंको जीतकर आपने जो बहुतसे रत्न संग्रह किये हैं, उसे यज्ञमें बिना व्यय किये हीं, जो अब इस समय आरण्यक धर्म्म ग्रहण करनेका

प्रसङ्ग करते हैं; उससे केवल आपकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। गृहस्थाश्रममें स्थित राजाओंको सर्व्वमेध, अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञोंमें धन त्यागके अतिरिक्त दूसरी भांतिका त्याग अर्थात् सन्न्यास ग्रहण करते नहीं देखा है। हे राजेन्द्र! इससे जैसे देवराज इन्द्रने बहुतसे यज्ञ किये थे, वैसे ही अश्वमेध, राजसूय प्रभृत यज्ञ जिनकी ब्राह्मण लोग प्रशंसा करते हैं, उन्होंका अनुष्ठान कीजिये। देखिये राजाकी असावधानीसे यदि डाकू लोग प्रजाके धनको हर लेवें; और राजा यदि प्रजाकी रक्षा न करे, तो वह राजा साक्षात् कलियुगका स्वरूप ही कहा जाता है।

हमलोग राजपुत्र होकर भी यदि सज्जित हाथी, घोड़े, गऊ और सब भांतिसे अलंकृत दासी, सेवक, गांव, भूमि और गृह आदि सामग्री ब्राह्मणोंको दान न कर सके, तो अपने दोषसे ही हम लोग मत्सरी होकर कलिस्वरूप कहे जावेंगे। जो लोग दान आदि कर्म्मसे प्रजाकी रक्षा नहीं करते, वे पापी राजा लोग परलोकमें सदा दुःख भोग करते हैं; वे कदापि सुख नहीं पा सकते। हे धर्म्मराज! जो पवित्र तीर्थोंमें स्नान पितर लोकके वास्ते श्राद्धादि और देवताओंके वास्ते यज्ञ आदि कर्म्मोंका अनुष्ठान न करके वनके बीच गमन करेंगे, तो आप दोनों लोकसे अन्तमें इस प्रकार नष्ट होंगे, जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे बादल छिन्नभिन्न हो जाते हैं। जो भीतरसे अभिमान और बाहरी सम्पूर्ण वस्तुओंमें मनकी आसक्ति त्याग सकते हैं, वे ही प्रकृत सन्न्यासी हैं; नहीं तो गृहस्थाश्रम त्यागके वनमें चले जानेसे कोई सन्न्यासी नहीं हो सक्ता। महाराज! अप्रतिसिद्ध और वेदकार्य्यमें स्थित ब्राह्मणोंके विषयमें यह लोक और परलोक नहीं बिगड़ता। पहिले समयमें साधु पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, तथा अपने धर्म्ममें रत होके जैसे देवराज इन्द्रने दैत्योंका वध किया था, वैसे ही युद्धभूमिमें पराक्रमी शत्रु कौरवोंका वध करके आप किस प्रकार शोक कर रहे हैं, वैसा कौन पुरुष शोक करता है? हे राजेन्द्र! अब शोक न कीजिये; आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पराक्रमके प्रभावसे पृथ्वी जय की है; इससे अब यज्ञ करके मन्त्रपाठ करनेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धनादि दान कीजिये; ऐसा करनेसे आप अनायाससे ही शीघ्र स्वर्ग लाभ प्राप्त कर सकोगे।

१२ अध्याय समाप्त।

सहदेव बोले, महाराज! केवल बाह्यवस्तु सम्पूर्ण परित्याग करनेसे ही सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती, बरन आन्तरिक आसक्ति त्याग सके तो सिद्धि प्राप्त होना सम्भव है। अन्तरमें विषयासक्त और बाहरी वस्तुओंके त्याग करनेवाले पुरुषको जिस प्रकार धर्म्म और सुखलाभकी सम्भावना रहती है, वह हम लोगोंके शत्रुओंको प्राप्त होवे; और आन्तरिक अभिमान आदि त्यागके यथानियमसे पृथ्वी शासन करनेवाले राजाको जैसा धर्म्म और सुख प्राप्त होना सम्भव है, वह हम लोगोंके इष्ट मित्रोंको प्राप्त होवे। "मम" ये दो अक्षर ही मृत्यु है; और "न मम" ये तीन अक्षर अर्थात् निर्म्मम होके नित्य ब्रह्म जानना चाहिये। महाराज! ज्ञान और अज्ञान, ये दोनों अवश्य ही प्राणियोंके शरीरमें अलक्षित रूपसे स्थित होकर आपसमें प्रतिद्वन्द्वी होते हैं यदि यह निश्चित है कि जीव अमर है, तो शरीर नष्ट करनेसे कैसे प्राणियोंकी हिंसा हो सकती है? और यदि शरीरका जनना मरना देखकर उस जीवकी उत्पत्ति और मृत्यु माने तो वेदमें कही हुई समस्त क्रिया मिथ्या होजावेगी; इससे जीवकी उत्पत्ति और नाशके विषयमें सन्देह त्यागके पूर्व समयके साधु पुरुषोंके आचरित मार्गको अवलम्बन

करना बुद्धिमान पुरुषको उचित है। इस स्थावर जङ्गमसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त करके भी जो पुरुष राज्यसुख नहीं भोग करते, उनका जीना ही निष्फल है। जो लोग वन-वासी होकर जीवन धारण करते हैं, परन्तु और विषय वासनाकी ममता उनके चित्तसे नहीं छूटती; वे शीघ्र ही मृत्युके कराल ग्रासमें पतित होते हैं। हे महाराज! आप इस आत्माको प्राणियोंके भीतर बाहर प्रत्यगात्म रूपसे स्थित समझिये; जो लोग आत्माको ऐसा जान सकते हैं, वे महाभयसे मुक्त होते हैं। आप हम लोगोंके पिता, माता भ्राता और गुरु हैं; इससे मैंने दुःखसे आर्त्त होकर जो कुछ प्रलाप-युक्त वचन कहा है, उस अपराधको क्षमा कीजिये, क्यों कि मैंने जो कुछ कहा है, चाहे वह न्याययुक्त हो अथवा अन्याय पूरित हो होवे, केवल आपमें भक्ति रहनेके कारणसे ही मैंने कहा है।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमे जय! भीमसेन आदि भाइयोंने वेदविहित वच नोंको कहके इस प्रकार धर्म्मराज युधिष्ठिरको प्रबाधित किया, तौभी जब उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। तब महत् अभिजन-सम्पन्न आयत-नैनी स्त्रियोंमें अग्रगण्य श्रीमती द्रौपदी देवीने कुछ कहनेकी अभिलाष की। वह धर्म्म जान-नेवाली, धर्म्मदर्शिनी, विपुलश्रोणी पाञ्चाली स्वाभाविक ही माननी थी उसपर भी राजा युधिष्ठिर उसका सदा सम्मान किया करते थे, इस ही कारण वह उनके समीप बहुत कुछ अभिमान युक्त वचनोंको प्रकाशित कर सकती थी। वह हाथियोंके बीचमें स्थित यूथपतिकी भांति सिंह और शार्दूलके समान पराक्रमी भाइयोंके बीचमें बैठे हुए राज शिरोमणि निज स्वामी युधिष्ठिरकी ओर कटाक्ष करके मनो-हर शान्त वचनसे उन्हें सम्बोधन करके बोली, महाराज! तुम्हारे भ्राता सूखे कण्ठसे युक्त चातककी भांति चिल्ला रहे हैं, तौभी तुम उन लोगोंको अभिनन्दन नहीं करते हो? बहुत दिनोंसे दुःख भोग करनेवाले महामतवाले हाथीके समान पराक्रमी इन भाइयोंको आप यथा उचित वचनोंसे आनन्दित कीजिये।

हे राजेन्द्र! पहिले द्वैतवनमें जब तुम्हारे ये सब भाई सर्दी, वायु और गर्म्मीसे अत्यन्त क्लेशित हुए थे; तब उस समय आपने कहा था,—हे शत्रुओंको नाश करनेवाले युद्धविजयी भ्राता लोगो! हम सब कोई मिलके युद्धभू-मिमें दुर्य्योधनको मारकर सब अभिलाष सिद्ध करनेवाली पृथ्वीको भोग करेंगे; और जब तुम लोग शत्रु सेनाके रथियोंको रथ रहित और हाथियोंको मारकर उन सब रथों और चतुर-ङ्गिनी सेनाके मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित करके अनेक दक्षिणासे युक्त अनेक भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करोगे, उस समय तुम लोगोंका यह सब दुःख सुखमें परिणत होगा' हे धर्म्मात्माओंमें मुख्य महाराज! आप उस समय इस प्रकार धीरजयुक्त वचन कहके इस समय किस कारणसे हम लोगोंका मन उत्सा-हरहित कर रहे हैं? देखिये कादर पुरुष कदापि पृथ्वी वा ऐश्वर्य्य भोगनेका अधिकारी नहीं होसकता! और जैसे कीचड़में मछली नहीं रह सकती, वैसे ही नपुंसकके घरमें पुत्र कलत्र नहीं रहते। राजा दण्ड रहित होनेसे प्रभावयुक्त पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ नहीं हो सकता और उसकी प्रजा भी कदापि सुख नहीं पासक्ती। महाराज! सब प्राणियोंके ऊपर मित्रभाव, दान, अध्ययन और तपस्या ये सब ब्राह्मणके धर्म्म हैं; क्षत्रियके नहीं। दुष्टोंका नाश, साधु पुरुषोंका पालन, और युद्धमें पीछे न हटना यही राजाओंके परम

धर्म्म है। जिसमें क्षमा, दान, क्रोध, भय; अभय, निग्रह और अनुग्रह वर्तमान है, उसे ही धर्म्मज्ञ कहा जा सकता है। महाराज! आपने दान, अध्ययन सान्त्वाक्य, यज्ञ, वा याचना करके पृथ्वी नहीं प्राप्त किया है; द्रोणाचार्य्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य आदि महावीरोंसे रक्षित युद्धमें उद्यत शत्रुके हाथी, घोड़े, रथ और पदाति वीरोंसे युक्त चतुरङ्गिनी सेनाका नाश करके इस पृथ्वीको प्राप्त किया है, इससे अब इसे भोग कीजिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! पहिले राजसूय यज्ञके समयमें आपने अनेक भांतिके प्राणियोंसे युक्त यह जम्बूद्वीप, महामेरु पर्व्वतके पश्चिम जम्बूद्वीपके समान क्रौञ्च द्वीप और महागिरिके पूर्व्व क्रौञ्च द्वीप सदृश शाकद्वीप और इस महापर्व्वतके उत्तर दिशामें स्थित भद्राश्व द्वीप, इसके अतिरिक्त समुद्र पर्य्यन्त नाना प्राणियोंसे युक्त सम्पूर्ण अन्तर्द्वीपोंको भी शासित किया था। हे महाराज! आप इस भांति असीम कार्य्योंको करके ब्राह्मणोंसे सम्मानित होकर भी क्यों नहीं प्रसन्न चित्त होते हैं? क्या ही आश्चर्य है! आप मतवाले हाथी और वृषभके समान पराक्रमी अपने भाइयोंको और देखकर इन्हें आनन्दित करिये। देखिये आप सब कोई देवतोंके समान शत्रुओंका नाश करने और उनके पराक्रमको सहनेमें समर्थ हैं; अधिक क्या कहूं, मेरे विचारमें हम लोगोंके बीच एक ही पुरुषके स्वामी होनेसे परम सुखका निमित्त होसक्ता है। जब शरीरको धारण करनेवाली पांचों इन्द्रियोंकी भांति आप पांचों भाई मेरे स्वामी हैं; तब जो मेरा कितना सौभाग्य है; उसे कहां तक वर्णन करूं? महाराज! मेरी सास सर्व्वज्ञानसे युक्त दीर्घदर्शिनी कुन्तीदेवीने कुछ भी मिथ्या वचन नहीं कहा था, उन्होंने मुझसे कहा था, "हे द्रौपदी! महापराक्रमी युधिष्ठिर युद्धभूमिमें सहस्रों राजाओंको मारके तुम्हारे सुखका विधान करेंगे," परन्तु आपको सहसा इस प्रकारसे मोहयुक्त देखकर अब बोध होता है, उनके वे सब वचन मिथ्या हुए। जिसका जेठा भाई उन्मत्त होता है छोटे भाई सब उसके ही अनुगामी होते हैं। देखिये आपका चित्त उन्मत्तता युक्त होरहा है, तौभी आपके भाई आपके अनुगामी होरहे हैं। हे राजेन्द्र! यदि ये लोग उन्मत्त न हुए होते तो नास्तिकोंके सहित आपको बांधके स्वयं ही पृथ्वीका शासन करते। जो पुरुष मूढ़ होकर आपकी भांति आचरण करता है, उसका कदापि कल्याण नहीं हो सकता। जो पुरुष इस भांति उन्मादमार्गी होता है, धूप अञ्जन नाश और रक्षा बन्धनसे उसकी चिकित्सा करनी उचित है। परन्तु हे भरतसत्तम महाराज! स्त्रियोंके बीच में ही अत्यन्त अधम हूं, क्यों कि मैं वैसे पुत्रोंसे रहित होकर भी अभी जीवित रहनेकी अभिलाषा करती हूं। आपके ये सब भाई लोग और मैं, हम सब कोई यत्न कर रहे हैं; इससे हमारे वचनोंको निष्फल करना आपको उचित नहीं है। देखिये आप सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको त्यागके वनमें गमन करनेके वास्ते उद्यत होकर स्वयं ही विपदको आवाहन कर रहे हैं। महाराज! पहिले जैसे समस्त राजाओंमें माननीय मान्धाता और अम्बरीष थे, इस समय आप भी उस ही भांति विराजमान हैं। इससे धर्म्मके सहित प्रजाको पालन करते हुए वन पर्व्वत और अनेक द्वीपोंसे युक्त इस पृथ्वीका शासन, विविध यज्ञोंका अनुष्ठान, और शत्रुवोंके सङ्ग युद्ध करते हुए ब्राह्मणोंको धन वस्त्र आदि अनेक भांतिकी भोगप्रद वस्तु प्रदान कीजिये; और विरत न होइये।

१४ अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जन-मेजय ! अर्ज्जुन द्रौपदीके वचनको सुनकर जेठे भाई, अच्युत महाबल युधिष्ठिरका सम्मान करते हुए फिर कहने लगे।

अर्ज्जुन बोले, हे महाराज ! दण्ड ही समस्त प्रजाको शासन और पालन करता रहता है; और सम्पूर्ण प्राणियोंको निद्रावस्थामें भी दण्ड जागता रहता है; इस ही कारण पण्डित लोग दण्डको ही धर्म्म कहके वर्णन करते हैं। दण्ड ही धर्म्म अर्थ और कामका रक्षक है; इसहीसे दण्ड त्रिवर्ग नामसे वर्णित हुआ है। अधिक क्या कहूं, प्रजाओंको धनधान्य आदि जो कुछ वस्तु है, वह सब दण्डसे ही रक्षित होती है। हे राजेन्द्र ! इससे आप भी ऐसाही निश्चय करके लोक-रक्षा स्वरूप दण्डको ग्रहण करके लौकिक भावोंपर दृष्टि कीजिये। देखिये इस पृथ्वीपर कितने ही पापी पुरुष केवल राज दण्डके भयसे ही पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त नहीं होते; कोई कोई यम-दण्ड और परलोकके भयसे और कोई कोई जातिय भयसे पापाचरण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। हे राजन् ! इसी भांति लौकिक व्यव-हारोंकी सिद्धि होती है; परन्तु सब प्राणी केवल दण्ड-भयसे ही अपने अपने कार्य्योंमें यथा रीति तत्पर हैं। इस पृथ्वीपर बहुतेरे प्राणी ऐसे भी हैं, जो केवल दण्डभयसे आप-समें एक दूसरेका भक्षण नहीं करते। अधिक मैं अब क्या कहूं, यदि दण्ड प्रजाकी रक्षा न करता; तो समस्त प्राणी महाघोर अन्धकार रूपी नरकमें पतित होते। दुष्टोंका दमन और साधारण पुरुषोंको शासित करता है, इसीसे पण्डितोंने उसका नाम दण्ड रक्खा है। यदि ब्राह्मणजाति कुछ अपराध करे, तो केवल वचनसे उसे दण्डित करना कर्त्तव्य कर्म है। अपराधी क्षत्रियको केवल भोजन मात्र प्रदान करना चाहिये, उसे वेतन देना उचित नहीं है, वैश्यको धन (जुर्माना) रूपी दण्ड करे और शूद्र जातिको दूसरा कुछ दण्ड न करके उससे केवल सेवा कर्म्म करानेकी ही विधि है। प्रजाके धन प्राणकी रक्षा और सावधानताके वास्ते जगत्के बीच-दण्डका नियम स्थापित हुआ है। जहां दण्ड चलानेवाला राजा पूर्णरीतिसे विधा-नवान होता है, और श्याममूर्त्ति तथा लाल नेत्रवाला दण्ड यथार्थ रीतिसे उद्यत रहता है; वहांपर प्रजा कदापि मोहित नहीं होती। ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक सब आश्रमवाले केवल दण्डभयसे नियमित पथमें स्थित हैं। महाराज ! यदि दण्डभय न रहता तो कोई पुरुष यज्ञानुष्ठान और दान कर्म्म करनेकी इच्छा न करते, अधिक क्या कहूं, भय रहित होनेसे कोई पुरुष भी नियममें रह-नेकी इच्छा न करते। जैसे मछुए बिना मछ-लियोंकी हिंसा किये जीविका निर्व्वाह नहीं कर सकते, वैसे ही राजा लोग भी शत्रुओंको बिना नष्ट किये कदापि राजश्रीको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते। राजा लोग यदि अपने शत्रुओंका नाश न करें, तो उनका धन, कीर्त्ति और प्रजा कुछ भी स्थायी नहीं रह सकती देखिये इन्द्रने वृत्रासुरका वध करके महेन्द्र नाम प्राप्त किया है देवताओंके बीच जो लोग शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, उनको सब कोई भक्ति पूर्व्वक पूजा अर्चा किया करते हैं। रुद्र इन्द्र, वरुण, अग्नि, स्वामकार्त्तिक, यम, काल, मृत्यु वायु, कुबेर, सूर्य्य, वसु, मरुत, विश्वदेव और साध्य आदिक देवता ये सब कोई शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। परन्तु मनुष्य लोग उन देवतोंके प्रतापको जानके विनीत भावसे उन्हें प्रणाम किया करते हैं; ब्रह्मा, धाता वा पूषाको कदापि प्रणाम नहीं करते। केवल कोई कोई मनुष्य सब कर्म्मोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंको सम दृष्टिसे देखते हैं और साधु तथा परिश्रमी देव-ताओंकी पूजा अर्चा किया करते हैं। इस संसा-रके बीच मैं ऐसे किसी प्राणीको भी नहीं

देखता, जो विना हिंसा किये ही जीविका निर्व्वाह कर सके, क्यों कि निर्व्वल प्राणियोंसे बलवान जीवोंकी जीविका निर्व्वाह होता है; सर्व्वत्र ऐसाही नियम दीख पड़ता है। देखिये नकुल चूहेको, बिल्लीके नकुल, कुत्ते बिल्लीको और चीता कुत्तेको भक्षण करते हैं। इसके अतिरिक्त काल-पुरुष समयके अनुसार उपस्थित होकर उन सबकोही भक्षण करता है। अधिक क्या कहूं, इस स्थावर और जङ्गममय जगत्के बीच जो कुछ पदार्थ हैं; उन्हें प्राणके भक्ष्य करके विधाताने उत्पन्न किया है; इसही कारण विद्वान पुरुष उस विषयमें मोहित नहीं होते।

हे राजेन्द्र! आपने जिस कुलमें जन्म ग्रहण किया है, उस कुलमें आचरित कर्म्मोंमें तुम्हें प्रवृत्त होना ही उचित है, मूढ़बुद्धि क्षत्रिय ही क्रोध हर्षको त्यागके वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करते हैं; परन्तु हिंसाके विना तपस्वी लोगोंके शरीरका भी निर्व्वाह नहीं होसकता। पृथ्वीपर जलमें और थलमें बहुतेरे छोटे छोटे जीव घुसे हुए हैं; तपस्वी लोग प्राण धारण करनेके निमित्त फल और जल आदिके सङ्ग उन छोटे छोटे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। इस पृथ्वी पर बहुतसे ऐसे छोटे जीव हैं, कि अनुमानके अतिरिक्त उनका अस्तित्व स्थिर नहीं होसकता; वे जीव इतने सूक्ष्म हैं, कि नेत्रकी पलकके आघातसे भी शीघ्र नष्ट होसकते हैं। कोई कोई मनुष्य क्रोध और मत्सरता त्यागके मुनि धर्म्म अवलम्बन करके गांवसे निकलकर वनमें गमन करते हैं; परन्तु वहांपर भी उन मूढ़ पुरुषोंको गृहस्थाश्रमी होते देखा जाता है; और बहुतेरे पुरुष गृहस्थाश्रममें ही निवास करके भूमि खनन, औषधि छेदन और उद्भिज्, अण्डज आदि चारों भांतिके प्राणियोंको हिंसा करके यज्ञकार्य्योंसे अनायास ही स्वर्गलोकमें गमन कर सकते हैं। इससे मुझे इस प्रकार निश्चय मालूम है, कि यथारीति दण्ड प्रयोग करनेसे ही प्राणी मात्रके कार्य्य सिद्ध होसकते हैं। इस जगत्के बीच दण्ड न रहता, तो समस्त प्रजा नष्ट होजाती; अधिक बलवान प्राणी अपनेसे निर्व्वल प्राणियोंको जलमें स्थित मछलियोंकी भांति विचार कर भक्षण कर डालते हैं। पहिले ब्रह्माने भी यह सत्य वचन वर्णन किया था कि अच्छी भांतिसे विचार पूर्व्वक दण्ड प्रयोग होनेसे ही प्रजाकी रक्षा होती है। देखिये शान्त अग्नि भी दण्डके भयसे फफकार देने मात्रसेही फिर प्रज्वलित होजाती है। साधु और दुष्ट पुरुषोंको विभाग करनेवाला दण्ड यदि इस संसारके बीच न रहता, तो सब प्राणी अन्धकार रूपी नरकमें पड़े रहते; कुछ भी विदित न होसकता। अधिक क्या कहा जावे, जो लोग नियम उल्लङ्घन करनेवाले, वेदनिन्दक और नास्तिक हैं,—वे भी दण्डसे पीड़ित होकर शीघ्र ही नियमके वशीभूत होजाते हैं। महाराज! समस्त प्राणी दण्ड भयसे नियमको उल्लङ्घन नहीं कर सकते क्यों कि इस जगत्के बीच पापरहित मनुष्य बहुत ही दुर्लभ हैं, इससे प्रायः सब कोई दण्ड भयसे भीत होकर नियमित मार्गमें गमन करते हैं। चारों वर्णकी प्रजाके सुख, धर्म्म, अर्थ रक्षा और उन लोगोंकी नीतिमार्ग अवलम्बन करानेके ही वास्ते विधाताने दण्डको उत्पन्न किया है। यदि दण्डका भय न रहता, तो दुष्ट पक्षी आदि विपत्कारी जन्तु सदा यज्ञकी हवि, पशु और मनुष्योंको भक्षण करते, दण्ड प्रजाकी रक्षा न करे, तो वेदाध्ययन, दूध देनेवाली गऊका दुहना, और कन्याओंके विवाह आदि सब कार्य्य कभी न हों। यदि लोक-रक्षा करनेवाला दण्ड न रहता, तो समस्त क्रिया और नियम शिथिल होकर नष्ट होजाते तथा प्रजा किसी वस्तुको भी अपनी न समझ सकती अर्थात् बलवान निर्व्वलोंके धनको अनायासही बलपूर्व्वक हर लेते। यदि दण्ड

लोक-रक्षा न करता, तो कोई पुरुष भी निर्भ-यचित्त होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त वास्तवरिक यज्ञोंके अनुष्ठान न कर सकते । और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ आदि आश्रमवासी कोई पुरुष भी विधिपूर्व्वक अपने अपने आश्रमके कर्म्मोंका अनुष्ठान न करते और कोई पुरुष विद्या प्राप्त करनेमें भी समर्थ न होते । दण्डका भय न रहता, तो ऊंट, बलवान बैल, घोड़े, खच्चर और गर्द्दभ आदि पशु सवारियोंमें जुत-कर कदापि उसे वाहन न करते । हे महा-राज ! समस्त प्राणी दण्डभयसे यथानियम स्थित हैं ; इसी ही कारणसे पण्डित लोग दण्डको सब धर्म्मोंका मूल समझते हैं ; दण्ड ही मनु-ष्योंको स्वर्गलोकमें ले जानेका मूलका कारण है, अधिक क्या कहूं, यह सम्पूर्ण जगत् केवल दण्डप्रभावसे ही प्रतिष्ठित है । जिस स्थानपर शत्रुओंका नाश करनेवाला दण्ड विधिपूर्व्वक प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमें किसी प्रका-रके अनिष्ट कपटता, ठगहारी नहीं रह सकती, यदि दण्ड उदास होकर प्रजाकी रक्षा न करता, कौवे पुरोडाश भोजन और कुत्ते यज्ञके घृतको चाटनेमें प्रवृत्त होते । हे राजन् ! धर्म्म हो, वा अधर्म्म ही होवे ; इस समय यह राज्य हम लोगोंको प्राप्त हुआ है, आप शोक त्यागके उसे भोग करिये और यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये । श्रीमान् पुरुष अपने प्रिय-पुत्र कलत्रके सङ्ग वास कर सुन्दर वस्त्र पहरते और उत्तम भोजन करते हुए सुखपूर्व्वक धर्म्मा-चरण करते रहते हैं । इस संसारके बीच जो कुछ कार्य्य हैं, वे सब धनके वशमें हैं, और वह अर्थदण्डके अधिकारमें है । इस समय विचार करके देखिये, कि दण्डका कितना बड़ा गौरव है । आप समझ रखिये लोकयात्रा निर्व्वाहके वास्ते ही धर्म्म स्थित हुआ है । कोई निर्व्वल पुरुष बलवान् पुरुषसे पीड़ित होनेपर उस निर्व्वल पुरुषके अभिलाषके वास्ते बलवानका नाश करनेसे उस बलात्मक हिंसाके द्वारा अहिं-साके भी बढ़के धर्म्मोपार्ज्जन होता है । हे राजन् ! इस संसारके बीच कोई कार्य्य भी एक बारगी दोष पूर्ण और दोषसे रहित नहीं है, सम्पूर्ण कार्य्योंमें कुछ दोष और कुछ गुण दीख पड़ते हैं । देखिये कितने ही पुरुष पशु और भार आदिक कार्य्य करा लेते हैं, फिर भी उन्हें दुःखित करते, सींगोंको काटते, उन्हें बांधते और उनके शरीरपर प्रहार करते हैं । यह अनित्य लोक व्यवहार इसी भांति पर्य्या-कुलित अर्थात् दण्डके प्रभावसे समस्त कार्य्य निर्व्वाहित होते हैं ; इससे आप भी ऐसे ही व्यवहारोंसे प्राचीन धर्म्माचरण कीजिये । यज्ञका अनुष्ठान, दान, प्रजापालन, शत्रुओंका नाश और मित्रोंको पालन करते हुए पूर्व्वरीतिसे धर्म्मोपार्ज्जन करिये । हे राजन् ! शत्रु नाशके समय आपके चित्तमें कुछ भी दीनता उपस्थित न होवे ; क्यों कि विधिपूर्व्वक शत्रुओंका नाश करनेसे उसे बध करनेवालेको पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता । अधिक क्या कहें, यदि ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण मारनेकी इच्छासे उपस्थित होवे, तो शस्त्र ग्रहण करके उसका बध करनेसे ब्रह्म-हत्याके पापमें भी नहीं लिप्त होना पड़ता ; क्यों कि उस सम्मुख उपस्थित होनेवाले आत-तायी पुरुषका क्रोध ही मारनेवालेके क्रोध उत्पन्न करानेका मूल है । विशेष करके जो सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं, उनका कोई नाश नहीं कर सकता, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । यदि आत्मा अवध्य है, तो कौन किसका बध करनेवाला होसकता है ? जैसे मनुष्य बार बार घरमेंसे घरके भीतर प्रवेश करते हैं; वैसेही जीव भी बार बार एक शरीर त्यागके दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है देहधारीके प्राचीन शरीर त्याग और नवीन शरीर धारण करनेका ही तत्वदर्शी पण्डित लोग मृत्यु कहके वर्णन करते हैं ।

१५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनका वचन समाप्त होनेपर महा तेजस्वी क्रोधी भीमसेन धीरज धर जेठे भाई राजा युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! आप किसी विषयमें अज्ञान नहीं हैं सम्पूर्ण धर्म्म आपको विदित है; हम लोग सदा आपके चरित्रके अनुसरण करनेकी इच्छा करते हैं। परन्तु किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकते। आपको कुछ भी न कहूं, ऐसे ही मनमें इच्छा रहती है; परन्तु दुःखके वेगको न सहनेके कारण इस समय मैं कुछ कहता हूं. आप सुनिये। आपके मोहयुक्त होनेसे सब निष्फल होरहा है, और हम भी कातर तथा निर्बल होरहे हैं! आप सब शास्त्रोंके जानने-वाले राजा होकर भी किस कारण दीन भावसे युक्त कायर पुरुषकी भांत मोहित होरहे हे? हे राजन्! प्राणियोंकी सुगति और अगति आपको विदित है; और भविष्यत तथा वर्त-मान कालकी गति भी आपसे छिपी नहीं है। इस राज्यके विषयमें मैं आपसे कुछ कारण दिखाके वचन कहता हूं, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस जीव-लोकमें शारीरिक और मानसिक ये ही दो भांतिकी पीड़ा उत्पन्न होती हैं; परन्तु उनमेंसे एकके उत्पन्न होनेसे ही दूसरे की उत्पत्ति होती है। शारीरिकके विना मानसिक और मानसिकके विना शारी-रिक पीड़ा नहीं उत्पन्न होसकती। शरीरके अस्वास्थ्यसे मानसिक पीड़ा प्रगट होती है और मानसिक पीड़ा उत्पन्न होनेसे ही शरीर शिथिल होता है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। जो पुरुष बीते हुए शारीरिक और मानसिक क्लेशोंको स्मरण करके शोकित होता है, वह एक सङ्ग दूसरे क्लेशको आकर्षित करके दो अनर्थोंमें फंसता है। कफ, पित्त और वायु शरीरके येही तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी जो साम्या वस्था है, उसे ही स्वस्थ शरीरके लक्षण कहते हैं; और उनको घटती बढ़ती होनेसे ही प्रति-कार करनेके वास्ते उपदेश है; उष्ण वस्तुसे कफ और ठण्ढी वस्तुओंसे पित्त निवारित किया जाता, है। शरीरकी भांति मनके भी सत, रज और तम, ये तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाको ही मानसिक स्वास्थ्यका लक्षण कहते हैं और उनमेंसे एकके उत्तेजित होनेसे प्रतिकारकी आवश्यकता होती है; हर्षसे शोक और शोकसे हर्ष निवृत्त होता है। कोई कोई पुरुष सुखमें स्थित होकर दुःखको और कोई दुःखमें पड़के सुखको स्मरण किया करते हैं, परन्तु आप तो कभी सुख और दुःखमें आसक्त नहीं होते, इससे दुःखके समयमें सुख और सुख उपस्थितके समय दुःखको स्मरण करना आपको उचित नहीं हैं. देखिये, प्रारब्ध ही बलवान है। अथवा जिससे आप क्लेशित होरहे हैं, आपका स्वभाव यदि ऐसा ही होवे, तो पहिले जो शत्रु लोग हमारे सन्मुख ही एक वस्त्र धारण करनेवाली रज-स्वला द्रौपदीको सभाके बीच ले आये थे, उस विषयको आप क्यों नहीं स्मरण करते हैं? हमने जो नगरसे बाहर होके मृगछाला पहरके महावनमें बास किया और वहांपर जटासुर तथा चित्रसेन गन्धर्व्वके सङ्ग युद्ध हुआ, सिन्धु-राज जयद्रथने द्रौपदीको हरण किया, अज्ञात-वास और राजपत्नी द्रौपदीके ऊपर कीचकके चरणप्रहार आदि बहुतसे उपद्रवोंसे अनेक भांतिके दुःख प्राप्त हुए थे; आप किस कारणसे उन सब दुःखोंको भूले जाते हैं? हे राजन्! पहिले जैसे भीष्म द्रोणके सङ्ग आपका युद्ध हुआ था, वैसे ही इस समय केवल एक मनके सङ्ग आपके युद्ध करनेका समय उपस्थित हुआ है, इस युद्धमें शस्त्रों और बन्धु-बान्धवोंका प्रयोजन नहीं होता इसमें एक मात्र बुद्धिकी सहायतासे ही युद्ध करना होगा यदि आप मनको विना पराजित किये ही प्राण परित्याग करेंगे, तो आपको दूसरा शरीर ग्रहण करनेपर भी

तथा शास्त्रके अनुसार परम शान्तिको प्राप्त हुए हैं, हे भारत ! जो होनहार होता है, वह अवश्य होता है। प्रारब्धको अतिक्रम करनेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता।

२२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज ! जितेन्द्रिय अर्जुनसे इस प्रकार प्रबोधित होनेपर भी कुरु-नन्दन युधिष्ठिरने कुछ भी उत्तर न दिया। तब महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, हे सौम्य युधिष्ठिर ! अर्जुनने यथार्थ वचन कहे हैं; शास्त्रमें गृहस्थ धर्म्म ही उत्तम कहके वर्णित है। हे धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर ! इससे गृहस्थाश्रम त्यागके तुम्हें वनमें गमन करना उचित नहीं है; शास्त्रकी विधिके अनुसार अपने धर्म्म अर्थात् गृहस्थाश्रममें प्रवृत्त होजाओ। देखो देवता, पितर, अतिथि और सेवक लोग सब कोई गृहस्थके ही आसरे जीविका निर्व्वाह करते हैं, इससे उन लोगोंको पालन करना उचित है। पशु पक्षी आदि समस्त प्राणी गृहस्थोंके अवलम्बसे प्राण धारण करते हैं, इससे गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है। महाराज ! गृहस्थ धर्म्मका अनुष्ठान अत्यन्तही कठिन है, इससे अब तुम अजितात्मा पुरुषोंसे न सिद्ध होने योग्य गृहस्थाश्रमके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाओ। सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंमें तुम्हारी विलक्षण अभिज्ञता है, और तुमने बहुत कुछ तपका भी अनुष्ठान किया है, इस समय धुरन्धर पुरुषोंके योग्य पिता पितामहोंकी भांति राज्यभारको ग्रहण करना ही तुम्हें उचित है। शक्तिके अनुसार तपस्या, यज्ञ, क्षमा, अनासक्ति, भिक्षावृत्ति, इन्द्रियसंयम, ध्यान, अत्यन्त नम्रता और ब्रह्मध्यानके साधन आदि कार्य्य ब्राह्मणोंको ही सिद्धिकारक हैं। क्षत्रियोंके जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म हैं, उन्हें वर्णन करता हूं, उस विषयमें तुम भी अजान नहीं हो; शिक्षा प्राप्त करना, उत्साह प्रकाश, यज्ञानुष्ठान, जो सम्पत्ति प्राप्त होवे उसमें असन्तोष, राजदण्डको धारण करना, कठोरता, प्रजापालन वेदपाठ, तपस्याका अनुष्ठान, सच्चरित्रता, धन उपार्जन और उसे योग्यपात्रको दान करना,—ये सब क्षत्रिय पुरुषोंके कर्त्तव्य-कर्म्म शास्त्रमें कहे गये हैं, जो लोग इन सम्पूर्ण कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे इस लोक और परलोकमें सिद्धि लाभ करते हैं। परन्तु इन सब कर्म्मोंके बीच क्षत्रियोंका दण्ड धारण करना ही मुख्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है, दण्डभी बलके आसरेसे धारण किया जाता है, इससे क्षत्रियोंमें बल होना परम आवश्यक है। हे राजेन्द्र ! ये सम्पूर्ण कर्म्म क्षत्रियोंको सिद्धि प्राप्त करानेवाले हैं। इस विषयमें वृहस्पतिने भी इस प्रकार कहा है कि सांप जैसे चूहेको भक्षण करता है, वैसे ही समर-पराङ्मुख राजा और संसारमें आसक्त ब्राह्मणोंको पृथ्वी शीघ्र ही ग्रास करती है इस प्रकार जनश्रुति है, कि राजऋषि सुद्युम्नने प्रचेता-पुत्र दक्षकी भांति एकमात्र दण्ड धारण करनेके प्रभावसे ही परम सिद्धि प्राप्त की थी।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भगवन् ! पृथ्वीपति सुद्युम्न किस कर्म्म फलसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे ? मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे धर्म्मराज युधिष्ठिर ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है, उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाके सुनो। शङ्ख और लिखित नामक अत्यन्त कठोर व्रत करनेवाले दो भाई थे। बाहुदा नदीके किनारे फल पुष्प लता और सुन्दर वृक्षोंसे शोभित अत्यन्त रमणीय अलग अलग उनके दो आश्रम थे। किसी समय लिखित ऋषि इच्छानुसार अपने जेठे भाई शङ्ख ऋषिके आश्रमपर उपस्थित हुए, उस समय

शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करना होगा, अर्थात् दूसरे जन्ममें भी आप युद्ध कार्य्यको अनिवार्य्य समझिये। हे राजेन्द्र! इससे वन-गमन रूपी उत्पन्न हुआ भाव परित्याग कर आज ही आप समालोचना रूपी कर्म्मसे अव्यक्त रूप मानस युद्धसे पार होनेके वास्ते यत्नवान होइये, अर्थात् चित्त स्थिर करनेके वास्ते कोशिश करिये मनको बिना पराजित किये वाणप्रस्थ आदि किसी आश्रममें भी आपको सुख नहीं मिल सकेगा, और मनको जीतनेसे आप कृतार्थ हो सकेंगे। आप प्राणियोंकी गतिको इसी भांति विचारके पितृ पितामह आदिके व्यवहारोंके अनुसार यथारीति राज्य शासन करनेमें प्रवृत्त होइये। महाराज! प्रारब्धसे ही पापी दुर्य्योधन अपने अनुयायी और सेवकोंके सहित युद्धमें मारा गया; प्रारब्धसे ही आप द्रौपदीके केशकी भांति फिर राज्यपद पर प्रतिष्ठित हुए हैं। हे राजेन्द्र! पराक्रमी कृष्ण और हम सब कोई आपकी आज्ञाके वशवर्त्ती हैं; आप इस समय दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये।

१६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीमसेन! असन्तोष, प्रमाद, विषयानुराग, अशान्ति, बल, मोह अभिमान और उद्वेग आदि पापोंमें रत होकर ही तुम राज्यकी अभिलाषा करते हो इससे विषय वासना त्याग कर सुख दुःखसे मुक्त और शान्त होकर सुखी हो। देखो, जो एकछत्र राजा होकर भी इस समस्त पृथ्वीको शासन करते हैं, उनके भी एकके सिवाय दो उदर नहीं हैं, तब तुम किस कारणसे इस राज्यकी प्रशंसा कर रहे हो? यह पूर्ण न होनेवाली आशा एक दिन वा कई एक महीनोंमें पूरी होनेकी बात तो दूर है, जीवनके अन्त समय तक भी यत्न करके कोई इसे पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जैसे अग्नि काष्ठ प्राप्त होनेसे ही प्रज्वलित और काष्ठके अभावसे ही शान्त होती है, वैसे ही तुम भी थोड़े भोजनसे उद्दीप्त जठराग्निको शान्त करो। इस पृथ्वीपर मूर्ख पुरुष ही केवल अपने उदरके वास्ते बहुतसी भोजन करने योग्य वस्तुओंकी संग्रह करते हैं, इससे तुम पहिले इस उदरको ही वशमें करो, ऐसा करनेसे ही मानो तुम सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लोगे; अनन्तर यथार्थ कल्याण प्राप्त करनेमें समर्थ होगे। तुम मनुष्योंके इच्छानुयायी ऐश्वर्य्य और भोगोंकी प्रशंसा करते हो; परन्तु भोगवासना त्यागके जो लोग तपस्यासे अपने शरीरको कृशित करते हैं, वे ही श्रेष्ठ लोकोंमें गमन कर सकते हैं। हे तात! धर्म्म और अधर्म्मात्मक राज्यलाभ और राज्यकी रक्षा, ये दोनों ही तुम्हारे हृदयमें परिपूरित हैं; तुम इस महाभारसे मुक्त होकर त्याग अर्थात् सन्न्यास धर्म्मका आश्रय करो। जैसे व्याघ्र एक ही उदरके वास्ते बहुतसा भोजन संग्रह करता है, और दूसरे बहुतेरे दुष्ट पशु उसके संग्रह किये हुए भोजनसे अपने शरीरका पोषण करते हैं; वैसे ही राजा लोग भी अपने एक मात्र उदरके ही वास्ते बहुत सा धन सञ्चय करते हैं, और धूर्त्त लोग उसके ही अवलम्बनसे अपनी अपनी जीविका निर्व्वाह करते हैं। तुम जो राजाओंके विषयमें विषय सक्ति त्यागरूपी अनन्तर-सन्न्यासकी विधि कहते हो, उससे राजा लोग कदापि सन्तोष प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते; तुम विषय-दूषित बुद्धि त्यागके स्वयं ही इस विषयको विचारके देखो! जो लोग पत्ताहारी और जो पत्थर दांत तथा ओखलीसे अन्नको भूसी पृथक करके जीविका निर्व्वाह करते हैं, और जो लोग जल तथा वायुसे शरीरकी रक्षा करते हैं; वे सम्पूर्ण तपस्वी लोग ही यथार्थ रूपसे नरक-यन्त्रणासे मुक्त हो सकते हैं।

इस पृथ्वी पर सुवर्ण और पत्थरके टुकड़ोंमें जिसको समबुद्धि है, वैसे निर्लोभी पुरुष और सम्पूर्ण पृथ्वीको शासन करनेवाले राजा, इन दोनोंमेंसे विषयानुरागसे रहित पुरुषको ही मुक्त समझना चाहिये ; राजाको नहीं। इससे जो इस लोक और परलोकमें अव्यय तथा अशोकको निवास-भूमि स्वरूप हैं ; तुम उनका ही आसरा करके सम्पूर्ण कार्य्योंके सङ्कल्प, आशा और ममतासे रहित होजाओ। जो सब विषयोंके त्याग करनेवाले हैं, वे किसी वस्तुके वास्ते शोक नहीं करते ! तुम विषया-सक्त हो, इस ही कारण विषयके वास्ते शोक करते हो। समस्त विषय वासनाको परित्याग करो ; ऐसा होनेसे मिथ्यापवाद अर्थात् बाहरी विषय भोग और भीतरी जो विषय त्यागरूपी सन्न्यासका अभिमान है उससे मुक्त हो सकोगे। इस जगत्में जीवोंको परलोक गमन करनेके विषयमें "देवयान और पितृयान नामक दो मार्ग हैं, तिसमें यज्ञ करनेवाले पितृयान और मोक्षार्थी लोग देवयान मार्गसे गमन करते हैं ! महर्षि लोग स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य्य आदि तपस्याके अनुष्ठानमें रत होकर शीघ्र ही शरीर त्यागके मृत्युके अधिकारसे पार होजाते हैं। इस संसारमें भोग्य विषय ही बन्धन स्वरूप है, और ये भोग्य-विषय ही कर्म्म कहके वर्णित हुए हैं ; जो लोग इस पापात्मक भोग्य विषय रूप कर्म्मसे मुक्त हो सकते हैं ; वेही उस परमपदको प्राप्त करते हैं।

पहिले शोक मोहसे रहित तत्वदर्शी जनकने जैसा कहा था, और आज पर्य्यन्त भी जो गाथा, लोकसमाजमें वर्णनकी जाती है ; मैं उसे कहता हूं, सुनो। उन्होंने कहा था,— "अहो ! मैं अनन्त ऐश्वर्य्यका स्वामी हूं, तौभी मेरा कुछ नहीं है ; इस मिथिला नगरीके भस्म होनेसे मेरा कुछ भी न जलेगा।" हे भीम ! इससे जैसे पर्व्वतपर चढ़नेवाला पुरुष नीचे रहनेवालोंको भली भांति देखनेमें समर्थ होता है, वैसे ही जो पुरुष ज्ञानरूपी प्रासाद पर चढ़े हैं, वे मूढ़ लोगोंको अविषयीभूत विषयोंके वास्ते महाशोक करते हुए देखते हैं ; परन्तु मन्दबुद्धिवाले मनुष्य उन्हें देखनेमें समर्थ नहीं होते। जिससे दृष्ट विषयोंका बोध अर्थात् निश्चय होता है, उसेही बुद्धि कहते हैं ; उस बोध रूपी नेत्रसे जो लोग अज्ञात विषयोंको जानते और देखकर ही उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्यको निश्चयकर सकते हैं ; उन्हें ही बुद्धिमान् और नेत्रवान् कहा जाता है। जो स्थिर चित्तसे ब्रह्मज्ञानसे युक्त विद्वान पुरुषोंके वचनको हृदयमें धारण कर सकते हैं, सर्व्वत्र अधिक सम्मान-लाभके अधिकारको प्राप्त करनेमे समर्थ हैं। जिस समय पृथक् रूपसे बोध होनेवाले आकाश आदि भूत एक आत्मामें ही स्थित हुए दीख पड़ते हैं ; तब ही समझना चाहिये, कि सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मसे साक्षात्कार हुआ है, तत्वज्ञ पुरुष ही वैसी परम गतिको प्राप्त कर सकते हैं ; अल्पज्ञ, तपस्या और ज्ञान हीन पुरुष कदापि परमगति प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि ज्ञानको ही सबका मूल जानना चाहिये।

१७ अध्याय समाप्त।

धर्म्मराज युधिष्ठिर ऐसा ही वचन कहके चुप हुए। अर्जुन उनके वचन रूपी शलाकासे पीड़ित और शोक दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर फिर बोले। महाराज विदेहराज जनकका अपनी भार्य्याके सङ्ग जो कुछ वादानुवाद हुआ था, आज तक लोग उस विषयका वर्णन किया करते हैं ; मैं उस सम्वादको अर्थात् राजा जनकने जब सन्न्यास ग्रहण करनेमें सङ्कल्प किया, तब उनकी राज पत्नीने उनसे जो कुछ वचन कहे थे, उसे वर्णन करता हूं, सुनिये

विदेहराज जनकने अनेक भांतिके रत्न, पुत्र, कलत्र स्वर्गपथस्वरूप यज्ञकर्म्मोंके अनुष्ठानको त्यागके, सर्व्वत्र निर्भय, निर्म्मत्सर, निरीह और निराकाङ्क्षी होके एक मुट्ठी भृष्टयवसे ही जीविका निर्व्वाहके निमित्त शिर मुड़ाकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते देखकर उनकी मनस्विनी प्यारी स्त्री क्रुद्ध होकर निर्ज्जन स्थानमें उनके समीप गमन करके इस प्रकार हेतुयुक्त वचन कहने लगी। हे महाराज! आप धन-धान्यसे युक्त निज राज्य परित्याग करके किस कारणसे कापालिक वृत्ति अवलम्बन करते हैं? भृष्ट-यवकी मुट्ठीसे जीविका निर्व्वाह करना आपके वास्ते कदापि यह उत्तम नहीं है। आपने इस वृहत् राज्यको परित्याग करके मुट्ठी भर भृष्ट यवचूर्णकी आशा करके "सब त्याग किया है"—यह आपकी प्रतिज्ञा और चेष्टा विपरीत हो रही है। और देखिये एक मुट्ठी मात्र भृष्ट यवसे आप कदापि देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्त करनेमें समर्थ न होसकेंगे; इससे आपका सम्पूर्ण परिश्रम निष्फल होगा। आप देवता पितर, अतिथि और सबसे परित्यक्त तथा क्रियारहित होकर इस सन्न्यास धर्म्मको ग्रहण करते हैं! यह कैसा आश्चर्य है! ओहो! पहिले आप तीनों वेदोंके जानने वाले सहस्रों ब्राह्मणों और सब लोगोंके पालन करनेवाले होकर इस समय उन ही लोगोंके आसरेसे अपना उदर भरनेकी इच्छा करते हैं! आप प्रदीप्त राजश्री परित्याग करके इस समय कुत्तेकी भांति पराये अन्नकी आशा करके इधर उधर देख रहे हैं। कैसा आश्चर्य है! आपके इस प्रकार नष्ट होनेसे आपकी माता पुत्रहीन और आपकी भार्य्या कोसल राजपुत्री आज विधवाकी भांति बांध की रही हैं; और ये दरिद्र क्षत्रिय लोग कर्म्म तथा फलार्थी होकर आपकी उपासना कर रहे हैं; जब कि मोक्षपद अत्यन्त ही संशयसे युक्त है, और देहधारी पुरुष सब भांतिसे कर्म्म करनेमें परतन्त्र हैं; तब आप इन अनुयायी पुरुषोंकी आशा निष्फल करके कौनसे लोकमें गमन करनेमें समर्थ हो सकोगे? जब आप धर्म्मपत्नीको परित्याग करके जीवन धारणकी इच्छा करते हैं, तब आप भी अत्यन्त ही पापी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपको न इस लोक न परलोकमें कहीं भी मङ्गल न हो सकेगा। महाराज! आप किस कारणसे दिव्यसुगन्धयुक्त वस्तु, माला, अनेक भांतिके वस्त्र और अलङ्कारोंको त्यागके क्रियारहित होकर परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं? सम्पूर्ण प्राणियोंकी जल तथा वृक्षकी भांति आश्रय-स्वरूप होकर इस समय आप दूसरेकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए हैं; क्या ही आश्चर्य है। महाराज! आपकी बात दूर रहे, पुरुषार्थरहित होके निश्चष्ट-भावसे स्थित होनेसे हाथीको भी कीड़े और मांसभक्षी जन्तु भक्षण करनेमें समर्थ होसकते हैं। जिस आश्रममें प्रविष्ट होनेसे सम्पूर्ण वस्तुओंको परित्याग करके त्रिदण्ड, कमण्डलु और कौपीन ग्रहण करना पड़ता है, जिसमें प्रविष्ट होनेसे सब त्यागके केवल भृष्ट-यवकी एक मुट्ठीमें ही आसक्त होना पड़ता है, उसमें आपकी किस कारणसे प्रवृत्ति हुई है? यदि कहिये कि एक मुट्ठी अन्न और राज्य आदिमें मेरी सम दृष्टि है, तब आप किस कारणसे राज्य आदि त्याग करके केवल एक मुट्ठी भृष्टयवमें आसक्त हो रहे हैं? और यदि आपको ऐसा ही प्रयोजन है, तो "सर्व्वत्यागी हुआ हूं"—कहके आपने जो प्रतिज्ञा की है, वह व्यर्थ हो रही है। यदि आप केवल एक मात्र चिदानन्दमें अपने मनको स्थिर समझते हैं; तो ऐसा होनेसे "मैं तुम्हारा कौन हूं? और तुम्ही मेरे कौन हो," अर्थात् इस चिदाभासके परस्परका सम्बन्ध किस प्रकार रह सकता है? इससे कोई वस्तु तथा व्यक्ति विशेषमें आसक्त वा

विरक्त होना आपको किसी प्रकार भी उचित नहीं है। यदि अनुग्रह करना ही आपका कर्त्तव्य कर्म्म होवे, तो आप कृपाकरके इस पृथ्वी-कोही शासन कीजिये। जो लोग सुखार्थी पर निर्द्धन, तथा अत्यन्त दरिद्र हैं और समस्त बन्धु बान्धवोंसे परित्यक्त होकर दण्ड कमण्डलु आदि चिन्होंको धारण करके संन्यास ग्रहण करते हैं; उनके चिन्हको देखकर जो पुरुष उस भांति व्यवहार करनेमें प्रवृत्त होते हैं, अर्थात् मन्दिर, उत्तम शय्या, सवारी, उत्तम वस्त्र और अलङ्कार आदि त्यागके दण्ड कमण्डलु ग्रहण करते हैं उनका वह त्याग केवल विड़म्बना मात्र है। हे महाराज ! जो पुरुष सदा दान ग्रहण करता और जो पुरुष सदा दान देता है, उन दोनोंके बीच कौन श्रेष्ठ है ? उन दोनोंका आपसमें कितनी दूरका अन्तर है ; उसे विचार करके देखिये तो सही, ऐसा होनेसे अवश्य जान सकेंगे। परन्तु दम्भी और सदा मांगनेवालेको धन दान करनेसे जलती हुई अग्निमें आहुति डालनेकी भांति वह दान निष्फल होता है। जैसे अग्नि बिना किसी वस्तुको जलाये शान्त नहीं होती, वैसे ही भीख मांगनेवाले ब्राह्मण बिना कुछ प्राप्त हुए निवृत्त नहीं होते। दाताका अन्न ही साधु सन्यासियोंका जीवन-स्वरूप है, क्योंकि उन लोगोंको स्वयं बनाके भोजन करनेकी विधि नहीं है। इससे यदि राजा दाता न होवे, तो कैसे मोक्षार्थी पुरुषोंका जीवन धारण हो सकेगा ? इस पृथ्वीपर जिसके घरमें अन्न है, वेही गृहस्थ कहे जाते हैं, भिक्षुक लोग उन्हीं सम्पूर्ण गृहस्थोंके आसरे शरीरयात्रा निर्व्वाह करते हैं ; समस्त प्राणी अन्नसे ही जीवन धारण करनेमें समर्थ होते हैं इससे अन्नदाता प्राणदाता स्वरूप है। गृहस्था-श्रमसे निकलकर जितेन्द्रिय सन्यासी लोग गृहस्थ पुरुषोंके अवलम्बसे ही शरीरयात्रा निर्व्वाह करते हुए प्रतिष्ठा और योग प्रभावको प्राप्त कर सकते हैं। महाराज ! समस्त वस्तु-ओंके परित्याग करने, सिर मुड़ाने और भीख मांगनेसे कोई संन्यासी नहीं हो सकता ; जो लोग सरलभावसे सम्पूर्ण विषय युक्त सुखोंको परित्याग करनेमें समर्थ होसकते हैं, उन्हेंही सन्न्यासी कहना चाहिये। जो भीतरसे समस्त वस्तुओंमें आसक्तिरहित होकर बाहरसे आस-क्तिकी भांति व्यवहार करते तथा मित्र शत्रुको समान जानते हैं, वे सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो सकते हैं, और वैसे सङ्गरहित पुरुषको ही मुक्त कहा जा सकता है। मूर्ख लोग बहुतसे आशापाशमें बंधकर शिष्य और मठ आदि विषय प्राप्त होनेकी अभिलाषासे कषाय वस्त्र धारण और सिर मुड़ाके संन्यासधर्म्म ग्रहण करते हैं, परन्तु जो लोग त्रिविद्या, वार्त्ताशास्त्र और पुत्रकलत्रको त्यागके त्रिदण्ड भस्म तथा कषाय आदि वस्त्रोंको धारण करते हैं ; वे अत्यन्त ही मूर्ख हैं। महाराज ! संन्यासधर्म्म पवित्र होनेपर भी उसे ग्रहण करके सिर मुड़ाना गेरुये वस्त्रोंको धारण करना केवल जीविका निर्व्वाहके ही वास्ते जानना चाहिये, मेरे विचारमें जीविका निर्व्वाह मात्र ही उन लोगोंका पुरुषार्थ है, इससे आप इन्द्रियोंको अपने वशमें करके गेरुए वस्त्र, मृगछाला और कौपीन धारण करनेवाले, तथा नङ्गे, सिर मुड़े और जटाधारी आदि साधु संन्यासियोंका प्रति-पालन करते हुए इस लोक और परलोकको जय करनेमें प्रवृत्त होइये। जो मोक्ष प्राप्त होनेके वास्ते आत्मज्ञान, पशु और दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान तथा प्रतिदिन दान करते हैं, उनसे बढ़कर अधिक धर्म्मात्मा कौन है ? विदे-हराजकी भार्या इतनी कथा कहके चुप होगई।

अर्जुन बोले, हे धर्म्मराज ! देखिये, विदेह-राज जनक इस पृथ्वीपर तत्वज्ञ कहके विख्यात हुए थे, परन्तु वह भी कर्त्तव्य कर्म्मसे निर्बन्धमें मोहको प्राप्त हुए थे ; इससे आप मोह परि-

महर्षि शङ्ख अपने आश्रमसे किसी दूसरे स्थान-पर गये थे; अनन्तर ऋषि लिखित शङ्खके आश्रममें पहुंचके पके हुए फलोंको तोड़ने लगे और उन फलोंको ग्रहण करके प्रसन्न-चित्तसे भोजन करनेमें प्रवृत्त हुए। इतने ही समयमें शङ्ख ऋषि अपने आश्रममें आके उप-स्थित हुए और लिखित ऋषिको फल खाते देखकर उनसे पूछा कि, तुम किस कारणसे फल खा रहे हो! इन फलोंको तुमने कहां पाया? तब छोटे भाई लिखित अपने बड़े भाई शङ्खके समीप जाकर उन्हें प्रणाम करके हंसते हुए यह वचन बोले कि, हे महात्मन्! मैंने आपके इस आश्रमसे ही फल ग्रहण किया है। उनसे ऐसे वचनको सुनके महर्षि शङ्ख अत्यन्त कुपित होके बोले, हे भाई। मेरे न रहनेपर तथा बिना मेरी आज्ञाके इन फलोंको ग्रहण करनेसे तुम्हें चोरीका पाप लगा है; इससे दण्डित होनेके वास्ते अब तुम राजाके समीप गमन करो; और वहां जाकर अदत्त ग्रहण रूपी अपने पाप कर्म्मको सुना कर कहना कि, हे महा-राज! आप मुझे चोर करके निश्चित कीजिये और राजधर्म्मको पालन करते हुए शीघ्र ही मुझे चोरोंके अनुसार दण्ड दीजिये। अनन्तर व्रत करनेवाले महात्मा लिखितने अपने जेठे भाईकी ऐसी आज्ञा सुनकर राजासुद्युम्नके समीप गमन किया। राजा सुद्युम्न द्वारपालके मुखसे धर्म्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रणी लिखित ऋषिके आगम-नका वृतान्त सुनकर अपने अनुयायी पुरुषोंके सहित पैदल ही द्वारपर आके बोले, हे भग-वन्! किस अभिप्रायसे यहां आपका आगमन हुआ है? आपकी क्या आज्ञा है? राजा सुद्यु-म्नके वचनको सुनके महर्षि लिखित बोले, महाराज! पहिले "जो कार्य्यकी आज्ञा होगी, उसे मैं करूंगा" आप ऐसी प्रतिज्ञा कीजिये, तब पीछे मेरे मुखसे सुनकर उसे पालन करिये, मैंने अपने भाईकी अनुमतिके बिना उनके आश्रममें जाके फल ग्रहण करके भक्षण किया है, शीघ्र ही मेरे ऊपर दण्ड प्रयोग कीजिये। महाराज सुद्युम्न बोले, हे भगवन्! "राजाके दण्डप्रयोग करनेसे ही पापकी शान्ति होती है" यदि आपको ऐसा स्थिर ज्ञान होवे, तो राजाके क्षमा करने पर भी उस पापकी शान्ति होती है,—ऐसा ही समझिये। आप महा-व्रत करनेवाले ब्राह्मण हैं; मैंने आपके अपरा-धको क्षमा किया, उससे आप पापरहित हुए। इस समय आपकी दूसरी और कौनसी अभि-लाषा है, उसे वर्णन कीजिये। मैं आपकी समस्त कामना पूर्ण करूंगा।

वेदव्यास मुनि बोले, हे धर्म्मराज! महात्मा पृथ्वीनाथ सुद्युम्नने इस भांति अपराध क्षमा करके लिखित ऋषिको सम्मानित किया; तो भी महर्षि लिखित उनके निकट दण्डके अति-रिक्त और किसी विषयकी भी अभिलाषा नहीं की, तब राजा सुद्युम्नने दण्ड धारण करके महात्मा लिखितके दोनों हाथ काट दिये। अनन्तर लिखित ऋषि भुजा कटनेसे बिकल होके अपने जेठे भाई महर्षि शङ्खके समीप गमन करके यह वचन बोले। हे महात्मन्! मैंने राजाके निकट जाके उचित दण्ड पाया है, अब आप मेरे अपराधको क्षमा कीजिये, छोटे भाईके वचनको सुनकर महर्षि शङ्ख बोले, हे भ्राता! तुमने मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं किया था, और मैं भी तुम्हारे ऊपर कुपित नहीं हुआ था; तुम धर्म्मसे भ्रष्ट हुए थे, इस ही कारण मैंने तुम्हें उस पापसे मुक्त किया है। इस समय शीघ्र ही बाहुदा नदीमें जाके देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करो, अब कदापि ऐसी बुद्धि न करना। अनन्तर महर्षि लिखितने अपने बड़े भाई शङ्खके वचनको सुनके बाहुदा नदीमें जाकर स्नानकरके ज्यांही तर्पण करनेकी इच्छा किया, त्योंही सहसा अङ्गुलियोंसे युक्त उनके दोनों हाथ प्रकट होगये, उससे लिखित अत्यन्त

विस्मित होकर अपने बड़े भाई शङ्खके समीप,आके नवीन उत्पन्न हुए अपने दोनों हाथोंको दिखाया। महर्षि शङ्ख उनके दोनों हाथोंको देखकर बोले, हे भ्राता ! मेरे तपके प्रभावसे तुम्हारे दोनों हाथ फिर उत्पन्न हुए हैं ; यह कुछ भी आश्चर्य्यका विषय नहीं है, क्योंकि दैव ही इस विषयके विधिको करनेवाला है। अनन्तर लिखित ऋषि बोले, हे तेजस्विन् ! जब कि आपका ऐसा तप प्रभाव है, तब आपने पहिले ही क्यों नहीं मुझे इस पापसे मुक्त किया ? ऐसा होनेसे राजाके समीप मुझे न जाना पड़ता। शङ्ख बोले, हे भ्राता ! उस विषयमें यदि मुझे अधिकार होता, तो मैं अवश्य ही तुम्हें यहां ही उस पापसे मुक्त कर देता ; परन्तु मैं तो तुम्हारा राजा नहीं हूं, जो दण्ड प्रयोग करके तुम्हें चोरीके पापसे मुक्त कर देता ; इस कारणसे मैंने तुम्हें राजाके समीप भेजा था। तुम्हारे ऊपर बिधिपूर्व्वक दण्ड प्रयोग करके राजा सुद्युम्न और तुम, अर्थात् तुम दोनों ही पितरोंके सहित मुक्त हुए।

वेदव्यास मुनि बोले, हे पाण्डवश्रेष्ठ ! मैंने जो कुछ तुम्हारे समीप वर्णन किया ; उस भांति कर्म्मके प्रभावसे राजा सुद्युम्नने दक्ष प्रजापतिकी भांति इस लोकमें प्रतिष्ठा और परलोकमें परम सिद्धि प्राप्त की थी। प्रजाको पालन करना ही क्षत्रियोंका धर्म्म है, इसके अतिरिक्त तुम दूसरेको कुपथ समझो। तुम धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य हो, इससे अपने भाई अर्ज्जुनके वचनकी रक्षा करो। अब शोक मत करो, प्रजाको पालन करनेके निमित्त राजदण्ड धारण करना ही क्षत्रिय धर्म्म है; शिर मुड़ाना राज धर्म्म नहीं है।

२३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महर्षि वेदव्यास अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको उपदेश करनेमें फिर प्रवृत्त होकर यह वचन बोले, हे पुत्र ! हे युधिष्ठिर ! वनमें वास करनेके समयमें तुम्हारे भाइयोंकी जो कुछ अभिलाषा थी उसे सफल करना इस समय कर्त्तव्य है ; इससे तुम नहुष-पुत्र राजा ययातिकी भांति पृथ्वीको पालन करनेमें प्रवृत्त होजाओ। पहिले तुम लोगोंने तपस्यामें रत होके जङ्गलमें वास करते हुए केवल महादुःख भोग किये थे, इस समय वह महादुःख बीत गया ; इससे कुछ दिनतक सुख अनुभव करो। हे भारत ! तुम अपने भाइयोंके सङ्ग मिलकर कुछ दिनोंतक धर्म्म, अर्थ और कामका सेवन करो ; अनन्तर फिर वनको प्रस्थान करना। आगे देवता, पितर और प्रार्थी लोगोंके ऋणको चुकाओ ; पीछे वाणप्रस्थ आदिक धर्म्मोंमें क्रमसे प्रवृत्त होना। हे महाराज ! तुम अश्वमेध और सर्व्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करो, ऐसा होनेसे पीछे परम गतिको प्राप्त होगे, और तुम अपने भाइयोंको अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञोंमें दीक्षित करो, ऐसा होनेसे इस लोकमें भी अतीव कीर्त्ति प्राप्त कर सकोगे। हे राजन् ! जिस कार्य्यको करनेसे तुम किसी प्रकार फिर धर्म्मसे भ्रष्ट न होसकोगे ; उस विषयमें मैं विशेष उपदेश वचन कहता हूं, चित्त थिर करके सुनो। जो परधन हरनेवाले डाकू समान मनुष्य हैं, वेही राजाओंको युद्ध आदि कार्य्योंमें नियुक्त होनेकी व्यवस्था देते हैं।

जो राजा शास्त्रजनित बुद्धि अवलम्बन करके देशकालकी प्रतीक्षा करके डाकुओंके विषयमें भी क्षमा करते हैं, उन्हें कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता ; और जो राजा राज्यका छठवां भाग ग्रहण करके भी यथा रीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं करते, वे प्रजाके पापका चौथा भाग ग्रहण करते हैं हे युधिष्ठिर ! राजा लोग शास्त्रकी आज्ञाको उल्लङ्घन करनेसेही धर्म्म भ्रष्ट होते हैं ; और शास्त्रके अनुकूल कार्य्य कर-

वेही निर्भय होकर समय व्यतीत कर सकते हैं। जो शास्त्रमें कही हुई रीतिको अवलम्बन कर काम, क्रोध त्यागके निरपेक्ष होकर पिताकी भांति प्रजा पालनमें तत्पर होते हैं, वे कदापि पापयुक्त कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होते। यदि राजा उपस्थित कार्य्यमें दैवी-संयोगसे किसी कर्म्मके करनेमें असमर्थ होजावे, तो ऐसा होनेसे उसे कार्य्य अतिक्रमकारी नहीं कहा जा सकता। बल बुद्धि वा कौशलसे शत्रुको पराजित करना उचित है; राज्यके बीच जिससे पाप कर्म्म न बढ़ने पावे और सदा पुण्य-कर्म्मोंका सोता बहता रहे; उस विषयमें यत्नशील होना उचित है। वीर पुरुष, पुण्यकर्म्म करनेवाले साधु, विद्वान, वैदिक कर्म्मोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और धनी वैश्योंकी विशेष यत्नके सहित पालन करना उचित है। व्यवहार और धर्म्म कार्य्योंमें बहुदर्शी पुरुषोंको नियुक्त करना उचित है, परन्तु अनेक गुणोंसे युक्त होनेपर भी एकही पुरुषका सम्पूर्णरूपसे विश्वास करके कार्य्य करना उचित नहीं। जो राजा आशाके वशमें गर्व्वित, अभिमानी और विजयरहित होकर प्रजाका पालन नहीं करते, वे महाघोर पापमें फंसके लोकसमाजमें अधर्म्मी कहके विख्यात होते हैं। जहां प्रजा यथा रीतिसे रक्षित नहीं होती, दैवकी प्रति कूलता अर्थात् राज्यमें अना-वृष्टि आदि अनेक उपद्रवोंसे दुःखित तथा चोर डाकुओंसे पीड़ित होती है; उस स्थलमें सम्पूर्ण अनिष्टजनित पाप राजाको ही स्पर्श करता है। हे युधिष्ठिर! उत्तम मन्त्रणा और श्रेष्ठनीति अवलम्बन करके भली भांति विचार-कर पुरुषार्थके सहित कार्य्य करनेसे कदापि अधर्म्मका सञ्चार नहीं होता। अनुष्ठित कर्म्म सिद्ध भी हो सकते हैं और दैवकी प्रति कूलतासे वे सब निष्फल भी हो सकते हैं; परन्तु यत्नमें त्रुटि न होनेसे राजाका पाप ग्रस्त नहीं होना पड़ता। महाराज! जैसे अतिही कठिन कर्म्मोंके करनेवाले राजर्षि हयग्रीवने संग्रामभूमिमें अन-गिनत शत्रुओंका वध करके अन्तमें सहाय-रहित, होकर प्राण त्याग किया था, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो! राजा हयग्रीव बहुतसे सत्कार्य्योंको करके अन्तमें युद्ध-भूमिमें प्राण त्याग कर उत्तम कीर्त्ति प्राप्तकर स्वर्गलोकमें सदा सुखभोग कर रहे हैं; अधिक क्या कहें, जिसके किये हुए सम्पूर्ण कर्म्मोंको जाननेसे ही प्रजा पालन और शत्रुओंके परा-जित करनेके उत्तम उपाय मालूम हो सकते हैं? पुण्यकर्म्मोंके प्रभावसे सिद्ध मनोरथ महात्मा हयग्रीव काल क्रमसे डाकुओंके वश आनेसे शस्त्र ग्रहणकर महाघोर युद्ध करके उनके शस्त्रोंका चोटसे क्षत विक्षत होकर शरीर त्यागके स्वर्गवासके सुखको भोग रहे हैं; राजसिंह तपस्वी हयग्रीव उस संग्रामरूपी यज्ञकी अग्निमें अनगिनती शत्रुओंकी आहुति देके पापरहित होकर अन्तमें अपना प्राण होमकर यज्ञ समाप्त करके देवलोकमें सुख भोग रहे हैं; उस यज्ञमें धनुषही यूप, रोदा यूपवेष्टन, बाण-स्रुक; तलवार स्रुवा, देहसे झरता हुआ रुधिर ही घृत स्वरूप, रथही वेदी युद्धमूलक क्रोध ही अग्नि और रथके चारों घोड़ेही चातु-र्होत्रस्वरूप थे। उस महात्मा यज्ञ करनेवाले राजाने उत्तम नीति और बुद्धिकौशलसे राज्यको पालनकर सम्पूर्ण लोकोंमें कीर्त्ति स्थापित करके अन्तमें प्राणत्याग किया था। उन्होंने विष-यासक्तिको त्याग और योगप्रभावसे दैवी और मानुषी सिद्धि प्राप्त करके दण्डनीति अवल-म्बन करके पृथ्वी पालन किया था; और यथा-रीतिसे सब वेद शास्त्रोंको पढ़के चारों वर्णकी प्रजाको यथा योग्य धर्म्मके कार्य्योंमें स्थापित किया था; वह श्रद्धा और कृतज्ञताके सहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करके ध्यानके प्रभावसे मेधावी तत्त्वज्ञ पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकमें गमन करके सुख भोग रहे हैं। राज्य

करनेके समयमें उन्होंने अनेक बार संग्राममें जय प्राप्त किया था, यज्ञमें सोमरस पान, उत्तम ब्राह्मणोंको तृप्ति और युक्तियुक्त दण्ड धारण करके प्रजाको पालन किया था। विद्वान् पुरुष आजतक जिनके प्रशंसनीय चरित्रोंकी अत्यन्त प्रशंसा किया करते हैं, वह महात्मा राजा निज कीर्त्ति तथा पुण्यके प्रभावसे सिद्धि प्राप्त और स्वर्गलोकमें गमन करके वहां पर वीरपुरुषोंके प्राप्त होने योग्य सुख भोग कर रहे हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिर अर्ज्जुनको कुपित देखके तथा व्यासदेव मुनिके वचनको सुनकर महर्षि द्वैपायन मुनिसे बोले, हे महर्षि! मेरा चित्त इस समय शोकसे अत्यन्त ही दुःखित हो रहा है, इससे इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य और अनेक भांतिके भोग्य वस्तुओंको प्राप्त करनेसे भी मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है। और पति और पुत्रोंसे रहित स्त्रियोंके विलापको सुनकर मेरे चित्तमें किसी प्रकारसे भी शान्ति प्राप्त नहीं होती है।

राजा युधिष्ठिरके ऐसे वचनको सुनकर योगियोंमें अग्रगण्य धर्म्म ज्ञानसे युक्त सम्पूर्ण वेदोंके जानने वाले महा बुद्धिमान वेदव्यास मुनि उनसे बोले, महाराज! कोई पुरुष कर्म्म वा यज्ञ कार्य्योंसे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सक्ता और न कोई पुरुष किसीको दान कर सक्ता है; विधाता ही समयके अनुसार सब पुरुषोंके प्राप्तिका विधान करता है, और उस विधाताके नियत किये हुए समय पर ही मनुष्य समस्त वस्तुओंको पा सकते हैं। समय उपस्थित न होनेसे विद्या वा बुद्धिके प्रभावसे कोई धन लाभ करनेमें समर्थ नहीं होसकता और समयके अनुसार मूर्ख पुरुष भी धन प्राप्त कर सकता है, इससे सम्पूर्ण कार्य्योंके सिद्धिमें कालको ही निरपेक्ष समझिये, अर्थात् काल समयानुसार मूर्ख और पण्डितको समान रूपसे फल प्रदान करता है। जब पुरुषोंके दुःखका समय रहता है, तबतक विज्ञान, मन्त्र औषधि आदि कोई वस्तु भी फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होती; और जब अभ्युदयका समय आता है, तब वे ही सब मन्त्र, औषधि आदि गुणकारी होके सिद्धिप्रद होती हैं। कालके प्रभावसे वायु प्रचण्ड वेगसे बहता है, बादल जलकी वर्षा करते, तालाब कमलों तथा नील-पद्म आदि पुष्पोंसे परिपूर्ण होते और वृक्षादिक फल फूलोंसे युक्त होते हैं इसी भांति कालके प्रभावसे कभी चन्द्र बिम्ब सोलह कलासे पूर्ण होता, कभी रात्रि महाघोर अन्धकारसे युक्त और कभी निर्म्मल ज्योतिसे विभूषित होती है, महाराज! बिना समय पहुंचे वृक्षादिक फूलने फलनेमें असमर्थ होते हैं, नदियां प्रबल वेगसे बहनेमें समर्थ नहीं होतीं। हाथी घोड़े आदि पशु सर्प तथा पक्षी बिना समय पहुंचे संयोगकी अभिलाषा नहीं करते। इसी भांति स्त्रियोंके गर्भ, शरद-वसन्त आदि ऋतुओंका समागम, जीवोंके जन्म और मृत्यु, बालकोंके मुंहसे पहिले पहल वचन निकलना, युवा अवस्थाका आगमन, बोए हुए बीजके अंकुर, मरीचि मालीके सूर्य्यका उदय और अस्त होना, शीत किरण-धारी चन्द्रमाकी कला और तरङ्गमालासे युक्त समुद्रके तरङ्गोंकी घटती बढ़ती बिना समय पहुंचे कदापि नहीं होसकती। महाराज! राजा सेनाजित् दुःखित होकर जो वचन कहा था, आजतक सब कोई उस गाथा को वर्णन किया करते हैं; मैं उस ही पुराने इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो! यह दुःखद काल समयानुसार समस्त जीवोंको ग्रहण करता है, पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु कालके प्रभावसे अपने समय पर नष्ट होजाती हैं। एक पुरुष किसी पुरुषका वध करता है, और काल उसको

वह भी दूसरेके हाथसे मारा जाता है, यथार्थमें कोई किसीको नहीं मारता और न कोई किसीके मारनेसे मरता है,.तब कोई कोई ऐसा समझते हैं, कि "अमुक पुरुषने अमुक का बध किया," और कितनेही बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझते हैं, कि इस जगत्में कोई किसीका बध करनेवाला नहीं है ; क्यों कि स्वभाव ही प्राणियोंके जन्म और मृत्युके विषयमें कारण है। मूर्ख लोग धन क्षय होने तथा पिता माता वा पुत्र स्त्री आदिकी मृत्यु होनेपर "अहो! कैसा दुःख है? हाय क्या हुआ?" ऐसा ही समझके बीते हुए दुःखोंको केवल पुष्ट करते रहते हैं ; इससे तुम क्यों मरण-धर्मशील कौरव और पाञ्चाल आदिक युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके निमित्त शोक कर रहे हो? विचार कर देखो, कि भय और शोककी जितनी बार आलोचना की जावे उतने ही बार उसकी अधिक बढ़ती होगी "इस शरीर वा पृथ्वीमें जो कुछ वस्तु है, उसमें कुछ भी मेरा नहीं है ; अथवा इसमें जैसा मुझे अधिकार है, वैसा ही दूसरेको भी है"—पण्डित लोग ज्ञानसे इसी भांति विचार करके किसी वस्तुमें मोहित नहीं होते। इस पृथ्वीपर मूढ़ पुरुष ही सैकड़ों शोक और सहस्रों भांतिके हर्ष आदि विषयोंमें मोहित होते हैं ; परन्तु पण्डितोंको ये हर्ष शोकादि कदापि मोहित नहीं कर सकते ये सब हर्ष आदिके विषय समयके अनुसार कभी प्रिय कभी अप्रियरूपसे मालूम होते हैं, इसी भांति वेही कभी सुख कभी दुःख रूपको धारण करके सम्पूर्ण जीवलोकोंमें भ्रमण किया करते हैं। मूढ़ पुरुषोंको आशा भङ्ग होनेसे ही दुःख और अभिलषित वस्तु मिलनेसे सुख प्राप्त होता है ; परन्तु यथार्थमें यह संसार केवल दुःखको ही खान है, इसमें सुख कुछ भी नहीं है ; इस कारण प्रायः दुःखको ही अधिकता दीख पड़ती है। संसारमें आसक्त रहने वाले जीवोंको सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके अनन्तर सुख प्राप्त होता है, वे कदापि सदाके वास्ते सुख वा दुःख भोगी नहीं होवे। इसी भांति कभी सुख कभी दुःख अवश्य ही प्राप्त होता रहता है ; इससे जो पुरुष नित्य-सुखकी इच्छा करते हैं। उन्हें इस अनित्य सुख तथा दुःख दोनोंको ही त्यागना उचित है। जिसके कारणसे दुःख जनित शोक और सन्ताप आदि अनेक-क्लेश उपस्थित होते हैं ; उसके एक अङ्गको भी अन्तःकरणमें रहने देना योग्य नहीं है। महाराज! सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय, जिस समयमें जो उपस्थित होवे, धीरज युक्त चित्तसे उसे भोगना ही उचित है। हे सौम्य! स्त्री पुत्र आदि स्वजनोंके प्रियकार्य्य साधनमें तनिक त्रुटि करनेसे मालूम होसकता है, कि इस संसारके बीच कौन किस कारणसे किस भांति किसीका आत्मीय बान्धव हुआ है? इस पृथ्वीपर जो लोग अत्यन्त ही मूढ़ हैं, और जिन्होंने परमात्म ज्ञान प्राप्त किया है, वे दोनों सम्प्रदायके पुरुष ही सुखपूर्व्वक समयको व्यतीत करते हैं ; मध्यवर्त्ती अर्थात् अर्द्धज्ञानी पुरुष ही नाना भांतिके क्लेशोंसे क्लेशित होते हैं। हे राजन्! धर्म्मसुख और दुःखके कारणोंको जाननेवाले पर और अपर विषयोंके ज्ञाता महाबुद्धिमान राजा सेनजित्ने ऐसा ही वचन कहा था। जो पुरुष सदा पराये दुःखसे दुःखी होता है, वह कभी भी सुख प्राप्त करनेमे समर्थ नहीं हो सकता। दुःखका कभी भी नाश नहीं होता, पर्य्याय क्रमसे दुःख, सुख, सम्पत्ति, विपत्ति, हानि, लाभ, जन्म और मृत्यु सम्पूर्ण जीवोंको ही प्राप्त होती हैं ; इससे पण्डित लोग उसमें शोकित वा आनन्दित नहीं होते। पण्डित लोग राजाओंके निमित्त युद्ध ही यज्ञ, दण्डनीतिकी आज्ञा चलानी ही योग, यज्ञ आदि कर्म्मोंमें धन दानकी ही सन्न्यास करके वर्णन करते हैं ; अर्थात् समझना चाहिये, कि इन्हीं सम्पूर्ण

कार्य्योंसे उनकी पवित्रता होती है। जो यज्ञ करनेवाले, महात्मा राजा बुद्धिके अनुसार राज्यकी रक्षा, समस्त प्राणियोंके ऊपर समदृष्टि, युद्धमें जयलाभ, यज्ञमें सोमरस पान, युक्तिके सहित दण्ड प्रयोग, यथा रीतिसे वेद और शास्त्रोंको पढ़ना, चारों वर्णको प्रजाको यथा रीतिसे स्वधर्म्ममें स्थापित करना इत्यादि कर्म्मोंको करके प्रजाके सुख समृद्धिको उन्नति करते हुए अन्त समयमें युद्धभूमिके बीच शरीर त्याग करते हैं, वे अवश्य ही देवताओंके सङ्ग मिलके स्वर्ग लोकमें परम सुख भोग करते हैं, इसमें कुछ भो सन्देह नहीं है। जिस राजाके परलोक गमन करनेके अनन्तर पुर तथा जनपदवासी समस्त प्रजा, और राज्यके सेवक लोग उसके चरित्रोंकी प्रशंसा किया करते हैं; उसे राजसत्तम समझना चाहिये।

२५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! उस समय उदारबुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर अर्ज्जुनसे यह युक्ति-पूरित वचन बोले,— हे अर्ज्जुन! तुम जो ऐसा समझते हो, कि धनसे बढ़के कुछ भो श्रेष्ठ नहीं है, और निर्द्धन पुरुषोंको स्वर्ग, सुख तथा अर्थ लाभ नहीं होसकता,—यह तुम्हारी भ्रान्ति मात्र है। इस पृथ्वीपर अनेक मुनि तपस्याके प्रभावसे ही सनातन स्वर्गलोकमें गये हैं, और बहुतेरे पुरुषोंको केवल स्वाध्यायरूप यज्ञसे ही सिद्धि प्राप्त होती देखी गई है। जो लोग ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थित, और सदा स्वाध्यायमें रत होके सब धर्म्मोंके जाननेवाले होते हैं; देवता लोग उन्हें ही ब्राह्मण समझते हैं। हे अर्ज्जुन! तुम स्वाध्याय-निष्ठ तथा ज्ञाननिष्ठ ऋषियोंको यथार्थ धर्म्मात्मा समझो और ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके उपदेशके अनुसार ही समस्त कार्य्योंको करना उचित है। वैखानस ऋषियोंका विषय भी इस प्रकारसे सुना गया है, कि अज, पृश्नि, सिकत, अरुण और केतु आदि वानप्रस्थ आश्रमी ऋषियोंने केवल स्वाध्यायके प्रभावसे ही स्वर्गलोकमें गमन किया है; जो लोग वेदमें कहीहुई रीतिसे अनुसार यज्ञ, दान, अध्ययन और कठिन इन्द्रिय-निग्रह आदि कार्य्योंके अनुष्ठानमें रत रहते हैं, वे सूर्य्यके दक्षिण मार्गके सहारे स्वर्गलोकमें गमन करते हैं; कर्म्मपरायण पुरुषोंकी ऐसी ही गति वर्णित है, इसे मैंने पहिले ही तुमसे कहा है; और जिसे उत्तर पथ समझते हो; उसे अवलम्बन करके योगी लोग नियम आदि योगके प्रभावसे उस प्रकाशमय सनातन लोकमें गमन करते हैं; इस कारण पहिले समयके आचार्य्योंने उत्तर पथकी ही अधिक प्रशंसा किया करते हैं। सन्तोषसे ही पुरुषोंको स्वर्ग और परम सुख प्राप्त होते हैं, सन्तोषसे बढ़के दूसरी कुछ भी वस्तु श्रेष्ठ नहीं है; क्रोध हर्षसे रहित योगियोंके निमित्त सन्तोष ही परम प्रतिष्ठा और उत्तम सिद्धिस्वरूप है; इस विषयमें राजर्षि ययातिका कहा हुआ एक प्राचीन इतिहास है, श्रवण करो! उसके सुननेसे सम्पूर्ण वासना कूर्म्मशरीरकी भांति भीतर ही लीन हो जाती हैं। जब योगी पुरुष इस जगत्के बीच किसी जीवसे भयभीत नहीं होते और न उनसे ही कोई प्राणी भय करते हैं; तथा जब कि उन्हें किसी वस्तुमें भी इच्छा द्वेष नहीं उत्पन्न होता तभी जानना चाहिये, कि उन्हें ब्रह्मप्राप्ति होगी। और जब वचन, मन तथा कार्य्यसे प्राणी मात्रके अनिष्ट चिन्तामें प्रवृत्ति नहीं होती तबही वे निश्चय ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। जिनके हृदयसे अभिमान और मोह नष्ट होजाता है, उन आसक्तिरहित आत्म ज्ञानसे युक्त साधु पुरुषोंको निर्व्वाण मुक्ति प्राप्त होसकती है। हे धनञ्जय! मैं और एक कथा वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। इस जगत्के

बीच कोई धर्म्म कोई धन और कोई कोई सदाचारकी इच्छा करते हैं ; परन्तु धन जांचके धर्मोपार्ज्जनकी इच्छा करनेकी अपेक्षा उसका अनुष्ठान न करना ही उत्तम है ; क्यों कि अर्थसे ही अनेक भांतिके दोष उत्पन्न होते हैं ; इससे धनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञ आदिक कर्म्म भी उस कारणसे दोषयुक्त होजाते हैं ; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इस विषयको मैंने परीक्षा करके देखा है, तुम्हें भी परीक्षा करके देखना उचित है। जो धनकी अभिलाषा करनेवाले हैं ; उन्हें अवश्य त्याग करने योग्य विषयोंको त्याग करना भी अत्यन्त कठिन होजाता है। जो धनवान हैं, उनसे सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान होना अत्यन्त दुर्लभ है, क्यों कि दूसरेके अनिष्टके बिना धन कदापि नहीं मिल सकता और धन प्राप्त होनेसे चोर आदिकोंसे अनेक भांतिके भयकी सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त दुराचरी डाकू लोग स्नेह और भयको त्यागके थोड़ेसे धनके वास्ते भी मनुष्योंके ऊपर अनेक भांतिके अत्याचार करते हैं ; परन्तु उसमें जो उन लोगोंको ब्रह्महत्या आदि महाघोर पापमें लिप्त होना पड़ता है ; उसे नहीं जान सकते। अर्थसे आसक्त पुरुषोंको यह धन इतना प्यारा है, कि वे लोग दुर्लभ धनको पाकर अपने सेवकोंको उचित वेतन देकर भी ऐसे सन्तापित होते हैं जैसे डाकुओंसे धन लुटे जानेपर सब कोई शोकित होते हैं। और वेतन न देनेसे भी सेवक लोग वैसे लोभी अपने स्वामीकी निन्दा करते हैं। और देखिये, निर्द्धन मनुष्यको कोई भी कुछ नहीं कह *सकता, वह मुक्त पुरुष जो कुछ प्राप्त होवे, उसहीमें सन्तुष्ट होकर सब भांतिसे सुखी रहता है* परन्तु धनसे कोई भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता।

प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डितोंने यज्ञ विषयको भी जिस प्रकार विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया है, उसे कहता हूं ; सुनो। विधाताने यज्ञके निमित्त धन प्रकट किया, और धनकी रक्षा करनेके वास्ते पुरुषको उत्पन्न किया है ; इससे सम्पूर्ण धन यज्ञमें ही समर्पण करना उत्तम है ; भोग आदि अभिलाष पूर्ण करनेमें धन व्यय करना उचित नहीं है। हे अर्ज्जुन ! विधाता यज्ञ करनेके ही वास्ते मनुष्योंको धन प्रदान करते हैं, सुख विलासके वास्ते नहीं ; तुम भी धनशाली पुरुषोंमें अग्रणी हो, इससे तुम्हें इस विषयको जानना उचित है। इस कारण ज्ञानी पुरुषोंने यह निश्चय किया है, कि यह धन जगत्में किसी पुरुषका भी नहीं है ; इससे श्रद्धावान होकर यज्ञ और दान करना ही कर्त्तव्य कार्य्य है। पण्डितोंने उपार्ज्जित किये हुए धनको दान करनेहीके वास्ते उपदेश किया है; भोगकी अभिलाष तथा अपव्यय करनेके वास्ते उपदेश नहीं किया है। दान आदिक सत्कार्य्योंके वर्त्तमान रहते अर्थ-सञ्चयकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु जो अल्पबुद्धिवाले मनुष्य धर्म्मभ्रष्ट पुरुषोंको धन दान करते हैं, वे परलोकमें एक सौ बर्ष पर्य्यन्त सदा पुरीष भोजन करते रहते हैं। कुपात्रको देना पात्रको न देना ; ऐसी घटना केवल योग्य और अयोग्यका ज्ञान न रहनेसे ही होती है ; इससे दानधर्म्म भी अत्यन्त कठिन है। हे अर्ज्जुन ! धन प्राप्त होनेपर उसे कुपात्रको देना और सत्पात्रको न देना ; इन दोनोंमें समझ रक्खो, कि महा उलट फेर होजाता है।

२६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचो पुत्र, राजा द्रुपद, विराट धृष्टद्युम्न, धर्म्मात्मा वसुषेण (कर्ण) राजा धृष्टकेतु और अनेक देशीय राजाओंके युद्धभूमिमें मारे जानेसे मैं अत्यन्त ही दुःखित हुआ हूं। हाय ! मैंने

राज्यलोभसे सम्पूर्ण स्वजनोंका नाश करके इकबारगी अपने वंशका नाश किया है। जिसने गोदीमें लेकर हम लोगोंको लाड़प्यारसे पालन करके बड़ा किया था,—मैंने राज्यलोभसे उस भीष्म पितामहका भी बध किया है। प्रकाशमान वाणोंसे परिपूर्ण सिंहके समान ऊंचे शरीरवाले पुरुषसिंह भीष्म पितामह जिस समय शिखण्डीसे आक्रान्त होके अर्जुनके वज्र समान वाणोंके प्रहारसे विचलित होकर इधर उधर घूमने लगे, उस समय उनकी वैसी दशा देखकर मेरे अन्तःकरणमें जैसा दुःख उत्पन्न हुआ था; उसका वर्णन नहीं हो सकता। विपक्षीय रथियोंको पीड़ित करनेवाले भीष्म पितामह रथके बीच पीड़ित होकर घूर्णायमान पर्व्वतकी भांति जब रथसे पूर्व्व ओर पृथ्वीपर गिरे थे; उस समय मैं ज्ञानसे रहित हुआ था जिन्होंने धनुष बाण ग्रहण करके महायुद्धमें भृगु नन्दन परशुरामके सङ्ग कुरुक्षेत्रमें कई दिनतक युद्ध किया था; काशीपुरीमें कन्याओंके वास्ते जिन्होंने अकेले ही रथपर इकट्ठे हुए सम्पूर्ण क्षत्रियोंको युद्धके वास्ते आह्वान किया था; जिनके अस्त्र प्रतापरूपी अग्निमें राजचक्रवर्त्ती पराक्रमी उग्रायुध क्षण भरके बीच भस्म होगया; मैंने उस भीष्म पितामहको भी युद्धभूमिके बीच बध किया है, साक्षात् मृत्युरूपी जानके भी जिन्होंने शिखण्डीका बध नहीं किया, अर्जुनने वैसे महात्मा भीष्म पितामहका बध किया है। हाय! क्या ही दुःखका विषय है। हे मुनिसत्तम! जबसे मैंने उनको रुधिरपूरित शरीरसे पृथ्वीपर गिरते देखा, उस समयसे अत्यन्त शोकित होरहा हूं। जिन्होंने बालक अवस्थामें पालन पोषण करके हम लोगोंको बड़ा किया था; मैंने अस्थिर राज्य-लोभसे उनका बध किया है इससे मैं ही अत्यन्त ही मूढ़ और पापी हूं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण राजाओंमें पूजनीय, युद्धभूमिमें स्थित महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य्यके समीप गमन करके "आपकका पुत्र मारा गया" कहके जो मिथ्या वचन कहा था, उस मिथ्या वचन कहनेकी पापसे मेरा सम्पूर्ण शरीर भस्म हुआ जाता है। गुरुने जब "मुझसे ऐसा पूछा था, कि "हे, राजन्! मेरा पुत्र जीवित है, वा नहीं, तुम सत्य कहो?" आचार्य्यने समझा था, कि युधिष्ठिर सत्य कहेगा। परन्तु मैं ऐसा पापी हूं, कि राज्य लोभके कारण उस समय सत्यको छिपाते हुए मनमें हाथीका नाम लेकर स्पष्ट स्वरसे "अश्वत्थामा मारे गये," ऐसा वचन कहके गुरुके सङ्ग मिथ्या व्यवहार किया है, उस फलसे न जाने किस निकिष्ट लोकमें गमन करूंगा; उसे नहीं कह सकता। और भी देखिये, युद्धमें पीछे न हटनेवाले महा पराक्रमी जेठे भाई कर्णका भी मैंने बध किया है; इससे मुझसे बढ़के अधिक पापी और कौन है? मैं ऐसा लोभी हूं, कि विजयकी लालसासे सिंह पुत्रके समान पराक्रमी सुभद्रा पुत्र अभिमन्युको द्रोणाचार्य्यसे रचित चक्रव्यूहके बीच प्रवेश करनेकी अनुमति दी थी। हे महाऋषि! अधिक क्या कहूं भ्रूणहत्या करनेवाले पापीकी भांति उस समयसे मैं पुरुषोंकाह कृष्ण और अर्जुनके मुखको और अच्छी प्रकार देखनेमें भी समर्थ नहीं होता हूं। उसी भांति पञ्च-पर्व्वतोंसे रहित पृथ्वीकी भांति पांच पुत्रोंसे हीन अत्यन्त दुःखित द्रोपदी देवीकी ओर देखनेसे भी मैं शोकसे अत्यन्तही कातर होजाता हूं। मैं पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रियों और गुरुजनोंका नाश करके अत्यन्त ही अपराधी हुआ हूं; इससे मैं इस स्थानमें योगाभ्यास अवलम्बन करके अपने शरीरको सुखा दूंगा, ऐसा होनेसे फिर मुझे किसी जातिमें जन्म नहीं लेना पड़ेगा आजसे मैं खाने पीनेकी सम्पूर्ण वस्तुओंको त्यागके यहां पर ही स्थित होके अपने प्रिय प्राणको त्याग करूंगा। हे तपस्वी श्रेष्ठ! मैं

आपसे विनय पूर्व्वक कहता हूं, कि आप मुझे शरीर त्यागनेकी आज्ञा देकर अपने अभिलषित स्थान पर गमन कीजिये।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर बन्धु-बान्धवोंके वियोगसे अत्यन्त शोकित वा विह्वल होके विलाप करने लगे; तब ऋषिसत्तम व्यासदेव बोले, महाराज! योग अवलम्बन करके प्राण त्याग मत करो, तुम्हें इस प्रकारसे शोकित होना उचित नहीं है; मैं फिर तुम्हें उत्तम उपदेश करता हूं, सुनो। जैसे पानीके बुलबुले पानीमें ही उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर फिर उसहीमें लवलीन होजाते हैं, वैसे ही प्राणी मात्रका पहिले संयोग और पीछे वियोग हुआ करता है। सञ्चित वस्तु अन्तमें नाशमान होती हैं, उन्नतिके अनन्तर अवनति होती रहती है, जन्मके अनन्तर मृत्यु होती है, सुखके बाद दुःख होता है; अधिक क्या कहूं, इस जगतके बीच जितनी वस्तु उत्पन्न हुई हैं, वे सबही प्रगट होके पीछे नाशमान हो जाती हैं, परन्तु आलससे दुख और कार्य्यमें रत रहनेसे ही पुरुषोंको सुख प्राप्त होता है। ऐश्वर्य्य लक्ष्मी लज्जा, कीर्त्ति और धृति आदि गुण आलसी मनुष्यमें कदापि नहीं रह सकते, वह सुहृदपुरुषोंको सुख और शत्रुओंको दुःख देनेमें भी समर्थ नहीं हो सक्ता, बुद्धिसे धन और धनसे सुख भी नहीं प्राप्त कर सकता। हे राजन्! विधाताने तुम्हें धर्म्म करनेके ही निमित्त उत्पन्न किया है, कर्म्म त्याग करनेमें तुम्हें अधिकार नहीं है; इससे धर्म्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होनेसे ही तुम्हें सिद्ध प्राप्त होगी।

२७ आध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिर स्वजनवियोग रूपी दुःखसे सन्तापित होकर प्राण त्याग करनेके अभिलाषी हुए; तब मुनि सत्तम व्यासदेव उनके शोकको दूर करनेमें प्रवृत्त होकर बोले,-महाराज! अश्म गीत नाम एक प्राचीन इतिहास मैं वर्णन करता हूं, सुनिये। किसी समय विदेह-राज जनकने शोक दुःखसे अत्यन्त ही सन्तापित होके अश्म नामक महाबुद्धिमान एक ब्राह्मणसे संशय निवारण करनेके निमित्त यह प्रश्न किया, हे ब्राह्मण! स्वजन और धनकी बढ़ती तथा नाश होनेके समय कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको कैसा कार्य्य करना उचित है।

अश्म बोले, मनुष्यके उत्पन्न होते ही सुख दुःख आके उसके अनुगामी होते हैं। सुख दुःख दोनोंका प्राप्त होना सम्भव रहता है, परन्तु उन दोनोंमेंसे जिस समय एक की अधिकता होती है, तब जैसे वायु बादलोंको छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही वह मनुष्यकी चैतन्य शक्तिको हर लेता है। अभ्युदयके समय लोग समझते हैं, कि,, मैं साधारण मनुष्य नहीं हूं, मैं श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जो इच्छा करूं उसही कार्य्यको कर सकता हूं,-इन तीन प्रकारके अभिमानमें मतवाले होके एक बारगी हिताहित विवेकसे रहित होते हैं; इससे विषयोंमें अत्यन्त ही आसक्त होके अपव्ययसे सम्पूर्ण पैतृक धनको नष्ट करके शीघ्र ही निर्द्धन होजाते हैं; उस समय पराया धन हरण करनेको भी वे लोग उत्तम कार्य्य समझते हैं। अनन्तर जैसे व्याध मृग आदि पशुओंका बध करता है, वैसे ही राजा भी उन नियम उल्लङ्घन करनेवाले तथा पर धन हरनेवाले दुष्ट-मनुष्योंको दण्ड देता है; परन्तु जो बीस तथा तीस वर्षकी अवस्थामें इन दुष्कर्म्मोंसे विरत होजाते हैं, वे लोग प्रायः एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित नहीं रह सकते। इससे राजाको सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतरी वृत्तान्त जानके

दरिद्रता आदि दुःखोंसे पीड़ित प्रजाके क्लेशोंको बुद्धिकौशलसे दूर करनेका उपाय करना चाहिये। "चित्त विभ्रम और अनिष्ट-विषय" इन दोनोंके सिवा मानसिक दुःख उत्पन्न होनेका तीसरा कारण कोई भी नहीं है, भोगादिकोंसे अथवा अन्य विषयोंसे चाहे किसी भांतिके दुख क्यों न होवें—सब इन्हीं दो कारणोंके अन्तर्गत हैं। इस जगत्के बीच बड़े, छोटे निर्ब्बल बलवान आदि सब प्राणियोंको जरा मृत्यु व्याघ्रकी भांति आके भक्षण करती है। जो पुरुष अपने पराक्रमके प्रभावसे समुद्रके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको जय कर सकते हैं, वे भी जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। सुख दुख उपस्थित होनेसे अभिमान रहित होकर उसे भोग करना ही उचित है, क्यों कि प्रारब्धके अनुसार जो कुछ उपस्थित होता है, वह अपरिहार्य्य अर्थात् अटल है।

हे महाराज! देखिये प्राणी मात्र ही अजर अमर होनेकी अभिलाषा करते हैं, परन्तु उसके विपरीति जरा, मृत्यु उपस्थित होके किसीको बाल्य किसीको युवा और किसीको वृद्धावस्थामें ग्रहण करती है; मृत्युके हाथसे कोई भी मुक्त नहीं होसकता। प्राणियोंको जन्म, मृत्यु, हानि, लाभ, प्रियवस्तुओंका संयोग वियोग, सुख, दुख आदिक प्रारब्धके अनुसार ही होते हैं। इससे जैसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि स्वभावसे ही प्रकट होके अन्तमें निवृत्त होजाते हैं; उस भांति जाना, उठना, खाना, पीना, बैठना, सुख दुःख इत्यादि समयानुसार प्राणियोंको प्रारब्धसे ही उत्पन्न होते हैं; और समय पूरा होनेसे नहीं रहते। इस संसारमें वैद्य भी रोगी होते हैं, बलवान पुरुष निर्ब्बल और धनवान मनुष्य निर्द्धन होजाते हैं; इससे कालकी गतिको अत्यन्त विचित्र जानना चाहिये। बड़े कुलमें जन्म, वीर्य्य, निरोगता, रूप, सौभाग्य और उपभोग ये सब होतव्यताके अनुसार ही प्राप्त होते हैं। इस पृथ्वीपर इच्छा न रहनेसे भी दरिद्रोंको अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं; परन्तु समृद्धि युक्त पुरुषोंको प्रार्थना करनेपर भी एक पुत्र उत्पन्न नहीं होता; इससे दैवके आश्चर्य्यमय कार्य्योंको अवलोकन करो। जरा, व्याधि अवनति, भूख, प्यास, जल, अग्नि और विष आदिसे जो कुछ आपदा दीख पड़ती है, वह प्राणियोंको प्रारब्ध तथा सुकृत दुष्कृत आदि कर्म्मोंके फलके अनुसारही प्राप्त होती है। इस जगत्के बीच कोई पुरुष पाप न करके भी दण्ड पाता है, और कोई महाघोर अत्याचारी होकर भी राजदण्डसे छुटकारा पाता है; इससे प्रारब्धको अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है। इस पृथ्वीपर धनवान पुरुषोंको युवावस्थामें ही मृत्युके मुखमें पतित होते, और दरिद्र पुरुषोंको अत्यन्त क्लेशके सहित जरा-युक्त होकर भी एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते देखा जाता है; इससे छोटे वंशमें जन्म लेकर भी दीर्घजीवी और श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषको भी पतङ्गकी भांति नष्ट होते देखा जाता है। इस संसारके बीच श्रीमान पुरुष प्रायः ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते, अर्थात् अल्पायु होते हैं; परन्तु दरिद्र-पुरुष अत्यन्त निकृष्ट वृत्तिसे ही जीविका निर्व्वाह करनेमें समर्थ होते हैं, उस निमित्त वे अधिक दीर्घजीवी होसकते हैं। दुष्टात्मा पुरुष निज सुखके वास्ते पापकार्य्योंका भी अनुष्ठान करते तथा कालप्रेरित होकर उसे ही प्रिय समझते हैं। मृगया, जूआ, स्त्रियोंमें आसक्ति, मद्यपान व्यर्थप्रलाप,—इन कई एक विषयोंको पण्डितोंने अत्यन्त निन्दित कहके वर्णन किया है; परन्तु बहुतसे शास्त्र जाननेवाले पुरुषोंको भी नहीं सम्पूर्ण विषयोंमें आसक्त होते देखा जाता है। ईप्सित वा अनीप्सित सम्पूर्ण विषय समयानुसार प्राणियोंको आक्रमण करते हैं; उसमें दूसरा, कोई भी कारण नहीं बोध होता।

वायु, आकाश, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमा, दिन, रात, ज्योतिवाले पदार्थ, नदी और पहाड़ोंको किसने उत्पन्न किया है; और कौन सबको धारण करता है? अतएव काल ही सबको धारण करता, और कालके प्रभावसे ही समस्त वस्तु उत्पन्न होती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस भांति सर्दी, गर्मी, वर्षा और मनुष्योंके सुख-दुःख कालके प्रभावसे ही प्राप्त होते, और समयानुसार फिर नष्ट होजाते हैं। जब मनुष्य जरा-मृत्युसे ग्रस्त होते हैं, उस समय औषधि, मन्त्र, जप, होम आदिक कोई भी उसके परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे महासागरमें दो काष्ठके टुकड़े दो ओरसे आके एक स्थानमें मिल जाते हैं, और समयके अनुसार फिर अलग अलग होजाते हैं, वैसे ही प्राणियोंका भी समयके अनुसार संयोग-वियोग होता रहता है। जो पुरुष उत्तम स्त्रियोंके बीचमें रहके गीतवाद्य आदिक सुखोंको भोगते रहते हैं, और जो पराये अन्नके आसरे जीवन धारण करनेवाले अनाथ पुरुष हैं;—काल दोनोंके सङ्ग समान व्यवहार करता है; अर्थात् वे कोई भी मृत्युके मुखसे छुटकारा नहीं पा सकते। इस संसारमें माता, पिता, स्त्री और पुत्र आदिक सैकड़ों तथा सहस्रों भांतिके सम्बन्ध दीख पड़ते हैं; परन्तु विचारपूर्व्वक देखनेसे वे लोग किसके माता, पिता हैं; और हम लोग ही किसके आत्मीय बान्धव हैं? कोई भी इस आत्माका आत्मीय नहीं है और न यह आत्मा किसीका आत्मीय बन्धु होसक्ता है। जैसे पथिक मार्गमें गमन करते हुए थोड़े समयके वास्ते एक स्थानपर इकट्ठे होकर विश्राम करके फिर यथायोग्य स्थानपर गमन करते हैं, इस संसारमें स्त्री पुत्र और स्वजनोंकी सङ्गति भी उसी भांति समझनी चाहिये। मैं कौन हूं, कहां हूं, और कहां जाऊंगा। किस कारण इस संसारमें स्थित हूं, और क्यों शोक वा दुःख करता हूं? ज्ञानी पुरुषको ऐसा विचारना चाहिये, कि चक्रकी भांति घूमने वाले संसारके बीच प्रियजनोंका एकत्र वास अनित्य है। जैसे मार्गमें चलते हुए पथिक लोग एक स्थानपर इकट्ठे होके थोड़े समयतक विश्राम करते हैं; पिता, माता, भाई और मित्रोंके समागमको भी उसी प्रकार जानना चाहिये। ज्ञानकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको शास्त्र-विधिके अनुसार परमार्थ विषयमें श्रद्धा करनी उचित है? देखिये पण्डित लोग बिना देखे ही परलोकके सम्पूर्ण विषयोंको जानते हैं। विद्वान् पुरुषको भी देवता पितरोंकी पूजा अर्थात् शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार त्रिवर्गसेवन अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम आदि सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान करना उचित है। जरा मृत्यु रूपी ग्राहसे युक्त कालरूपी समुद्रमें जो यह जगत् डूब रहा है, उसे कोई भी नहीं मालूम करता।

कितने ही वैद्य आयुर्वेदका पढ़के भी परिवारके सहित व्याधिसे ग्रस्त होते हैं; जैसे समुद्रका वेग तटको उल्लङ्घन नहीं कर सकता, वैसे ही वे लोग नाना भांतिके घृत आदिक औषधि सेवन करके भी किसी प्रकार मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे हाथी पर्व्वतोंपर निवास करके भी कभी कभी मतवाले होकर अपने दांतोंसे पर्व्वत तोड़नेकी इच्छा करते हैं, वैसे ही रसायनिक तथा वैद्यक विद्याके जाननेवाले पण्डित लोग शरीररक्षाके निमित्त भली भांति रसायन प्रयोग करके भी प्राय: जरा मृत्युसे ग्रस्त होते दीख पड़ते हैं। इसी भांति दाता यज्ञशील, वेदपाठी और तपस्वी पुरुष भी जरा-मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। उत्पन्न हुए प्राणियोंके विषयमें वर्ष, महीना, पक्ष, दिन रात्रि आदि जो व्यतीत होजाते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते। इससे अनित्य शरीरवाले मनुष्योंको समय

पूर्ण होनेकी इच्छा न रहनेपर भी अवश्य ही सम्पूर्ण प्राणियोंके गमन करनेवाले चिरनिश्चित उस महापथसे ही गमन करना पड़ता है। शीघ्र ही देह जीवसे पृथक होता है, वा जीव ही देहसे पृथक् होजाता है। जो हो, जगतके बीच स्त्री वा अन्य बन्धुवर्गोंकी जो सङ्गति है, वह मार्गमें निवास करनेवाले पथिकोंकी भांति है। इस जगत्में कोई कदापि एक एक सङ्ग सदा सर्व्वदा निवास नहीं कर सकता, जब कि निज शरीरहीके साथ जीवके चिर-सहवास-लाभकी सम्भावना नहीं है; तब दूसरेके साथ सदा एक सङ्ग सहवास कैसे स्थिर रह सकता है? हे पापरहित युधिष्ठिर! इस समय तुम्हारे पिता वा पितामह आदि पितर कहां हैं? इस समय वे लोग तुम्हें नहीं देखते हैं, और तुम भी उन लोगोंको नहीं देख सकते हो। हे राजेन्द्र! स्वर्ग और नरकको कोई पुरुष भी नहीं देख सकता; परन्तु शास्त्र ही पण्डितोंके नेत्र स्वरूप हैं; इससे तुम उसके अनुसार इस संसार यात्राका निर्व्वाह करो। इस संसारमें जन्म लेनेके अनन्तर देवता पितर और ऋषियोंके ऋणको चुकानेके निमित्त असूयारहित होके पहिले ब्रह्मचर्य्य फिर दार-परिग्रह कर सन्तान उत्पन्न, अनन्तर यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करे; जो लोग इसलोक और परलोकके कार्य्योंको समान रूपसे साधन कर सकते हैं, और शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार कर ग्रहण करते हैं; उन धर्म्म स्थापित करनेवाले राजाओंका यश समस्त लोकोंमें विख्यात होता है। शुद्ध-बुद्धि-वाले विदेहराज जनक इसी भांति हेतु पूरित सम्पूर्ण उपदेश वचनोंको सुन कर शोक रहित हुए और अश्म ऋषिको आमन्त्रण करके अपने घर लौट आये। हे अच्युत युधिष्ठिर! तुम इन्द्रके समान पराक्रमी हो, इससे शोक त्याग कर तुम्हें हर्षित होना उचित है। तुमने क्षत्रिय-धर्म्मके अनुसार इस पृथ्वीको जय किया है, इस समय अब सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको भोग करो! मेरे वचनमें कुछ संशय मत करो!

२८ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिरने वेदव्यासके उपदेश वचनोंको सुनके भी कुछ उत्तर नहीं दिया, तब पाण्डुपुत्र गुडाकेश अर्ज्जुन हृषीकेश कृष्णसे यह वचन बोले, हे माधव! शत्रुनाशन धर्म्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर ज्ञाति-वध शोकसे अत्यन्त ही दुःखित हुए हैं; इससे आप शोक रूपी समुद्रमें डूबते हुए राजा युधिष्ठिरको प्रबोधित कीजिये। हे जनार्द्दन! हम लोगोंमेंसे किसीके वचनमें इन्हें विश्वास नहीं होता है।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब महात्मा अर्ज्जुनने श्री कृष्णसे ऐसा वचन कहा, तब पुण्डरीकाक्ष अच्युत कृष्ण धर्म्मराज युधिष्ठिरको धीरज धारण करानेमें प्रवृत्त हुए। शैशव बालक अवस्थासे ही धर्म्मराज युधिष्ठिरके अर्ज्जुनसे भी अधिक प्रिय थे, इससे उनके वचनको राजा युधिष्ठिर अवश्य ही मानते थे। कृष्ण राजा युधिष्ठिरके चन्दन-चर्च्चित शैल स्तम्भके समान भुजाको ग्रहण करके उत्तम वचनसे उनके चित्तको प्रसन्न करने लगे जैसे सूर्य्य उदय होने पर कमल प्रफुल्लित होता है, वैसे ही वचन बोलनेके समयमें श्री कृष्णके सुन्दर दर्शन; उत्तम पंक्तिसे युक्त मुख, नेत्र और शरीरकी शोभा हुई।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पुरुष शार्दूल महाराज! जो लोग कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके फिर प्राप्त होनेकी किसी प्रकारसे भी अब सम्भावना नहीं है, इससे आप ऐसे शोकको परित्याग कीजिये। जैसे स्वप्नमें प्राप्त हुई वस्तु जागनेके अनन्तर नहीं दीख पड़ती, इस महायुद्धमें मरे हुए क्षत्रियोंको भी उस ही

भांति समझना चाहिये। वे मरे हुए शूरवीर पुरुष सब ही युद्धभूमिमें सम्मुख संग्राम करके एक दूसरेके हाथसे मारे गये; उनके बीच कोई भी पुरुष पीठ दिखाके अथवा भागते हुए नहीं मारा गया; वे सब ही वीर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करके शस्त्रसे मरकर स्वर्ग लोकमें गये हैं; इससे उन लोगोंके निमित्त आप शोक न कीजिये महाराज! क्षत्रिय-धर्ममें रत, वेद वेदांगको जाननेवाले शूरवीर पुरुष अवश्य ही वीर पुरुषोंके योग्य पवित्र गतिको पाते हैं। आप परलोक प्राप्त हुए महात्मा पूर्व्व राजाओंके वृत्तान्तको सुनने होसे मरे हुए बन्धु-बान्धवोंके निमित्त शोक नहीं करेंगी; इस विषयमें देवऋषि नारदने एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनिये।

पुत्र शोकसे आर्त्त हुए सृञ्जय राजको नारद मुनिने यह उपदेश किया था कि, हे सृञ्जय! तुम, मैं वा अन्य मनुष्य कोई भी सुख दुःखसे छुटकारा नहीं पासकते और हम सब लोगोंको ही एक दिन मरना होगा; तब विलाप करनेको क्या आवश्यकता है? मैं तुम्हारे समीप पहिले समयके राजाओंका महात्म्य वर्णन करता हूं; उसे चित्त लगाके पूर्णरीतिसे सुननेसे ही तुम्हारा शोक नष्ट होजावेगा। उन महातेजस्वी राजाओंके वृत्तान्तका सुभसे सुनकर शोक परित्याग करो। राजाओंमें अग्रणी इन महात्मा राजाओंके सुन्दर मनोहर तथा पवित्र उपाख्यानको सुननेसे ही क्रूर ग्रह शान्त होते और आयु बढ़ती है।

हे सृञ्जय! तुमने सुना होगा, कि अविक्षितके पुत्र मरुत नामक एक विख्यात राजा हुए थे; परन्तु वह भी परलोक गये हैं। जिस महात्मा मरुत राजाके विश्वसृक् अर्थात् सर्व्वस्व दान नामक यज्ञमें देवतोंके गुरु वृहस्पति प्रमुख इन्द्र और वरुण आदि देवता उपस्थित हुए थे; और जिन्होंने अहङ्कार पूर्व्वक देवराज इन्द्रको युद्धभूमिमें पराजित किया था; जिनके यज्ञानुष्ठानके समय विद्वान् वृहस्पतिके इन्द्रकी प्रियकामनासे जिस मरुत्तराजको यह कहकर कि मैं तुम्हारे यज्ञमें न जा सकूंगा, लौटा देने पर वृहस्पतिके ही कनिष्ठ भ्राता सम्वर्त्तने जिनके यज्ञको पूर्ण कराया था। जिनके शासन समयमें पृथ्वी राजविभवसे शोभित होकर विना हलसे जोते ही शस्य उत्पन्न करती थी। जिनके यज्ञमें विश्वेदेवा सभासद, साध्य लोग परिवेष्टा हुए थे, और मरुद्गणने आकर सोमरस पान किया था। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व्व और मनुष्योंसे भी बढ़ गये थे। जो धर्म्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य, इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे; हे सृञ्जय! जब ऐसे गुणोंसे युक्त महात्मा मरुत राजाने भी परलोकमें गमन किया है; तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! सुहोत्र नामक एक विख्यात राजा थे, तुमने सुना होगा उन्हें भी परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस सुहोत्र राजाके राज्यमें इन्द्रने एक वर्ष पर्य्यन्त लगातार सुवर्णकी वर्षा की थी। जिन नरपतिको पति रूपसे पाके पृथ्वी "सत्यवती" नामसे विख्यात हुई थी। उनके राज्य शासनके समयमें सम्पूर्ण नदियोंमें स्वर्णमय जलजन्तु तैरते थे। उसका कारण यह है कि उन दिनों लोक पूजित इन्द्रने पृथ्वीकी सब नदियोंमें सोनेके कूर्म्म कर्कट घड़ियाल और शिशुमारको वर्षा की थी। अधिक क्या कहा जावे, उन सैकड़ों तथा सहस्रों मच्छ मकर और कच्छप आदि स्वर्णमय जल जन्तुओंको देखकर राजा सुहोत्र स्वयं विस्मित हुए थे। हे राजन्! अनन्तर राजा सुहोत्रने कुरुजाङ्गलमें यज्ञ आरम्भ करके उस असीम सुवर्णके ढेरको ब्राह्मणोंको दान किया था। वह महात्मा सुहोत्र राजा धर्म्म, वैराग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे

श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु वह भी मृत्युके ग्रासमें पतित हुए हैं। इससे तुम दान और यज्ञसे रहित अपने पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने अङ्गराज बृहद्रथका नाम सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने विष्णुपदगिरि पर यज्ञमें दीक्षित होकर रत्नादिसे भूषित दश लाख कन्या, और दश लाख घोड़े, पद्मनाल चिन्हसे युक्त दश लाख हाथी, सहस्र गजके सहित सुवर्णमालासे भूषित एक करोड़ वृषभ दक्षिणामें दिये, पहिले जिन्होंने एक सौ यज्ञ किये थे, जिन यज्ञोंमें सोमरसपान करके देवराज इन्द्र और दक्षिणा पाये हुए धनके मदसे एकबारही ब्राह्मण लोग मतवाले हुए थे। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व और मनुष्योंसे बढ़ गये थे जिन यज्ञोंमें सोमपानकी विधि है, उन अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उकथ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्याम इन सात सोमसंस्थान नामक यज्ञोंमें अङ्गराज जिस प्रकार धनदान किया था, उस प्रकार धन दान करनेवाला कोई पुरुष इस पृथ्वीपर न हुआ, न होगा। हे सृञ्जय! वह अङ्गराज न्याय, धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी कालके ग्रासमें पतित हुए हैं; इससे तुम पुत्रके वास्ते क्यों शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने उशीनरपुत्र महाराज शिविकी कथा भी सुनी होगी; उनकी भी मृत्यु हुई है; जिन्होंने इस पृथ्वीको शरीर ढांपनेवाले चमड़ेकी भांति हस्तगत किया था जिन्होंने एकही जयशील रथपर चढ़के रथके बड़े शब्दसे चारों ओर गुंजाकर सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके पृथ्वीको एकछत्रके अधीन किया था, और जिन्होंने अपने तमाम जङ्गली और पलए गौ, घोड़े आदि पशुओंको मंगाके यज्ञमें दान किया था। अधिक क्या कहा जावे, प्रजापति ब्रह्माने उस समय समस्त राजाओंके बीच उशीनरपुत्र राजऋषि शिविके अतिरिक्त और किसीको भी राज्यभार ग्रहण करनेके योग्य नहीं समझा था। इसलिये वह महात्मा शिवि राजा धर्म्म अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु ऐसे गुणोंसे युक्त महात्मा शिवि राजाकी मृत्यु हुई है, तब तुम दान और यज्ञसे रहित अपने पुत्रके निमित्त शोक मत करो!

हे सृञ्जय! महा ऐश्वर्य्यवान् शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न हुए दुष्मन्तपुत्र महात्मा भरतकी कथा तुमने सुनी होगी, जिस महातेजस्वी राजा भरतने देवताओंकी प्रीतिकी अभिलाषासे यमुनाके तीरपर तीस, सरस्वती नदीके किनारे बीस, गङ्गाके तीरपर चौदह इत्यादि इसी भांति क्रमसे एक हजार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। जैसे मनुष्य बाहुबलके सहारे आकाशमें गमन करनेमें समर्थ नहीं होते उसी भांति पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज भरतके कर्म्मोंके अनुगामी होनेमें समर्थ नहीं होसकते। अधिक क्या कहा जावे, उस महात्मा राजा भरतने अनगिनत यज्ञवेदी आरम्भ करके उनमें एक सहस्रसे अधिक अर्ब्बुद घोड़े और पद्म सहस्र रत्न कण्व मुनिको दान किया था, वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु उन्होंने भी शरीर त्याग किया है; इससे तुम अपने पुत्रके वास्ते व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! राजा दशरथके पुत्र महात्मा रामचन्द्रका वृत्तान्त तुमने सुना होगा, उन्होंने भी शरीर त्याग किया है। जिन्होंने सदा प्रजाको अपने पुत्र समान पालन किया था; राज्यशासनमें जो अपने पिता दशरथके समान थे। और अधिक क्या कहा जावे, रामचन्द्रके

राज्यशासनके समयमें कोई स्त्री विधवा नहीं थीं, न कोई अनाथ ही दीख पड़ते थे, यथा समयपर जलकी वर्षा होती थी; अन्न भी यथा समय पर उत्पन्न होते थे; इससे उनके राज्य शासनके समयमें किसी भांति दुर्भिक्ष नहीं उपस्थित हुआ था। उस समय किसीकी जलमें डूबके वा अग्निमें भस्म होके मृत्यु नहीं हुई थी, और दूसरे किसी भांतिके रोगका भी भय नहीं था। रामचन्द्रके राज्यशासनके समय सब प्राणी सहस्र वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते, और सहस्र पुत्रवाले होते थे, और सबके अभिलषित मनोरथ सिद्ध होते थे, रोग रहित होके समय व्यतीत करते थे; उनके राज्यमें पुरुषोंकी बात तो दूर है, स्त्रियां भी आपसमें विवाद करनेमें प्रवृत्त नहीं होती थीं। उस समय सब कोई धर्म्ममें रत, सदा सन्तुष्ट चित्त सत्यव्रती, अभिलाष विषयमें पूर्ण मनोरथ, निर्भय और स्वाधीन थे। वृक्ष सदा फूलफलोंसे युक्त रहते थे, गौयें बड़े परिमाण दूध देती थीं। उस महातपस्वी रामचन्द्रने पिताके सत्यको पालन करनेके वास्ते चौदह वर्ष पर्य्यन्त वनमें निवास करके फिर राज्य शासनके समयमें तिगुनी दक्षिणासे युक्त दश अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये थे। लाल नेत्रवाले श्याम सुन्दर युवा रामचन्द्र यूथपति हाथीके समान बलवान थे। उनकी आजानुलम्बितभुजा थीं, मुख कान्ति मनोहर और कन्धा सिंहस्कन्धके समान था। महात्मा रामचन्द्रने ग्यारह हजार वर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्नताके सहित अयोध्यामें राज्य किया था। वह धर्म्म, अर्थ वैराग्य और ज्ञान इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; उन्हें भी मनुष्य लीला समाप्त कर इस लोकको त्यागके परलोकमें गमन करना पड़ा, तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! पहिले भगीरथ नामक एक बड़े राजा हुए थे, उनका नाम तुमने सुना होगा; उन्हें भी मृत्युमुखमें पतित होना पड़ा! जिसके यज्ञमें सोमरस पान करके सुरसत्तम भगवान् पाकशासनने मतवाले हाथीकी भांति मत्त होके अपने बाहुबलके सहारे एक हजार असुरोंको पराजित किया था। उन्होंने यज्ञमें रत्नोंसे भूषित करके एक हजार कन्यादान किया था। उनमेंसे हर एक कन्या चार घोड़ोंसे युक्त एक एक रथपर चढ़ी थीं, हर एक रथके साथ सुवर्ण मालासे सुशोभित पद्मआकार चिन्हसे युक्त एक एकसौ हाथी, हर एक हाथीके सङ्ग एक हजार घोड़े नियुक्त थे, हर एक घोड़ेके सङ्ग एक हजार गऊ, सहस्र बकरे और सहस्र भेड़ें थे। अधिक क्या कहा जावे, उस इक्ष्वाकु कुलभूषण यज्ञशील बहुत सी दक्षिणा देनेवाले महात्मा भगीरथको त्रिलोक गामिनी गङ्गादेवी पिता स्वीकार करके उनकी जङ्घापर बैठी थीं; जिस स्थलमें गङ्गा भगीरथकी जङ्घापर बैठीं उस स्थानमें उनका नाम उर्व्वशी और भागीरथी हुआ। वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे तथा तुम्हारे पुत्रसे श्रेष्ठ तथा अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी कालके ग्राससे मुक्त होनेमें समर्थ न हुए, इससे तुम यज्ञ और दक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त वृथा शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने महात्मा दिलीप राजाका भी वृत्तान्त सुना होगा, जिसके अनेक उत्तम कर्म्म और कीर्त्तिकी कथाको ब्राह्मण लोग आज तक गाया करते हैं। जिन्होंने महायज्ञका अनुष्ठान करके रत्न-पूरित पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की थी। जिसके हर एक यज्ञमें पुरोहित ब्राह्मणको एक सहस्र सुवर्णमय हाथी दक्षिणामें प्राप्त हुई थीं। जिसके शोभायुक्त यज्ञमें स्तम्भ भी सुवर्णमय हुए थे; अधिक क्या कहा जावे, उस समय इन्द्र आदि देवताओंने भी आदिष्ट कार्य्योंको पूर्ण

करके महाराज दिलीपकी उपासना कोथी और उनके यज्ञ मण्डपके हिरण्मय स्तम्भ पर छः हजार देवता गन्धर्व्व इकट्ठे होकर नाचते, और विश्वावसु बीचमें बैठके बीन बजाते थे। जिन बीनके बाजेको सुनकर समस्त श्रोताओंने समझा था, कि ये मुझे ही लक्ष्य करके बीन बजा रहे हैं। पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज दिलीपके इस कार्य्यके अनुकरण करनेमें समर्थ न हुए। राजा दिलीपके ऐश्वर्य्यकी बात क्या कहूं, सुवर्ण भूषणोंसे भूषित मतवाले हाथी मदमत्त होकर मार्ग हीमें शयन करते थे; अधिक क्या कहूं, उस शतधन्वा सत्यवादी महात्मा महाराज दिलीपका जिन मनुष्योंने दर्शन किया था, वे भी स्वर्गभागी हुए। जिसके राज भवनमें सदा सर्व्वदा धनुष टङ्कार, वीरोंके सिंहनाद, वेदध्वनि और "दीयतां दीय" ये तीन भांतिके शब्द चण भरके वास्ते भी नहीं बन्द होते थे। देखिये महात्मा दिलीप धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु उन्हें भी इस लोकको त्यागना पड़ा, इससे अब तुम पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय! युवनाश्वपुत्र महाराज मान्धाताकी कथा तुमने सुना होगा; उनको भी मृत्यु हुई है। राजा युवनाश्वने पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ दही युक्त अभिमन्त्रित घृत अपनी स्त्रीको न देकर भ्रमपूर्व्वक स्वयं पान किया था, उससे उनके ही गर्भ रह गया और मान्त्रित आज्यके प्रभावसे रुधिर-संयोगके विना ही वह बालक पितृगर्भमें दिनोंदिन बढ़ने लगा; फिर मरुत आदि देवताओंने पितृगर्भको भेदकर उस बालकको निकाला था, अनन्तर वह बालक त्रिलोक-विजयी राजा हुआ था,—ऐसी घटना किस प्रकार हुई, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो। उत्पन्न होते ही उस बालकको मातापिताकी गोदमें शयन करते देखकर देवता लोग आपसमें यह वचन कहने लगे, कि यह बालक किसका आसरा ग्रहण करेगा। अनन्तर देवराज इन्द्रने कहा, "अयं मां धास्यति" अर्थात् यह मेरा आसरा ग्रहण करेगा,—ऐसा कहके उन्होंने उस बालकका "मान्धाता" नाम रखा, और शरीरपुष्टिके निमित्त अपने हाथकी उङ्गली उसके मुंहमें डाल दी; तिसके अनन्तर उस उङ्गलीसे ही-दूधकी धार बहने लगी। इन्द्रके हाथकी उङ्गलीके दूधको पीकर वह बालक दिनोंदिन इस प्रकार बढ़ने लगा, कि बारह दिनमें ही बारह वर्षकी अवस्थाके समान मालूम हुआ; इसी भांति क्रमसे एक सौ दिनतक इन्द्रकी उङ्गलीके दूधको पीकर पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुआ था। अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी शूर, धर्म्मात्मा, महात्मा मान्धाता युद्धभूमिमें अङ्गार, मरुत, असितङ्गय, अङ्गराज वृहद्रथ आदि मुख्य मुख्य सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके एक ही दिनमें समस्त पृथ्वीके स्वामी हुए। जिस समय अङ्गराज वृहद्रथके सङ्ग महाराज मान्धाताका युद्ध हुआ था, उस समय देवताओंने उनके धनुष्टङ्कारके शब्दको सुनकर समझा कि आकाश विदीर्ण हुआ चाहता है। उनके प्रबल प्रतापकी कहांतक वर्णन करूं जहांसे सूर्य्य उदय होते और जहांपर जाके अस्त होते हैं अर्थात् अन्तिम सीमा पर्य्यन्त आजतक पृथ्वी "मान्धाता क्षेत्र" कहके विख्यात है। पृथ्वीपति मान्धाताने एक सौ अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंको पूर्ण करके ब्राह्मणोंको दक्षिणामें अनगिनत रोहू मछली प्रदान की थी, दूसरी वस्तुओंके दानकी कथा क्या कहूं! जब कि मान्धाता राजाके यज्ञके अन्तमें ब्राह्मणोंके अतिरिक्त दूसरी जातिके मनुष्योंने भी एक योजन ऊंचे और दश योजन चौड़े सुवर्णके ढेरको बांट लिये थे; तब ब्राह्मणोंने कितना धन पाया था, उसका कहना बाहुल्यता मात्र है। हे सृञ्जय!

राजा मान्धाता धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य, इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी जब शरीर त्यागके इस लोकसे विदा होगये हैं, तब पुत्रके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! बोध होता है, तुमने नहुषपुत्र राजा ययातिका वृत्तान्त सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिसने अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया था, जिसने शम्याप्रात अर्थात् एक बलवान पुरुषके हाथसे फेंके जानेपर जितनी दूरमें एक मोटी तथा भारी लकड़ीका टुकड़ा गिर पड़ता है, उतनी दूरके घेरमें यज्ञकी वेदीसे पृथ्वीको चित्रित और उत्तम यज्ञ करते हुए क्रमसे पृथ्वीकी सीमा अर्थात् समुद्रके किनारे पहुंचे थे। इसी भांति एक सौ वाजपेय और इसके अतिरिक्त एक हजार दूसरी भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करके सुवर्णके बने हुए तीन पर्व्वत ब्राह्मणोंको दान दिये थे। नहुषपुत्र महाराज ययातिने युद्धभूमिमें अनगिनत दैत्य और दानवोंकी व्यूहबद्ध सेनाका नाश करके समस्त पृथ्वी विभाग कर अपने पुत्रोंको बांट दी थी, परन्तु अन्तमें यदु और द्रुह्यु आदि पुत्रोंको निराश करके सबसे छोटे पुरुको समस्त राज्य पर अभिषिक्त करके स्त्रीके सहित वनको चले गये। हे सृञ्जय! राजा ययाति धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी जब कालके कराल ग्राससे मुक्त न होसके, तब तुम किस कारण अपने पुत्रके वास्ते शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने नाभागपुत्र राजा अम्ब-रीषकी कथा सुनी होगी वह भी मृत्युके मुखमें पतित हुए। जिस पृथ्वी-पालक राजसत्तम अम्ब-रीषको सब प्रजा साक्षात् पुण्यकी मूर्त्ति सम-झती थी, जिन्होंने अयुत यज्ञोंके अनुष्ठान किया था, वैसे ही दश हजार राजाओंको उप-स्थित ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त किया था। बहुतेरे दोषदर्शी पुरुषोंने नाभाग पुत्र राजा अम्बरीषके ऐसे अद्भुत कार्य्यको देखकर कहा था, कि "पहिले कोई भी राजा ऐसा कार्य्य न कर सके और न भविष्य होमें कर सकेंगे,"—इसी भांति बारम्बार उनकी प्रशंसा की थी। हे सृञ्जय! जो सब राजा यज्ञके समय ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त थे, उन लोगोंने महाराज अम्ब-रीषके महात्म्य प्रभावसे अश्वमेध यज्ञोंके फलके भागी होकर उत्तरायण मार्गसे हिरण्यगर्भ लोकमें गमन किया। हे सृञ्जय! राजा अम्ब-रीष धर्म्म, अर्थ ज्ञान और वैराग्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी मृत्युके कराल ग्रासमें पतित हुए; इससे पुत्रके वास्ते तुम व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने चित्ररथ-पुत्र शशविन्दुका उपाख्यान सुना होगा, जिस महात्मा शशबिन्दु राजाके एक लाख स्त्री थीं और उन सम्पूर्ण स्त्रियोंसे दश लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे; वे सब राजपुत्र सुवर्णमय कवचोंसे युक्त और महाधनु-र्द्धर थे, उन हर एक राजपुत्रोंने एक एक सौ कन्याओंके सङ्ग विवाह किया था। हर एक कन्याके सङ्ग एक सौ हाथी प्रति हाथीके साथ एक सौ रथ, हर एक रथके सङ्ग सुवर्ण मालासे भूषित एक सौ उत्तम घोड़े थे, हर एक घोड़ेके साथ एक सौ गऊ, प्रति गऊके सङ्ग एक एक सौ बकरे और भेड़ नियुक्त थे। इस समस्त अपार धनको महाराज शशबिन्दुने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंको दान किया था। हे सृञ्जय! राजा शशबिन्दु तुमसे धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे परन्तु वह भी मृत्युके मुखसे मुक्त होनेमें समर्थ न होसके इससे तुम पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! राजा अमूर्त्तरयके पुत्र गयकी कथा तुमने सुनी होगी; उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने एक सौ वर्ष पर्य्यन्त यज्ञसे शेष बचे एक अन्नको भोजन करके अपने जीवनको धारण किया था। अग्निने जब उन्हें वर देनेको कहा, तब उन्होंने यह वर मांगा, "हे अग्नि! तुम्हारी कृपासे मेरा धन अक्षय होवे, धर्म्म और सत्यमें मेरी अटलरूपसे सदा बुद्धि रत रहे," ऐसी जनश्रुति है, कि अग्निने राजा गयकी प्रार्थना सुनके उन्हें वही अभिलषित वर प्रदान किया था। राजा गय एक हजार वर्ष पर्य्यन्त दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य और अश्वमेध यज्ञसे देवताओंकी पूजा अर्चामें नियुक्त थे। एक हजार वर्षतक राजा गयने प्रति यज्ञके अन्तमें सौ हजार गऊ और सौ हजार अश्वतर दान की थी। इस ही भांति उस पुरुष श्रेष्ठ धनसे ब्राह्मणों, सोमरस पानसे देवताओं, स्वधासे पितरों और अभिलषित वस्तुओंके दानसे स्त्रियोंको तृप्त किया था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञोंके पूर्ण होनेपर दश व्याम चौड़ी और एक सौ हाथ लम्बी सुवर्णकी कृत्रिम पृथ्वी बनाके ब्राह्मणोंको दान की थी। हे सृञ्जय! पृथ्वीपर जितने बालूके कण देख पड़ते हैं, महात्मा गयने उतनी ही गऊ ब्राह्मणोंको दान की थी, हे सृञ्जय! महात्मा गय धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, उन्हें भी जब शरीर त्यागना पड़ा, तब तुम यज्ञ और दक्षि-णासे हीन अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने महाराज रन्तिदेवकी कथा सुनी होगी, वह भी सदाके वास्ते इस पृथ्वीपर रहनेमें समर्थ नहीं हुए। जिस महा-त्मा रन्तिदेवने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रसे यह वर मांगा था, कि "मेरे अपरम्पार अन्नके ढेर सदा-सर्व्वदा तैयार रहें, मेरे द्वारपर प्रति दिन अनगिनत अतिथि उपस्थित रहें, किसी समयमें भी मेरी श्रद्धा, कम न होवे, और मुझे किसीके समीप याञ्चा करनी न पड़े,"—इन्द्रने उन्हें इच्छानुसार वरदान किया। व्रत करने-वाले, महात्मा रन्तिदेवके यज्ञके समयमें गांव और वनके पशु स्वयं आके उपस्थित होते थे। उनके यज्ञमें मरे हुए पशुओंके रुधिर और चर्म्मोंसे एक महानदी प्रकट हुई थी, वह आज तक पृथ्वीपर चर्म्मण्वती नामसे विख्यात है। जिस रन्तिदेवने सभाके बीच सुवर्णमुद्रा दान करनेके समय "तुम्हें एक सौ स्वर्ण मुद्रा दान करूंगा, तुम्हें एक सौ स्वर्णमुद्रा दूंगा,—इसी भांति मन्त्रसे सङ्कल्प करके जब देनेको उद्यत हुए, तब ब्राह्मण लोग हम लोग एक सौ स्वर्ण मुद्रा नहीं लेंगे,—ऐसा वचन कहके कोला-हल मचाने लगे; अनन्तर महात्मा रन्तिदेवने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्ण मुद्रा प्रदान की थी। उस बुद्धिमान राजा रन्तिदेवकी पाकशालामें कलसी, कड़ाही, थाली लोटे आदि भोजनके पात्र सुवर्णके अतिरिक्त दूसरी धातुके नहीं थे; जिसके गृहमें रात्रिमें पहुंचे हुए अतिथियोंके वास्ते जिस रात्रिको बीस हजार पशु मारे गये थे, उस रात्रिमें सुन्दर मणि जटित कुण्डलोंसे शोभित रसोई बनानेवाले पुरुष "आज पहिलेकी भांति मांस नहीं है इससे तुम लोग आज इच्छानुसार दालके सङ्ग भोजन करो,"—ऐसे ही वचन कहते हुए अतिथियोंके समीप प्रार्थना करते थे। हे सृञ्जय! महाराज रन्तिदेव धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु उन्हें भी कालके कराल गालमें पतित होना पड़ा; इससे तुम यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! अत्यन्त पराक्रमी इक्ष्वाकुकुल-भूषण पुरुष शार्दूल महात्मा सगरकी कथा

तुमने सुनी होगी; उन्हें भी परलोकमें गमन करना पड़ा। महाराज! राजा सगरके गमन करनेके समय साठ हजार पुत्र इस प्रकार उनके अनुगामी होते थे, जैसे शरदृतुमें चन्द्रमाके आस पास नक्षत्रमण्डली दीख पड़ती है। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीपर एकछत्र राज्य करके एक हजार अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवताओंको तृप्त किया था, और हर एक यज्ञोंके पूर्ण होनेपर राजा सगरने सुवर्णस्तम्भ, सुन्दर नेत्र और उत्तम शरीरवाली स्त्रियोंके सहित उत्तम शय्यासे पूरित श्रेष्ठ मन्दिर प्रदान किये थे; उनकी आज्ञानुसार ब्राह्मणोंने उन समस्त वस्तुओंको आपसमें बांट लिया था। राजा सगरने क्रुद्ध होकर पृथ्वीको खनके समुद्रको पुनर्व्वार उत्पन्न किया था, उस ही समयसे समुद्र सागर नामसे विख्यात हुआ है। वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; तौ भी करालकाल उन्हें हस्तगत करनेमें न चुका; इससे तुम पुत्रके निमित्त शोक वृथा मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने वेणुपुत्र राजा पृथुकी कथा सुनी होगी, उन्हें भी इस लोकसे परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस राजा पृथुको महर्षियोंने जङ्गलके बीच राज्यपद पर अभिषिक्त करके "ये पृथ्वीके सम्पूर्ण भागको उन्नत करेंगे; इससे इसका नाम पृथु हुआ"-ऐसा वचन कहके उनका नाम पृथु रक्खा था; उन्होंने क्षतसे प्रजाओंका उद्धार किया था, इससे वह महत क्षत्रिय शब्दसे प्रसिद्ध हुए; और सब प्रजा "हम सब तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हैं", ऐसा अनुराग भाव प्रकाशित कर वह राजा कहके विख्यात हुए। राजा पृथुके राज्यशासनके समय बिना हलसे जोते ही पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न होते थे; वृक्षोंके हर एक पत्तोंमें मधु प्रकट होती और गौएं कलश परिमाण दूध देती थीं; उस समय सम्पूर्ण मनुष्योंकी अभिलाषा पूरी होती थी और सब कोई रोगरहित होकर घर तथा खेतमें अपनी इच्छानुसार निवास करते थे। जब महाराज पृथु समुद्र यात्रा करते थे, तब समुद्रकी लहरका शब्द बन्द हो जाता और नदियोंके जल स्तम्भित हो जाते थे; मार्गमें गमन करनेके समय उनके रथके ध्वजाकी कहीं पर किसी भांति भी रुकावट नहीं होती थी। उन्होंने वृहत् अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानमें एक हजार दासी हाथ ऊंचा सुवर्णका पर्व्वत तैय्यार कर ब्राह्मणोंको दान किया था। महाराज पृथु धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, जब उन्हें भी मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ा तब तुम यज्ञ दाक्षिणाहीन अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय! तुम मौनावलम्बन करके किस की चिन्ता कर रहे हो? तुम क्या मेरे इन सब वचनोंको नहीं सुनते हो? यदि तुम नहीं सुनते हो, तो कालग्रस्त रोगी पुरुषको औषध देनेकी भांति मेरे ये सब उपदेश युक्त वचन तुम्हारे समीपमें निष्फल तथा व्यर्थ हुए।

सृञ्जय बोले, देवर्षि! कीर्त्तिमान पवित्र चरित्रवाले महात्मा राजर्षियोंकी कथा, जो कि आपने मेरे समीप वर्णन की है, वह शोक मोहका नाश करनेवाली और सुगन्धि युक्त मालाकी भांति मनोहर है, मैंने विचित्र अर्थसे युक्त आपके सम्पूर्ण उपदेशोंको चित्त लगाके सुना है। हे ब्रह्मवादी-श्रेष्ठ महर्षि! आपके कहे हुए; हितोपदेश वचन निष्फल नहीं हुए; अधिक क्या कहूं, आपके दर्शन मात्रसे ही मैं शोक रहित हुआ हूं। जैसे कोई अमृत पीके तृप्त नहीं होता, वैसे ही आपके उपदेश युक्त वचनोंको बार बार सुनकर भी मेरा चित्त तृप्त

नहीं होता है। हे देवर्षि! आपके समान महात्मा पुरुषोंके दर्शन कदापि निष्फल नहीं होते, इससे यदि आप पुत्र शोकसे शोकित मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न हुए हों, तो आपकी कृपासे मेरा पुत्र फिर जीवित होके मेरे सङ्ग वार्त्तालाप करे

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय पर्व्वत ऋषिके वरप्रभावसे तुम्हें जो पुत्र प्राप्त हुआ था, तथा सुवर्णष्ठीवीनामक तुम्हारा जो गुणवान पुत्र इस समय प्राण रहित होकर पृथ्वी पर शयन कर रहा है, मैं तुम्हारे उस सुवर्णप्रद पुत्रको फिर जिला देता हूं; अब मेरे आशीर्वादसे इस बार एक हजार वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहेगा।

२८ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण! सृञ्जयराजका पुत्र सुवर्णष्ठीवी किस भांति हुआ और पर्व्वत ऋषिके वरसे उत्पन्न होके भी वह किस कारण अकालमें ही मृत्यु ग्रस्त हुआ? उस समयमें जब कि सब मनुष्योंकी आयु एक हजार वर्ष पर्य्यन्त थी, तब सृञ्जयपुत्रने कुमार अवस्थाके न बीतते ही बीतते क्यों यमलोकमें गमन किया? जो हो, उसका नाम मात्र सुवर्णष्ठीवी था, वा निष्ठीवनमें सुवर्ण उत्पन्न होता था, इस कारण उसका नाम सुवर्णष्ठीवी हुआ? यदि स्वाभाविक सुवर्ण उत्पन्न होता था, तो किस भांति वह सुवर्णष्ठीवी हुआ, मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! इस विषयमें जो कुछ घटना हुई थी, मैं वह सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, आप सुनिये। लोक-सत्तम नारद और पर्व्वत दो ऋषि हैं, उन दोनोंमें मामा और भानजेका सम्बन्ध है, उनमें नारद मामा और पर्व्वत भानजे थे। पहिले किसी समयमें घृत चावल आदि अन्न भोजन करनेकी अभिलाषासे उन दोनों ऋषियोंने मर्त्त्यलोकमें आगमन किया था। अनन्तर वे दोनों ऋषि पृथ्वीपर मनुष्योंके भोज्य सम्पूर्ण वस्तुओंको भोगते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे। उन दोनोंने प्रीति पूर्व्वक आपसमें यह नियम स्थापित किया, कि "चाहे शुभ हो चाहे अशुभ होवे, जिस समय हम लोगोंके बीच जैसे भावका उदय होगा; यदि कोई इसमें अन्यथाचरण करेगा, तो वह पापका भागी होगा। उन दोनों ऋषियोंने "ऐसाही होगा"-यह वचन कहके ऊपर कहे हुए नियमको पालनकरनेके वास्ते प्रतिज्ञा की थी। अनन्तर सब लोकोंमें पूजित वे दोनों ऋषि राजा सृञ्जयके समीप जाके यह वचन बोले, हे महाराज! तुम्हारे हितके निमित्त हम दोनों इस स्थानपर कुछ दिनोंतक वास करेंगे; तुम हम लोगोंके ऊपर अनुकूल होकर यहांपर रहनेके वास्ते आज्ञा दो। राजा सृञ्जय उन दोनों ऋषियोंके वचनको सुनते ही "जो आज्ञा" कहके उनकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुए। इस ही भांति कुछ दिन व्यतीत हुए, तब एक दिन राजा सृञ्जय प्रीति-पूर्व्वक उन दोनों महात्माओंसे बोले, हे दोनों महात्मन्! मेरा एक निवेदन सुनिये। मेरे एक पद्मपुष्पके समान सुन्दर रूपवाली, कामिनीकुलकी भूषण, शीलता आदि गुणोंसे युक्त सुकुमारी नामकी अनिन्दिता कन्या है, वह अकेलीही आप दोनों महात्माओंकी सेवा करेगी, इस विषयमें आप लोगोंका जो कुछ अभिप्राय हो; उसे प्रकाशित कीजिये।

राजाके वचनको सुनकर उन दोनों ऋषियोंने "उत्तम है"—ऐसा कहके उस विषयमें अपनी सम्मति प्रकाशित की। तब राजा सृञ्जय अपनी कन्यासे यह वचन बोले, हे पुत्री! तुम पिता और देवताकी भांति इन दोनों ऋषियोंकी सेवा करो। पिताकी आज्ञा सुनके वह अनिन्दिता कन्या उन दोनों महात्माओंकी सेवा

करने लगी। उसकी अकपट सेवा और सुन्दर रूपको देखकर थोड़े ही समयके बीच महात्मा नारद ऋषिके अन्तःकरणमें उसका कामदेव प्रकट होके शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा; परन्तु धर्मात्मा नारद ऋषिने लज्जापूर्वक अपने भानजे महात्मा पर्वतऋषिके समीप निज मानसिक भावको प्रकाश नहीं किया।

महर्षि पर्वतने अपने तपके प्रभावसे नारदको कामार्त्त समझा और अत्यन्त क्रुद्ध होके उनसे यह वचन बोले, "आपने स्वयं मेरे सङ्ग यह नियम किया था, कि" हम दोनोंके बीच जिसके मनमें शुभ अशुभ जैसे भावका उदय होगा उसी समय कपट रहित होकर आपसमें प्रकाश करेंगे; परन्तु तुमने वह प्रतिज्ञा झूठी की। क्योंकि राजपुत्री सुकुमारीके विषयमें जो आपकी काम-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है, उसे इतने दिनोंतक आपने मेरे समीप प्रकाशित नहीं किया; इससे मैं आपको शाप दूंगा। आप मेरे गुरु, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें निष्ठावान और तपस्वी ब्राह्मण हैं; परन्तु हम लोगोंके आपसमें किये हुए नियमको आपने उल्लङ्घन किया है, उस ही कारण मैं तुम्हें जैसा शाप दूंगा, उसे सुनो,—राजकन्या सुकुमारी तुम्हारी भार्य्या होगी इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु विवाहके समयसे आप स्वरूप भ्रष्ट होकर अपनी विवाहिता स्त्री और अन्य मनुष्योंको वानर रूपसे दीख पड़ेंगे।

देवर्षि नारदने अपने भानजेके अलङ्घ्य शापयुक्त वचन सुनके क्रुद्ध होकर उन्हें भी शाप दिया, कि "यद्यपि तुम तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सत्य और दम आदि गुणोंसे युक्त तथा अटल रूपसे निज धर्ममें स्थित हो" तौभी मेरे शापसे अब पहिलेकी भांति स्वर्ग लोकमें गमन करनेमें समर्थ न होओगे। इसी भांति उन दोनों ऋषियोंने क्रोधपूर्व्वक एक दूसरेको शाप देकर क्रुद्ध हाथीकी भांति अपने अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया। महाबुद्धिमान पर्व्वत ऋषि निज तेज प्रभावसे समस्त मनुष्योंमें सम्मानित होकर पृथ्वीपर भ्रमण करनेमें प्रवृत्त हुए, और विप्रवर नारद ऋषिने शास्त्र विधिके अनुसार सृञ्जयराजकी कन्या अति सुकुमारीको ग्रहण किया; परन्तु वह कन्या पाणीग्रहणके समयसे ही नारद ऋषिको पर्व्वत ऋषिके शाप प्रभावसे वानर रूपसे देखने लगी। आश्चर्यका यह विषय है, कि उस धर्म्मज्ञ राजपुत्रीने नारद ऋषिके बन्दरके समान मुख और रूपको देखकर भी उनकी अपमानना नहीं की, बल्कि प्रीति पूर्व्वक अपने स्वामीकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुई। उसने अपने पतिमें अनुरक्त होकर देवता, यक्ष, मुनि तथा अन्य किसी पुरुषको कभी मनसे भी पतिभावसे नहीं देखा।

तिसके अनन्तर किसी समय भगवान् पर्व्वत ऋषिने अपने मामा नारद ऋषिको वनके बीच एकान्त स्थानमें देखा। उस समय वह नारद ऋषिको प्रणाम करके यह वचन बोले, हे भगवन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होके फिर स्वर्ग लोकमें गमन करनेकी अनुमति दीजिये। अनन्तर शापसे अत्यन्त दुःखित महात्मा नारद ऋषि अपने भानजे पर्व्वत ऋषिको शापसे कातर और हाथ जोड़के उपासककी भांति अपने सम्मुख स्थित देखके उनसे बोले, हे तात! पहिले मुझे "तुम बन्दर होगे," यह कहके तुमने शाप दिया, तब मैंने भी क्रोधपूर्व्वक तुम्हें शाप दिया, कि "आजसे तुम अब स्वर्ग लोकमें गमन न कर सकोगे"। देखो तुम मेरे पुत्रके समान हो, इससे मेरे सङ्ग ऐसा व्यवहार करना तुम्हें उचित नहीं हुआ। इसी भांति वाद विवाद करके वे दोनों ऋषि शान्त होके आपसमें एक दूसरेको अपने शापसे मुक्त किया। तब देवर्षि नारद पहिलेकी भांति फिर अपने दिव्य स्वरूपको प्राप्त हुए, इधर राजपुत्री अति सुकुमारी श्रेष्ठ नारद ऋषिका देवतोंके

समान तेजपुञ्जसे युक्त शरीर देखके अन्य पुरुष समस्त उनके समीपसे भागने लगी। तब पर्व्वत ऋषि अनिन्दिता सुकुमारी राजपुत्रीको भागती देखके बोले, हे पतिव्रता! ये तुम्हारे वेही पति निग्रहानिग्रहमें समर्थ महात्मा नारद ऋषि हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे तुम शङ्का रहित होकर इनकी अनुगामिनी बनो। महात्मा पर्व्वत ऋषिने उस राजकन्याके समीप ऐसे विनय युक्त वचन कहके फिर आपसके शापका वृत्तान्त वर्णन किया, तब राजकन्या सुकुमारी पर्व्वत ऋषिके मुख समस्त वृत्तान्त सुनके शान्त हुई। अनन्तर महर्षि पर्व्वत स्वर्ग लोक और नारद ऋषिने अपने गृहको ओर गमन किया।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैंने आपके समीप जिस वृत्तान्तको वर्णन किया, वह सब जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा था, वह भगवान् नारद ऋषि यहीं पर बैठे हुए हैं; इससे आपके पूछनेपर ये स्वयं ही शेष वृत्तान्त वर्णन करेंगे।

३० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर नारद मुनिसे यह वचन बोले, हे भगवन्! मैं उस सुवर्णष्ठीवीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त आपके मुखसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

नारद मुनि युधिष्ठिरके पूछने पर सुवर्णष्ठीवीकी उत्पत्ति आदि सम्पूर्ण वृत्तान्तको वर्णन करनेमें प्रवृत्त होकर बोले, महाराज! महात्मा कृष्णने तुम्हारे समीप जो कुछ वर्णन किया, वह सब सत्य है, शेष वृत्तान्त मैं कहता हूं, तुम सुनो। किसी समय मैं और मेरे भानजे महामुनि पर्व्वत ऋषि अर्थात् हम दोनोंने थोड़े समयतक निवास करनेके वास्ते विजयी श्रेष्ठ राजा सृञ्जयके समीप गमन किया; वह यथारीतिके कार्य्योंसे हम दोनोंकी सेवामें नियुक्त हुए। हम लोग उनके राजमन्दिरमें वास करके खाने पीनेकी समस्त वस्तुओंसे सम्मानित होकर वहां पर निवास करने लगे। इसी भांति वर्षाकाल बीतने पर जब हम लोगोंके गमन करनेका समय उपस्थित हुआ, तब पर्व्वत ऋषि मुझे सम्बोधन करके उस समयके अनुसार मुझसे यह वचन बोले, "हे ब्रह्मन्! हम लोगोंने इतने दिनोंतक इस राजाके घरमें परम सुखसे निवास किया है इस समय कैसे प्रत्युपकारसे इसका कल्याण होसकता है; इस विषयका विचार करो।" शुभ दर्शन पर्व्वत ऋषिके मुखसे ऐसा वचन सुनके मैंने कहा, "हे भागिनेय! तुम सब विषयोंके पूर्ण करनेमें समर्थ हो, इससे ऐसा कहना तुम्हें योग्य ही है, तुम राजाको इच्छानुसार वर देकर कृतार्थ करो। अथवा यदि तुम्हारी इच्छा होवे तो राजा सृञ्जय हम दोनोंके तप प्रभावसे सिद्धि प्राप्त करें!

तिसके अनन्तर पर्व्वत ऋषि विजयी श्रेष्ठ राजा सृञ्जयसे यह वचन बोले, हे राजन्! तुम्हारी निष्कपट सेवासे हम लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं, इससे आज्ञा देता हूं, कि तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो उसे इसही समय विशेष समालोचना करके देखो, यह कहनेका यही अभिप्राय है, कि देवताओंकी हिंसामें प्रवृत्त न होनेसे मनुष्योंका कदापि नाश नहीं होता, इससे तुम इस विषयमें सावधान होकर इच्छानुसार वर मांगो; क्योंकि तुम मेरे समीप वर ग्रहण करनेके योग्य पात्र हो।

सृञ्जय बोले, यदि आप दोनों मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, तब मुझे समस्त वस्तु प्राप्त हुई हैं; यही मेरे वास्ते परम लाभ तथा महत् फल समझिये। राजा सृञ्जयका ऐसा वचन सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, हे राजन्! जो सङ्कल्प बहुत दिनोंसे तुम्हारे अन्तःकरणमें विराजमान

है, उस ही चिर-संकल्पित वरको तुम इस समय हम लोगोंके समीप मांगो।

राजा सृञ्जय बोले, हे महर्षि! हमारी यह इच्छा है, कि महासौभाग्य युक्त, आयुष्मान, वीर्य्यवान दृढ़व्रती, वीर और देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होवे। उनके ऐसे वचनको सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, महाराज! तुमने जो वर मांगा, वह तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा पूरी होगी; इसके अतिरिक्त तुम्हारे पुत्रके मलमूत्रसे सुवर्ण उत्पन्न होगा, इससे वह सुव र्णष्ठीवी नामसे विख्यात होगा। परन्तु तुमने मन ही मन देवराज इन्द्रके पराभवकी इच्छा की थी; इससे तुम्हारा पुत्र दीर्घजीवी नहीं होगा। जो हो, तुम इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रकी सदा सर्व्वदा देवराज इन्द्रसे रक्षा करना। राजा सृञ्जय पर्व्वतऋषिके मुखसे ऐसा वचन सुनतेही अत्यन्त भय भीत होकर उनसे बोले, "हे भगवन्! ऐसा अनिष्ट न होवे, आपके तप-प्रभावसे मेरा पुत्र दीर्घायु हो," इसी भांति विनययुक्त वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करनेके निमित्त यत्न करने लगे, परन्तु पर्व्वतऋषिने इन्द्रके कल्याणकी इच्छा करके राजा सृञ्जयके वचनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब मैंने राजा सृञ्जयको अत्यन्तही दीनभावसे युक्त देखकर कहा। महाराज! तुम आपदग्रस्त होनेपर मुझे स्मरण करना; तो उस ही समय तुम मेरा दर्शन पाओगे और तुम्हारा वह प्रियपुत्र यदि यमलोकमें भी गया होगा, तौभी मैं उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे समीप लाके उप-स्थित करूंगा; इससे अब इस विषयके वास्ते शोक मत करो। राजा सृञ्जयसे ऐसा वचन कहके भानजे पर्व्वतऋषि और मैं,—दोनोंने ही अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया; सृञ्जय भी अपने राजभवनमें गये। कुछ दिनके अनन्तर राजऋषि सृञ्जयके अग्निके समान तेजस्वी महापराक्रमी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और वह बालक तालावमें स्थित बड़े पद्मकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा। परन्तु पर्व्वतऋषिके वरप्रभावसे उस बालकके निष्ठी वनसे प्रकृत रूपसे सुवर्ण उत्पन्न होने लगा; इसही कारण उसका नाम भी सुवर्णष्ठीवी हुआ।

नारद मुनि बोले, हे कुरुसत्तम युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर यह लोकविस्मयकर समाचार चारों ओर फैल गया और बलि तथा वृत्रासुरके नाश करनेवाले भगवान इन्द्रने भी सुना, कि पर्व्वतऋषिके वर प्रभावसे राजा सृञ्जयके एक अद्भुत पुत्र उत्पन्न हुआ है; उससे उन्होंने अपनी पराजयके भयसे डरके बृहस्पतिके निकट सब वृत्तान्त प्रकाश किया; फिर देव-ताओंके गुरु बृहस्पतिकी सम्मतिके अनुसार उस राजपुत्रका छिद्र खोजने लगे और मूर्त्तिमान दिव्य अस्त्र वज्रको सम्बोधन करके बोले, हे वज्र! पर्व्वतऋषिके वरप्रभावसे राजा सृञ्जयके एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह युवा अवस्था प्राप्त होनेसे अवश्य ही मुझे पराजित करेगा; इससे तुम बाघका रूप धरके उसका वध करो ऐसा कहके उन्होंने उस बालकके मारनेकी इच्छासे वज्र चलाया। तब शत्रुओंके जीतने-वाला वज्र इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर गुप्त रीतिसे उस राजपुत्रका छिद्र खोजता हुआ उसके पीछे घूमने लगा। इधर राजा सृञ्जय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रको पाके प्रसन्न चित्तसे थोड़ी सेनाके सहित उस राजकुमारकी रक्षाके वास्ते सर्व्वदा अन्तःपुरमें निवास करने लगे। इसी भांति वह बालक क्रमसे पांच वर्षकी अवस्थाका होगया, परन्तु वह थोड़ी अवस्थाका होकर भी गजराजके समान परा-क्रमी हुआ था। उस ही समय एक दिन उस राजपुत्रने खेलनेके वास्ते केवल दासीके साथ गङ्गातीरके निकट निर्ज्जन वनके बीच गमन किया। वहां पहुंचते ही सहसा महाबली पराक्रमी एक शेरको लड़केके सम्मुख आते

देखकर वह बालक भयसे कांपने लगा, और उसके अनन्तर उस व्याघ्रके हस्तगत होके पिसके तथा प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पड़ा उसे देखकर दासी चिल्लाके रोने लगी। इधर इन्द्रकी मायाप्रभावसे व्याघ्ररूपी वज्र उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगया। अनन्तर रोती हुई दासीका अत्यन्त आरत शब्द सुनके राजा सृञ्जय स्वयं उस ही ओर दौड़े और वहां पहुंचके देखा, कि "शोभारहित चलनेमें असमर्थ चन्द्रमाके समान राजपुत्र प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिरा हुआ है; और किसी हिंसक पशुने उसके गलेका रुधिर पीया है।" उस समय राजा सृञ्जय अत्यन्त दुःखित होकर उस रुधिर लिपटे शरीरसे युक्त मरे हुए पुत्रको गोदमें उठाके आरत स्वरसे विलाप करने लगे। तिसके अनन्तर उस राजकुमारकी माता भी पुत्रकी विपद्-वार्त्ता सुनकर अत्यन्त ही शोकके सहित रोदन करती हुई जिस स्थानमें राजा सृञ्जय विलाप कर रहे थे, वहांपर उपस्थित हुई। राजा सृञ्जयने बहुत देरतक रोदन करनेके अनन्तर एकाग्रचित्त होकर मुझे स्मरण किया, मैं उसे जानके उस ही समय शोकसे व्याकुल राजाके पास उपस्थित हुआ। अनन्तर क्षण भर पहिले यदुवीर कृष्णने जो तुम्हारे समीप वर्णन किया; वही सब प्राचीन राज-ऋषियोंका इतिहास उनके समीप वर्णन किया; तिसके अनन्तर इन्द्रकी सम्मतिसे उनके पुत्रको भी फिर जिला दिया। हे राजन्! इससे यह निश्चय जान रखो, कि जो होनहार है, वह अवश्य होता है, किसी प्रकार उसमें अन्यथा नहीं होसकता। जो हो, अनन्त पराक्रमी महायशस्वी राजपुत्र सुवर्णष्ठिवीने फिर जीवित होकर पिता माताकोप्रसन्न किया; और कुछ समयके अनन्तर राजा सृञ्जयके परलोक गमन करने पर महाबली अत्यन्त तेजस्वी राजपुत्रने पिताकी राजगद्दी पर बैठके ग्यारह सौ वर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्नताके सहित राज्य शासन किया। इतने दिनमें उन्होंने बहुतसी दक्षिणासे युक्त अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवता और पितरोंको तृप्त कर बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके कुलको बढ़ाया था। इसी भांति बहुत दिनतक अतुल ऐश्वर्य्य भोगके वह भी अन्त समयमें परलोकको गये। हे महाराज युधिष्ठिर! इससे महातपस्वी व्यासदेव और श्रीकृष्णने तुम्हें जैसा उपदेश किया है, तुम उस ही भांति पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यभारको ग्रहण करो और लोकोंका पवित्र करनेवाले महा यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करनेके वास्ते यत्न करो; ऐसा होनेसे तुम शरीर त्यागनेके अनन्तर अपने अभिलषित लोकमें गमन कर सकोगे।

३१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कि सम्पूर्ण धर्म्म तत्वके जाननेवाले महा तपस्वी श्री कृष्णचन्द्र द्वैपायन ऋषि राजा युधिष्ठिरको शोकसे आरत और मौनभावसे स्थित देखकर बोले, हे राजीवलोचन धर्म्मराज! राजाओंको प्रजा पालन करना ही एक मात्र धर्म्म है; और सदा धर्म्म करनेवाले मनुष्योंका धर्म्म ही प्रमाण-स्वरूप है; इससे तुम पिता पितामहसे रक्षित उस ही राजधर्म्मको पालन करो।

हे भरतकुल तिलक! तपस्या केवल ब्राह्मणोंका ही धर्म्म है, ऐसी विधि वेदमें दृढ़ रूपसे निश्चित है; वह नित्य धर्म्म ब्राह्मणोंका मूल स्वरूप है; परन्तु समस्त धर्म्मोंके रक्षक क्षत्रिय हैं। क्यों कि तपस्यामें निष्ठावान ब्राह्मण लोग विघ्नोंसे बिना रक्षित हुए किसी भांति भी धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यदि कोई पुरुष विषय लोभके वशमें होकर राजशासन उल्लङ्घन करे, तो उस लोकयात्रामें

विघ्न डालनेवाले पुरुषको दण्ड देना राजाका कर्त्तव्य है। सेवक, पुत्र वा तपस्वी आदि कोई पुरुष क्यों न हों, यदि मोहके वशमें होकर प्रमाण प्रमाणको अप्रमाण करनेमें प्रवृत्त होवें, तो जिस उपायसे होसके उन पापी पुरुषोंका शासन अथवा उनका वध करना उचित है; इससे अन्यथा चरण करनेसे राजाको पापमें लिप्त होना पड़ता है। किसी दुष्ट पुरुषको धर्म लिप्त करते देखके यदि राजा उस दुष्टको दण्ड देके धर्मकी रक्षा न करे, तो धर्म लुप्त होनेका सब पाप राजाको ही लगता है। हे युधिष्ठिर! तुमने धर्म लोपक दुर्य्योधन आदि दुष्ट राजाओंको मारके यथार्थ रूपसे क्षत्रिय धर्मकी रक्षा की है, तब किस कारण तुम व्यर्थ शोक करते हो? धर्म पूर्व्वक प्रजापालन, दान और दुष्टोंका दमन करना, ये ही राजाओंके प्रकृत धर्म हैं।

युधिष्ठिर व्यासदेवके वचनोंको सुनके बोले, हे तपोधन! आप धर्म्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रणी हैं तथा धर्मके सम्पूर्ण तत्व आपको गुप्त भावसे विदित हैं, इससे आपके उपदेश युक्त वचनोंका मैं कुछ भी संशय नहीं करता हूं, परन्तु मैंने जो राज्यके वास्ते भीष्म-द्रोणाचार्य्य आदि कई एक अवध्य पुरुषोंका वध किया है, वही दुष्कर्म मेरे हृदयको भस्म किये डालता है।

श्री वेदव्यास मुनि बोले, हे राजेन्द्र! युद्धभूमिमें जो सब वीर मारे गये, उनका वध करनेवाला ईश्वर, जीव स्वभाव, अथवा उनके किये हुए कर्म्मोंके फल हैं? यदि कहो कि जीव ईश्वरकी प्रेरणासे शुभा-शुभ कर्म्मोंमें प्रवृत्त होता है, तो तुम्हें शोक करना उचित नहीं है; क्योंकि उस शुभाशुभ कर्म्मोंके फलको देनेवाला कर्त्ता ईश्वर ही है, वही फल भोगेगा। उसका दृष्टान्त देखो, कि यदि कोई पुरुष वनमें एक वृक्ष काटे, तो वृक्ष काटनेका पाप उस काटनेवालेका ही लगेगा; कुल्हाड़ेको पाप नहीं लग सकता। यदि कहो, कि कुल्हाड़ा अचेतन अर्थात् जड़ वस्तु है, इसही कारण पापभागी नहीं हो सकता; परन्तु जीव चैतन्य है, इसही कारण नियोज्यकर्त्ता होनेसे वह शुभाशुभ कर्म्मोंका अवश्य फलभागी होगा। तो वृक्ष काटनेवालेको पाप न लगकर कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी तो पाप लग सकता है?

हे कुन्तीनन्दन! कभी ऐसा विचार मत करो, कि उस नियोज्यकर्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी वृक्ष काटनेवालेके पाप-फलमें लिप्त होना पड़ेगा! क्योंकि एक पुरुषने वृक्ष काटा और दूसरेको उस पापका भागी होना पड़ेगा, यह सिद्धान्त कदापि युक्ति-पूरित नहीं हो सकता। इससे तुम भी सब कर्म्मोंके फलको प्रयोजन-कर्ता ईश्वर होको समर्पण करो। यदि कहो, जीवही शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता है, उसे प्रेरणा करनेवाला कोई भी नहीं है; ऐसा माननेसे जगन्नियन्ता कोई भी नहीं स्वीकार किया जा सकता; ऐसा होनेसे तुम्हें किसकी भय है! तुमने शुभ अथवा अशुभ जो कुछ कर्म्म किये हैं, वेही उत्तम हैं।

हे राजन्! इस समयमें जो कहता हूं, उसे विशेष रूपसे निश्चय करो। वृक्ष काटनेवालेका पाप कदापि नियोज्यकर्त्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको नहीं लग सकता यह तुम निश्चय समझ रक्खो, कि कोई भी दैवका अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, अर्थात् सब कोई दैवके वशमें होके शुभाशुभ कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं। यदि तुम स्वभावकोही कर्त्ता समझते हो, तो भूत और भविष्यत् किसी कालमें भी तुम्हारे साथ पापका सम्बन्ध नहीं होसकता। हे युधिष्ठिर! यदि तुम्हें सब लोगोंके धर्म्माधर्मकी मीमांसा करनेकी इच्छा हो, तो शास्त्रसे ही इसका निर्णय होसकता; क्योंकि धर्म्माधर्म्म शास्त्रमूलक हैं। इससे उस शास्त्रमें ही जब राजाका दण्ड धारण कर्त्तव्यका

विधि वर्णित है; तब तुम्हें इतन शोकका कौनसा विषय है? हे राजशार्दूल! यदि तुम यह समझते हो, कि शास्त्रका मत ऐसा ही है और सब लोग शास्त्र विधि अनुसार कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं,-इसे स्वीकार करता हूं; परन्तु शुभ और अशुभ कर्म्मोंके फल स्वयं ही जीवके सम्बन्धमें आप ही आके उपस्थित होते हैं, और उन कर्म्मोंके फल भी जीवको प्राप्त होते हैं; तो मैं जो कुछ कहता हूं, उसे निश्चय करो। पापसे अशुभ कर्म्म करनेकी प्रवृत्ति होती है इससे तुम असत् फलदायक सम्पूर्ण कर्म्मोंको सब भांतिसे त्याग कर अब शोक चिन्तासे रहित हो जाओ। हे राजन्! तुमने यथार्थ रीतिसे निज धर्म्म पालन किया है, इससे अब तुम्हें लोकनिन्दित आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होना उचित नहीं है। और देखिये इस लोकमें पापकर्म्मोंके प्रायश्चित्तकी विधि है; परन्तु प्रायश्चित्त जीवित अवस्थामें ही सहजमें किया जा सकता है; शरीर नष्ट होनेपर किस प्रकार प्रायश्चित्त होसकेगा? हे युधिष्ठिर! शरीरकी रक्षा करनेसे तुम अनायास ही प्रायश्चित्तके अनुष्ठान करनेमें समर्थ होसकोगे, और यदि तुम बिना प्रायश्चित्त किये ही शरीर त्याग करोगे; तो परलोकमें तुम्हें अत्यन्त ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

३२ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर वेदव्यास मुनिसे यह वचन बोले, हे पितामह! हे तपोधन! मैंने राज्यलोभसे पुत्र, पौत्र, भ्राता, चचा, पितामह, गुरु, ससुर, मामा, भानजे स्वजन, सुहृद मित्र सम्बन्धी आदि तथा दूसरे बहुतेरे क्षत्रियोंका नाश किया है। और भी देखिये, कैसे दुःखका विषय है, कि जो सब राजा दोनों ओरकी सहायता करनेके वास्ते कुरुक्षेत्रमें आके उपस्थित हुए थे, उनके बीच एक भी पुरुष जीते जी घर न आसके, सब कोई रणभूमिमें मरकर यमलोकवासी हुए। हे महर्षि! आप केवल मुझे ही इन सब लोगोंके नाशकी जड़ समझिये। जो लोग सदासर्व्वदा धर्म्म और यज्ञके अनुष्ठानमें रत रहते थे, वैसे धर्म्मात्मा राजा और स्वजन-बान्धवोंको नाश करके इस पुरुषहीन पृथ्वीके राज्यको ग्रहण करनेमें मुझे कौनसा सुख मिलेगा? उन सम्पूर्ण श्रीमान् राजाओंसे रहित पृथ्वीकी दुर्दशाको बारम्बार विचारके मेरा हृदय अब भी रातदिन भस्म हुआ जाता है। विशेष करके भयङ्कर स्वजन-हत्या और दोनों ओरकी सेनाके अनगिनत पुरुषोंको मृत्युके मुखमें पतित होते देखकर मेरा चित्त किसी प्रकार भी शान्त नहीं होता है। हाय! इस कुरुक्षेत्रके युद्धमें जिनके पति, पुत्र और भाई मारे गये हैं; उन स्वजनहीन दीन वाराङ्गना स्त्रियोंकी इस समय कैसी दशा होगी; उसे मैं नहीं कह सकता हूं। वे सब स्त्रियें तनक्षीण और दीनभावसे युक्त होकर "क्रूर पाण्डवोंने वृष्णिवंशियोंके सङ्ग मिलके हमारे पति, पुत्र आदि आत्मीय पुरुषोंका वध किया है," ऐसे वचनोंको कहके हम लोगोंकी निन्दा करती हुई पृथ्वीमें गिरेंगी। वे सब स्त्रियें पिता भ्राता, पति और पुत्रोंके मुख न देखकर स्नेह-बन्धनसे युक्त होके शोकित तथा अत्यन्त दुःखित होकर प्राणत्यागके यमलोकमें गमन करेंगी; और धर्म्मकी जैसी सूक्ष्म गति है, उससे हम लोगोंको ही स्त्रीवधरूपी पापमें लिप्त होना होगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हमने जब राज्यलोभसे आत्मीय पुरुषोंका नाश करके बहुतसा पाप किया है, तब हमको शिर नीचा करके महाघोर नरकमें गमन करना पड़ेगा; इसमें कौन सन्देह कर सकता है? इससे हे ऋषिसत्तम पितामह! आप सब आश्रमोंके विशेष लक्षण मेरे समीप वर्णन कीजिये।

आपके उपदेशके अनुसार मैं कठिन तपस्या करके शरीर त्याग करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीवेदव्यास मुनि धर्मपुत्र युधिष्ठिरके ऐसे वचनको सुनकर निज-बुद्धि अनुसार समालोचना करके उनसे बोले, हे राजन्! तुम क्षत्रिय धर्मको स्मरण करके अपने हृदयके शोकको दूर करो। क्यों कि वे सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष निजधर्मके अनुसार युद्ध भूमिमें मारे गये हैं। वे सब कोई इस पृथ्वीपर महत् यश और परम सौभाग्यकी अभिलाषासे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे; परन्तु समय पूर्ण होनेसे ही वे लोग कालके वशमें होके प्राण-रहित होगये। तुम, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव, तुम लोग कोई भी उन लोगोंके मारनेवाले नहीं हो। पर्य्यायक्रमसे धर्म्मपूर्व्वक कालने ही उन लोगोंका प्राणहरण किया है। उस कालका कोई माता, पिता, भ्राता तथा अनुग्रहका पात्र नहीं है। जो सम्पूर्ण प्रजाके किये हुए कर्म्मोंका साक्षी है, उस ही कालके प्रभावसे युद्धमें प्रवृत्त हुए क्षत्रिय पुरुष मृत्युको प्राप्त हुए हैं, तब जो काल एक प्राणीको अन्य प्राणीके द्वारा नष्ट करता है वह केवल निमित्त मात्र समझा जाता है; और ऐसाही उसका नियत कार्य्य है।

हे महाराज! पुण्य पापके साक्षी स्वरूप कालको कर्म सूत्रात्मक समझनेसे अर्थात् जीवके किये हुए कर्म ही भविष्यमें सुख तथा दुःख रूपसे परिणत होते हैं; दूसरे ईश्वर जीवके किये हुए कर्मोंके फलको प्रदान करके शुभाशुभ कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होता। हे पाण्डुपुत्र! वे सब क्षत्रिय पुरुष जिन कर्म्मोंसे युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके नाशके मूल कारण उनके सम्पूर्ण कर्म्मों और अपने किये हुए तपस्या तथा व्रत आदि विषयोंको विचारके देखो। क्यों कि तुम अत्यन्त ही क्षमाशील और अजातशत्रु हो, तोभी पूर्व्व कर्मके प्रभावसे देवने स्वयं तुम्हें इस हिंसात्मक युद्ध कर्ममें प्रवृत्त कराके अनेक पुरुषोंका नाश कराया है। इस-से रस्सीकी भांति यह जगत् ईश्वरके वशमें होकर कालप्रेरित कर्मसे ही प्रवर्त्तित होता है। इस पृथ्वीपर प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशके विषयको विचार कर देखनेसे हर्ष वा शोक करना निरर्थक होता है। महाराज! तुम अब व्यर्थ शोक मत करो, बल्कि उन दुष्कर्म्मोंके निमित्त प्रायश्चित्तकी जैसी विधि है, उसका अनुष्ठान करना उचित है। पहिले देवासुर युद्धके विषयमें ऐसा सुना गया है, कि असुर जेठे और देवता लोग उनसे छोटे थे। राजलक्ष्मीके वास्ते देवता और असुरोंमें महाघोर भ्रातृ-विरोध उपस्थित हुआ; बत्तीस वर्ष पर्य्यन्त उन लोगोंमें महाभयङ्कर युद्ध होता रहा, अधिक क्या कहा जावे, समुद्रकी भांति उस समय पृथ्वी रुधिरसे परिपूरित होगई।

तिसके अनन्तर देवता लोगोंने दैत्योंको पराजित करके स्वर्ग लोकके राज्यको प्राप्त किया। उसी समय कितने ही वेद जाननेवाले ब्राह्मण पृथ्वीको पाके अभिमानसे मोहित होकर दैत्योंकी सहायतामें तत्पर होगये। हे भारत! वे अठासी हजार दुष्टात्मा पृथ्वीपर शालावृक नामसे विख्यात थे; वे लोग अपने मूर्खताके कारण देवताओंके हाथसे मारे गये। महाराज! पृथ्वी-मण्डलमें जो लोग धर्मको नष्ट करके अधर्मकी वृद्धि करते हैं; उन दुष्टोंका इस प्रकार नाश करना चाहिये, जैसे देवताओंने दैत्योंका नाश किया था। यदि एकके नाश होनेसे कुलभरकी आपद दूर होवे, तो अवश्य ही एकका नाश करना उचित है, यदि एक कुलके नष्ट करनेसे राज्य भरके सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा होती हो, तो उस कुल भरका नष्ट करनेसे भी धर्म नष्ट नहीं होता। हे राजन्! इसी भांति कोई कोई अधर्मके कार्य्य हैं, जो धर्म रूपसे परिणत होते हैं,

और कोई कोई धर्म्मके कार्य्य भी अधर्म्मरूपसे गिने जाते हैं; पण्डित लोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं। हे भारत! तुम सब शास्त्रोंके विषयोंको भली भांति जानते हो और देवता तथा पूर्व्व राजऋषियोंके आचरित प्राचीन मार्गके ही अनुगामी हुए हो; इससे अब शोक मत करो। तुम यह निश्चय जान रखो, कि तुम्हारे समान धर्म्मात्मा और सदाचारी पुरुष नरकमें कदापि गमन नहीं करते! इससे अब तुम इस समय अपने इन भाइयों और सुहृद पुरुषोंको धीरज धारण कराओ! जो पुरुष मनमें इच्छा करके पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और पाप कर्म्म करके कुछ भी पश्चाताप नहीं करते, वेही पुरुष सम्पूर्ण पापोंके भागी होते हैं, ऐसा वेदमें कहा है। ऐसे पापाचारी पुरुषोंके पापके प्रायश्चित्तकी विधि नहीं है, इससे उन पापियोंका पाप नहीं घट सकता, परन्तु तुम सदा धर्म्म कार्य्योंमें रत रहते हो और पाप कर्म्म करनेके वास्ते मनमें भी इच्छा नहीं करते, केवल दुर्य्योधन आदिके दोषने ही तुम्हें युद्ध करनेमें प्रवृत्त कराया था, और कार्य्य समाप्त करके पश्चाताप भी कर रहे हो, इससे तुम्हें प्रायश्चित्त करनेमें अधिकार है। हे महाराज! अश्वमेध नामक महायज्ञके अनुष्ठान करनेसे ही इसका प्रायश्चित्त कहा गया है, इससे तुम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। भगवान इन्द्रने देवताओंके सङ्ग मिलके बार बार दैत्योंका नाश करते हुए एक एक करके क्रमसे एक सौ अश्वमेध यज्ञोंको पूर्ण किया था इसहीसे वह शतक्रतु नामसे विख्यात हुए और पाप रहित होकर स्वर्गलोक जय और परम सुख प्राप्त कर सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए मरुद्गणके सहित स्वर्ग लोकके राजपद शोभित हो रहे हैं। देखो देवतोंके राजा शचिपति इन्द्र अप्सराओंके सहित महामहिमासे युक्त होकर किस प्रकार सुख पूर्व्वक स्वर्ग लोकमें विराजमान हैं। इस समय तुमने भी अपने पराक्रमसे सब राजाओंको पराजित किया है, और समस्त पृथ्वीपर भी तुम्हारा अधिकार हुआ है, इससे अब तुम सुहृद पुरुषोंके सङ्ग मिलके राज्य और युद्धमें मरे हुए राजाओंके नगरमें गमन करके उन लोगोंके पुत्र, पौत्र वा भ्राता जो कोई वर्त्तमान हों उन्हें उनके पैत्रक राज्यपर अभिषिक्त करो। यदि उन लोगोंके बीच कोई बालक हो, तौ भी सदाचार और शान्त वचनसे उन्हें राज्यपद पर प्रतिष्ठित करके सब प्रजाके मनको रञ्जन करते हुए पृथ्वीको पालन करो। जो राज्य एक बारगी राजपुत्रोंसे रहित होगये हैं, वहां पर यदि मृत राजाओंकी कन्या हों, तो उन्हें राज्यपर अभिषिक्त कीजिये; क्यों कि स्त्रियोंके पूर्ण मनोरथ होनेसे ही फिर उनके वंशकी वढ़ती होसकेगी; इसी भांति कार्य्य करनेसे तुम्हारा शोक दूर होगा। महाराज! तुम इसी भांति राजाके सब प्रजाको सुखी करते हुए असुरोंके नाश करनेवाले इन्द्रकी भांति अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें जो सब महात्मा क्षत्रियोंकी मृत्यु हुई है, उनके वास्ते शोक करना उचित नहीं है, क्यों कि वे सब वीर योद्धा कालके वशमें मोहित होकर क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार युद्धभूमिमें मारे गये हैं। इस समय तुमने क्षत्रियोंके यथार्थ धर्म्म और निष्कण्टक राज्य दोनों ही प्राप्त किया है, इससे निज धर्म्मके अनुसार राज्य शासन करो; ऐसा होनेसे ही परलोकमें तुम्हारा कल्याण होगा।

३३ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह, मनुष्यको कैसा कर्म्म करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है; और किन कार्य्योंके करनेसे वे लोग

उन पापोंसे छूट सकते हैं? आप यह वृत्तान्त मेरे समीप कहिये।

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, प्रतिसिद्ध और विहित कर्मोंके करनेवाले तथा जो वृथा कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे सब ही प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। ब्रह्मचारी पुरुष यदि सूर्य्यके उदय और अस्त होनेके समय शयन करते रहें तो उन्हें भी पापग्रस्त होना पड़ता है। कुनखी अर्थात् पूर्व्व जन्ममें जो पुरुष सुवर्ण चोरी किये रहते हैं, दूसरे जन्ममें उनके हाथ पांवके नख दूषित हो जाते हैं, इस लोकमें वेही पुरुष कुनखी कहके प्रसिद्ध हैं। पहिले जन्ममें शराब पीनेवाले पुरुषोंके दूसरे जन्ममें दांत काले हो जाते हैं; वे पुरुष श्यामदन्ती नामसे विख्यात होते हैं। जिस पुरुषका छोटा भाई अपना आगे विवाह करता है, वह जेष्ठ-परिवित्ति नामसे प्रसिद्ध होता है! परिवेत्ता अर्थात् जो पुरुष जेठे भाईके रहते हुए पहिले अपना विवाह करता है; जेठी बहिनके रहते छोटी बहिनका व्याह होनेसे उस छोटीके पतिका नाम दिधिषूपति कहके प्रसिद्ध होता है। छोटीका पहिले व्याह होनेसे उसकी जेठी बहिनको जो व्याहता है, वह पुरुष दिधिषूका उपपति कहके विख्यात होता है। अवकीर्णी अर्थात् व्रतभ्रष्ट ब्रह्मचारी, परिनिन्दक, द्विजातियोंके बध करनेवाले, सत्पात्रको वेद विद्या न देनेवाले और कुपात्रको वेद विद्या दान करनेवाले, ग्रामघाती मांस बेचनेवाले, अग्नि त्यागी ब्राह्मण, भृतिभोगी अध्यापक गुरुपत्नी घातक, वंश परम्परासे निन्दित पुरुष, यज्ञके अतिरिक्त वृथा पशुओंकी हिंसा करनेवाले घर जलानेवाले, चोरीसे जीविका निर्व्वाह करनेवाले, गुरुजनोंसे विरुद्धता करनेवाले और नियम उल्लङ्घन करनेवाले, ये सब पापग्रस्त पुरुष ही प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी हैं। हे कुन्तीनन्दन! इस समय अकार्य्य अर्थात् लौकिक और वेद विरुद्ध कार्य्योंको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। निज धर्म त्यागके पराये धर्म कार्य्योंका अनुष्ठान करना जो वस्तु मांगने योग्य न हों, उन्हें जांचना, अभक्ष वस्तुओंको भक्षण करना, शरणागतको परित्याग करना, सेवकोंका पालन न करना, रस, अर्थात् लवण तथा गुड़ आदि बेचना, पशु पक्षी, आदिका नाश करना सामर्थ रहते भी स्त्रीको गर्भधारण न कराना और प्रतिदिन देने योग्य गोग्रास आदि न देना, संकल्पकी हुई वस्तुकी दान न करना, और ब्राह्मणोंके ऊपर अत्याचार इन ऊपर कहे हुए कार्य्योंको धर्म जाननेवाले पुरुषोंने अकार्य्य कहके वर्णन किया है। जो पुत्र पिताके सङ्ग विवाद करते हैं, जो गुरु शय्या गामी हैं। और जो उचित समयपर निज स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न नहीं करते वे सब ही प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। महाराज! जिन कर्म्मोंके करने और जिनके न करनेसे मनुष्योंको प्रायश्चित्त करना पड़ता है, उसे मैंने संक्षेप और विस्तारके सहित तुम्हारे समीप वर्णन किया है, अब पाप कर्म करनेपर भी जिन कारणोंसे पापी नहीं होना पड़ता, उसे वर्णन करता हूं, सुनो।

वेद जाननेवाला ब्राह्मण भी यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्ध भूमिमें गमन करे; जो युद्ध करनेवाले ब्राह्मणोंका बध करनेपर भी ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! मैंने जैसी व्यवस्था कही है, वेदमें भी इस विषयका प्रमाण है। जो वेद प्रमाणसे युक्त और विहित धर्म कहके वर्णित है, वह मैं तुम्हारे समीप कहता हूं। निज वृत्तिसे भ्रष्ट आततायी ब्राह्मणका वध करनेसे मारनेवालेको जो ब्रह्महत्याके पापमें नहीं लिप्त होना पड़ता उसका कारण यही है कि उस आततायीका क्रोधही उसके वध करनेवाले पुरुषके क्रोध

करते हुए असूया-रहित होके निज दोष प्रकाशित करे और रात्रिके समय भूमिपर शयन करे,—इसी भांति नियम पूर्व्वक बारह वर्ष व्यतीत करनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। अथवा यदि इच्छा हो, तो व्यवस्था देनेवाले पण्डितके मतके अनुसार शस्त्रजीवी धनुर्द्धारी पुरुषके बाणका निशाना होकर प्राणत्याग करे; अथवा अवाकशिरा होके जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर देवे, अथवा किसी एक वेदमन्त्रको जपते हुए तीन सौ योजन मार्ग भ्रमण करके किसी तीर्थ स्थानमें उपस्थित होनेसे, वा वेद जाननेवाले ब्राह्मणको अपना सर्व्वस्व दान करनेसे; अथवा उस ब्राह्मणको जीवनके समय पर्य्यन्त अन्न वस्त्र और गृहदान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकता है। परन्तु यदि प्राण सङ्कटके समय गो ब्राह्मणकी रक्षा कर सके, तो उस ही समय ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो सकता है। यदि कृच्छ्र-भोजी होसके, अर्थात् पहिले तीन दिन सवेरे फिर तीन दिन सन्ध्याके समय और फिर तीन दिन तक बिना मांगी वस्तुओंका भोजन करना होगा और शेषके तीन दिनमें कुछ भी भोजन न करने पावेगा,—इसीको कृच्छ्र भोजन कहते हैं; इसी भांति नियम पूर्व्वक छः वर्ष बितानेसे पुरुष पापसे रहित हो सकते हैं। यदि प्रत्येक महीनेसे प्रथम सप्ताहमे सवेरे, दूसरे सप्ताहमें अयाचित भोजन करके चौथे, सप्ताहमें अनशन व्रत करे, तो तीन वर्षमें ही ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। यदि पहिले महीनेमें प्रातःकाल, दूसरेमें सन्ध्याके समय, तीसरेमें बिना मांगा हुआ भोजन करके चौथे महीनेमें उपवास व्रत करे,—तो क्रमसे एक वर्ष तक इसी भांति नियम पूर्व्वक रहनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष अपने पापसे छूटेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। और यदि महीने भरसे अधिक समय तक कुछ भी भोजन न करके केवल जल पीके प्राण धारण करके रह सके तो, इस प्रकार अनशन व्रत करनेवाला पुरुष शीघ्र ही अपने पापरहित होता है।

हे महाराज! ब्रह्महत्या वा चाहे किसी प्रकारके पापी क्यों न हों—दक्षिणा युक्त अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके अवभृत अर्थात् यज्ञके शेषमें स्नान करनेसे ही ऊपर कहे हुए सब पापोंसे मुक्त हो सकते हैं। महाराज! ब्रह्म-हत्या आदि अनेक भांतिके पापी जो अश्वमेध यज्ञ करनेसे पापरहित होसकते हैं, इसका वेदमें प्रमाण है। इसी भांति यदि ब्राह्मणके प्राण रक्षामें प्रवृत्त होकर युद्धमें मारा जावे तौभी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो सकता है, अथवा उत्तम ब्राह्मणको एक लाख गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है; परन्तु दूध देनेवाली पचीस हजार कपिला गऊ दान करे तौभी पापसे छूटेगा; और यदि किसी दरिद्र साधु पुरुषको आहारके अभावमें प्राण संशय उपस्थित हो, तो उस समयमें एक हजार बछड़ोंसे युक्त दुग्धवती गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा; परन्तु जितेन्द्रिय ब्राह्मणको केवल सौ काम्बोजदेशीय घोड़े दान करनेसे ही पापरहित होगा। यदि याचकको उसकी अभिलाषा अनुसार वस्तु दान कर सके और दान करके किसीके समीप प्रकाश न करे; तो एक पुरुषको दान देकर ही ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा। एक बार सुरापान करनेसे अनिवार्य सुरापान करे, तो इस लोक और परलोकमें आत्माको उत्तीर्ण कर सकेगा; अथवा जलरहित स्थानमें ऊंचे पहाड़के ऊपरसे गिरने, वा जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अथवा महाप्रस्थान-यात्रा अर्थात् केदाराचलपर गमन करके हिमालयमें अपनी प्राणरक्षा करनेके,भी सुरापानके पापसे शुद्धि लाभ होसकती है। सुरापान करनेवाला

आङ्गिरस बृहस्पतिसव नाम यज्ञके अनुष्ठानसे भी सुरापानके पापसे छूटके फिर ब्राह्मण-समाजमें मिल सकता है; ऐसा वेदमें वर्णित है। यदि प्रायश्चित्तके अनन्तर फिर सुरापानमें प्रवृत्त न होवे, तो मत्सरहीन होकर भूमिदान करनेसे ही पापरहित होसकेगा। गुरुस्त्री गमन करनेवाला पुरुष जलती हुई लोहयुक्त शिलासे लिपटके प्राणत्याग करे, तो उस पापसे मुक्त होसकता है; अथवा अपना लिङ्ग काटके ऊर्ध्वदृष्टि होकर परिव्राजक होनेपर भी गुरु-पत्नी गमनके पापसे निस्तार पा सकता है। किसी प्रकारके पाप क्यों न हों, शरीर त्याग करनेसे वे सब छूट जाते हैं, परन्तु जिन सब पापोंका वर्णन किया गया है, यदि स्त्रियां उन पापोंमें लिप्त हों, तो वे एकवर्ष पर्य्यन्त आहार-विहार आदि भोगोंको त्यागके इन्द्रिय संयम करनेसे ही पापरहित होसकती हैं। जो पुरुष महाव्रतके अनुष्ठान अर्थात् एक महीने पर्य्यन्त सब भोजन करनेकी वस्तुओंको और जल पीना भी परित्याग करे, तो वह सब पापोंसे मुक्त हो सकता है; और सर्व्वस्वदान करनेसे भी मुक्ति लाभ कर सकेगा। अथवा गुरुकी प्राणरक्षाके वास्ते युद्धमें मरनेसे भी पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होसकता है। गुरुके समीप मिथ्या व्यवहार वा अप्रिय कार्य्य करनेसे फिर उनके इच्छानुसार प्रिय कार्य्य करनेसे उस पापसे मुक्त होगा। यदि कोई पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत करनेवालोंका व्रत भङ्ग करे, तो उसे छः महीनेतक गायचर्म्म ओढ़के ब्रह्महत्याके समान व्रतका अनुष्ठान करने होगा, तब वह उस पापसे मुक्त होसकेगा। पराये धन और स्त्री हरनेवाले पुरुषको सात वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य व्रतका अनुष्ठान करना होगा, ऐसा करनेसे उसका पाप छूट सकता है; अथवा जिसकी जैसी वस्तु हरण करे, उसे उचित भांतिसे उपायसे वैसी ही वस्तु प्रदान करनेसे भी पापरहित हो सकता है। परिवेत्ता और परिवित्ति ये दोनों ही इन्द्रियसंयम करके बारह दिन प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करनेसे पवित्र हो सकेंगे। परन्तु परिवित्ति अर्थात् जेष्ठ भ्राता छोटे भाईके विवाहके अनन्तर स्त्रीका पाणिग्रहण करके यथानुष्ठान करे, तो उसे भी छोटे भाईकी भांति बारह दिनतक प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करके प्रायश्चित्त करना होगा; इसके अन्यथा प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ेगा; और परिवेत्ता अर्थात् छोटे भाईका जेष्ठ भ्राताकी प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर फिर दो परिग्रह करना होगा, इनके बिना उसको शुद्धि नहीं होसकेगी; इससे वह श्राद्ध आदि कर्म्मोंसे पितरोंका उद्धार भी न कर सकेगा। परन्तु इन परिवेत्ता आदिकोंकी प्रथम विवाहिता स्त्रियोंको पाप नहीं लगेगा, क्यों कि स्त्रियोंको पुरुष कृत पापोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें यदि स्त्रियोंसे कोई महापाप भी होजावे, तो अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले वस्तुओंके भोजनसे चातुर्मास व्रतका अनुष्ठान करनेसे ही वह पापरहित हो सकती हैं, धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने ऐसी ही विधि वर्णन की है। स्त्रियां यदि मन ही मन किसी पापाचरणके अनुष्ठानका सङ्कल्प करें, अथवा बिना जाने किसी पापाचारी पुरुषके सङ्ग व्यभिचारमें प्रवृत्त होवें, तो ऋतुकाल उपस्थित होनेसे वे भस्मसे मले हुए पात्रकी भांति शुद्ध होंगी। भोजन करनेके पात्र ब्राह्मण वा शूद्रोंके जूठे अथवा गौओंके सूंघनेपर पञ्चगव्य, मट्टी, जल, भस्म, खटाई और अग्नि,—इन दश वस्तुओंसे शुद्ध होंगे, ब्राह्मणोंको चतुष्पाद धर्म्मके अनुष्ठान करनेकी विधि है, क्षत्रियोंको त्रिपाद, वैश्यको द्विपाद और शूद्रको केवल एक पाद मात्र धर्म्मके अनुष्ठानकी विधि कही गई है। प्रायश्चित्तके विषयको भी धर्म्मानुष्ठानके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य आदि वर्णोंके

लाघव और गौरवके सहित विचारना उचित है। तिर्य्यग् योनि अर्थात् पशु पक्षियोंके वध करने तथा नाना भांतिके वृक्ष आदिकोंके काटने पर जन—समाजमें अपने किये हुए कर्म्मोंको प्रकाशित करते हुए तीन बार वायु पान करके रहनेसे ही पुरुष पाप रहित होंगे। अगम्यागमन करनेसे शरीरमें भस्म लगाके भीगे हुए वस्त्रसे अपने सब शरीरको ढांके पुनोको भस्म रूपी शय्या पर शयन और शतरुद्री पाठ करते हुए छः महीना बितानेसे उस पापसे मुक्त होंगे। परन्तु दृष्टान्त भूत शास्त्रमें कहे हुए हेतु-पूरित वचनोंके साथ वेद विहित वाक्योंको ऐक्यता करके सम्पूर्ण पाप कर्म्मोंके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी होगी, अर्थात् वेदमें यदि किसी स्थलमें प्रायश्चित्त आदिके विषयमें अस्पष्ट विधि हो, तो शास्त्रोंमें जिस स्थलमें उस विषयकी स्पष्ट विधि दीख पड़े; उसे युक्तिसे विचारके उस ही दृष्टान्तके अनुसार अस्पष्ट वेदविधिकी व्याख्या करके व्यवस्था देनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अज्ञानताके वशमें होकर कोई पापाचरण करे, तो वह राग द्वेष मान और अपमानसे रहित होके गायत्री मन्त्रका जप करे, पाप विशेषमें जितने दिनों तक व्रताचरण करना होगा, उतने दिनों तक प्रतिदिन अनावृत स्थलमें खड़ा रहे, रात्रिके समय कुशा पर शयन करे और दिनमें तीनबार तथा रात्रिके समयमें भी तीन बार तालावमें गमन करके वस्त्र सहित स्नान करे, स्त्री, शूद्र और पतित पुरुषोंके सङ्ग वार्त्तालाप न करे,—इसी भांति व्रताचरण कर-नेसे समस्त पापोंसे मुक्त होगा। मनुष्य पाप वा पुण्य जो कुछ करते हैं परलोकमें गमन करने पर अग्नि, जल और वायु आदि महा भूतोंके अधिष्ठाता देवता लोग उनके किये हुए सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म्मोंके साक्षी रहते हैं; इससे परलोकमें मनुष्योंको अवश्य ही शुभाशुभ कर्म्मोंके फलका भोगना पड़ता है। परन्तु पुरुषोंके किये हुए सत् अथवा असत् कर्म्मोंसे जब जिसकी अधिकता होती है, तब वह कर्म एक दूसरेको दबाके कर्त्ताको इस ही लोकमें फल देता है। जैसे सदा पापकर्म्मोंके अनु-ष्ठान करनेवाले पुरुषोंके पापकी अधिकता होकर शीघ्रही उसे पापका फल भोगना पड़ता है, वैसेही ज्ञानकी आलोचना, तपस्या और यज्ञानुष्ठानसे पुरुष पापरहित होके इस ही लोकमें शुभ कर्म्मोंके फलभागी होते हैं; इससे सदा पाप कर्म्मोंसे निवृत्त होके प्रति-दिन दान और शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करना उचित है; ऐसा करनेसे उस पुरुषको पाप-कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। हे महा-राज! जिन जिन पापोंकी कथा वर्णित हुई हैं उनके अनुरूप ही प्रायश्चित्तकी विधि कही गई; अब महा पातकके अतिरिक्त भक्ष्य, अभक्ष्य, पात्र और अपात्र इत्यादि नाना प्रका-रके विषयोंकी व्यवस्थाका वर्णन करता हूं, सुनो। यह जो ज्ञान और अज्ञान कृत पापोंकी विधि कही गई है, वह बालक और अत्यन्त मूर्ख तथा पशु तुल्य अन्त्यजजातिके निमित्त नहीं है; उसे श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए बुद्धिमान वा किञ्चित ज्ञानवान पुरुषोंके विषयमें ही सम-झना चाहिये। इसी भांति यदि बुद्धिमान पुरुष किसी पापकर्म्म करनेकी इच्छा करके उसके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं, तो वे अधिक पापी होंगे, और यदि अज्ञानताके कारण दैवी संयोगसे कदाचित पाप कर्म होजावे, तो वह उसकी लघुता समझी जाती है, इससे उसका प्रायश्चित्त भी थोड़ा होगा। जैसा पापाचरण होगा, उसके अनुरूप ही प्रायश्चित्त करनेसे वह पाप नष्ट होता है, परन्तु शास्त्रमें कही हुई ये सम्पूर्ण विधि नास्तिक और अश्रद्धावान पुरुषोंके सम्बन्धमें नहीं कही गई हैं; इन्हें श्रद्धावान और आस्तिकोंके विषयमें ही जानना चाहिये; क्यों कि शास्त्रमें दम्भ और द्वेषयुक्त पुरुषोंके विष-

उसमें कोई भी विधि नहीं देखी पड़ती; कारण शास्त्रमें शिष्टाचार ही धर्म करके वर्णित हुआ है; इससे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्तिकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषोंको इन्हीं शास्त्रोक्त विधिके अनुसार चलना उचित है। महाराज! मैंने तुमसे पहिलेही कहा है, कि क्षत्रियधर्म्म अथवा निज प्राण रक्षाके निमित्त महादुष्ट-पुरुषोंका वध करनेसे मारनेवालेको कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता, इस ही कारण तुम भी दुष्टात्मा कौरवोंका वध करनेसे पापी नहीं हुए। यह सब जानके भी यदि तुम्हारे चित्तकी ग्लानि नहीं दूर होती है, तो शास्त्रविधिके अनुसार प्रायश्चित्त करो, परन्तु जैसे अनार्य्य लोग मनके दुःखको न सहके आत्मघाती होते हैं, वैसे आचरण करनेमें तुम्हें कदापि प्रवृत्त होना उचित नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! धर्म्मराज युधिष्ठिर तपस्वी वेदव्यास मुनिके मुखसे इन सम्पूर्ण उपदेशयुक्त वचनोंको सुनके क्षणभर चिन्ता करके उनसे कहने लगे।

३५ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह! द्विजातियोंके निमित्त कौनसे अभक्ष्य और कौनसे भक्ष्य हैं? दोनोंमें कौनसा दान बड़ा है। और उसके पात्र तथा अपात्र कैसे हैं? उसे मेरे समीप प्रकाशित करके कहिये!

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, महाराज! इस विषयमें प्रजापति मनुसे सिद्ध तथा ऋषियोंसे एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनो। आदिकालमें किसी समय व्रत करनेवाले ऋषियोंने इकट्ठे होकर प्रजापति विभु भगवान मनुके समीप गमन करके धर्म्म विषयमें कई एक प्रश्न किये, उन्होंने कहा, हे प्रजापति! हम लोग किस प्रकार पात्रको अन्नदान करें? पवित्रता किस प्रकार होसकती है, दान, अध्ययन, तपस्या कार्य्य और अकार्य्य क्या है? इन विषयोंको आप हम लोगोंके समीप वर्णन कीजिये।

ऋषियोंके ऐसे वचन सुनके भगवान स्वयम्भू मनु बोले, हे ऋषि लोगो! तुम लोग संक्षेप और विस्तारके सहित यथारीतिसे धर्म्मकी कथा सुनो। जिन जिन स्थानोंमें पुण्यशीला नदियां बहती हैं और शास्त्रोंमें जिन देशोंके सम्बन्धमें कोई दोष नहीं वर्णित हुए हैं, बहुतसे साधु पुरुष जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, उन स्थानोंमें जप, होम, उपवास, आत्मज्ञानका विचार इत्यादि तपस्याके अनुष्ठानसेही लोगोंको पवित्रता होसकती है। ऊपर कहे हुए स्थानोंमें जप होम आदि शुभ कर्म्मोंके अनुष्ठानसे जिस प्रकार मनुष्योंकी पवित्रताका विषय वर्णित हुआ है, वैसे ही कई एक पापोंके फलकी विधिको पृथक् रूपसे वर्णन करनेकी सामान्यता समझके केवल सुवर्ण, आज्य प्राशन, स्वर्ण आदि पञ्च रत्नोंसे युक्त जलमें स्नान, देव स्थानोंके दर्शनको यात्रा तथा ब्रह्मगिरि आदि कई एक लोक पावन पर्व्वतोंके दर्शन इत्यादि कई एक वस्तुका ही पण्डितोंने सामान्य रूपसे अशुभ कर्म्मोंको नाश करनेवाली प्रायश्चित्तकी विधि कहके वर्णनकी है, उस विधिके अनुसार कार्य्य करनेसे पुरुष शीघ्र ही पाप कर्म्मोंसे मुक्त हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। बहुत दिनों तक जीवित रहनेकी आशा रहनेपर किसीको भी अवज्ञा करनी उचित नहीं है; यदि अज्ञानताके कारण ऐसा कार्य्य होजावे, तो उस दोषको दूर करनेके वास्ते तीन बार तप्तकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण न करना, दान, अध्ययन, तपस्या, अहिंसा, सत्य व्यवहार, क्षमा और देवताओंकी पूजा इत्यादि कई एकको धर्म्मका लक्षण जानना चाहिये। परन्तु इस प्रकारका

धर्म्म भी देशकालके अनुसार कभी कभी अध-र्म्मरूपसे गिना जाता है और पतिग्रह, मिथ्या व्यवहार और हिंसा आदि अधर्म्मके कार्य्य भी अवस्थाविशेष अर्थात् प्राणसंशय आदि स्थलोंमें धर्म्मरूपसे माने जाते हैं।

हे कुन्तीनन्दन ! बुद्धिमान पुरुषोंके सम्म-तमें धर्म्म और अधर्म्म यही दो प्रकारसे कहे गये हैं। वह धर्म्माधर्म्म फिर लौकिक और वैदिक मतके अनुसार शुभाशुभ और प्रवृत्ति निवृत्ति भेदसे दो दो अंशोंमें विभक्त है, उसमें प्रवृत्ति वैदिक और शुभाशुभ लौकिक है। प्रवृत्ति अर्थात् वेदविहित ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके अनुष्ठान,—इनके फल बारबार संसारमे जन्म और मृत्यु हैं और निवृत्ति मार्गका फल तत्वज्ञान तथा ब्रह्म प्राप्ति है। इसी भांतिसे लौकिकमें भी परोपकार आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे जनसमाजके बीच प्रशंसा और धर्म्मलाभ आदि शुभ फल मिलता है, और असत कार्य्य अर्थात् जनसमाजके बीच अत्याचार करनेसे जगत्में निन्दा होती और राजदण्ड आदि अशुभ फल मिलते हैं; इससे वैदिक मार्गकी भांति लौकिकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंके फलके अनुसार धर्म्माधर्म्म जानना चाहिये। दैव इच्छा, शास्त्रमे कहे हुए कर्म्म, निज प्राण-रक्षा, माता पिता, स्वामी आदि तथा पालन करनेवाला,—इनके अनुरोधसे अन्याय कार्य्य करनेसे भी शुभ फल मिलता है। परन्तु इस पृथ्वीके बीच जो श्येन यज्ञ आदि कर्म्मोंके फलकी भांति शीघ्र ही फलित होते हैं; अथवा जो उत्तर कालमें फलित होसकता, कहके सन्देहास्पद होगा, उसे केवल कालानुरोधसे किसी मनुष्यको लक्ष्य करके वैसा अनिष्ट कार्य्य करनेसे कर्त्ताको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। यदि कोई पुरुष क्रोध वा मोहके वशमें होके निज मनकी सन्तुष्टि वा असन्तुष्टि करनेवाले कार्य्यको करे, तो वह शास्त्रमे कहे हुए प्रमाण और युक्तिके अनुसार शरीरको सुखानेवाले उपवास आदि प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगा; अथवा हविष्यान्न भोजन, आत्माको पवित्र करनेवाले मन्त्रोंके जप और तीर्थाटन करनेसे भी उस पापसे मुक्त होसकेगा। राजा यदि अज्ञान और क्रोधके वशमें होकर दण्ड-चलावे, तो एकरात्रि और पुरोहित त्यागनेपर तीन रात्रि उपवास करके पवित्र होसकता है। कोई पुरुष यदि पुत्रादिकी मृत्युसे शोकित होके शस्त्र आदिसे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होके भी कृतकार्य्य न होसके, तो वह तीन दिन उपवास व्रत करनेसे आत्महत्या-प्रवृत्ति दोषसे मुक्त होगा, शास्त्रमें ऐसी ही विधि वर्णित है। जो लोग सब भांतिसे ब्राह्मण-त्वादि जातिधर्म्म, गृहस्थी आदि आश्रमोंके धर्म्म, देशाचार और कुलाचारको त्यागते हैं, उन लोगोंका प्रायश्चित्त करनेका अधिकार नहीं है।

हे ऋषिलोगो ! मैंने जो सब व्यवस्था कही है, उसे वैसे ही समझो; परन्तु धर्म्मविषयमें कोई संशय उत्पन्न होनेपर दश जन वेद शास्त्रोंके जाननेवाले अथवा धर्म्मशास्त्र जानने-वाले तीन पण्डित जैसी व्यवस्था दें, उसे ही धर्म्म कहके ग्रहण करना होगा। बेल, मिट्टी, विष, मलमूत्रके कीड़े, चींटी आदि द्विजातियोंके निमित्त अभक्ष्य हैं। शल्करहित मछली और कछुएके अतिरिक्त मेढक आदि चार पांववाले जलजन्तुओंका भक्षण भी निषेध है। जलमें तैरनेमें समर्थ बगुले, गरुड़, भास, बाज, कौवे, चकवे, मद्गु, गिद्ध हंस और उल्लू आदि पक्षी भक्षणीय नहीं हैं; इनके अतिरिक्त दांतवाले, मांसभक्षी और चार पांववाले पक्षी भी द्विजा-तियोंके अभक्ष्य जानो। जिनके दोनों ओर दांत हैं और चार दांतवाले पक्षियोंका मांस भी नहीं खाना चाहिये। मानुषी, हरिनी, उटनी, भेड़ी और गदही आदि पशुओंका दूध ब्राह्म-णोंको नहीं पीना चाहिये। नवप्रसूता गौका

दूध भी दसदिनके बिना बीते पीना उचित नहीं है। सन्धिनीका, नवप्रसूता स्त्रीका अथवा कृसर और दस दिनके बिना बीते नवप्रसूता गौके दूध-सेका बना कृसर पायस आदि भोजन करना उचित नहीं है। राजाके अन्नखानेसे तेज, शूद्रके अन्न भोजन करनेसे ब्रह्मवर्चस अर्थात् वेदाध्ययनकी प्रतिभा, स्वर्णकार और अवीरा स्त्रीके अन्न भोजन करनेसे आयु क्षीण होती है। वार्द्धुषिक अर्थात् ब्याज ग्रहण करनेवालोंका अन्न मलरूपी और गणिकाके अन्न खानेसे वीर्य्यह्रास होता है। जो निजपत्नी आदि दुश्चरित्रवाली स्त्रियोंके उपपतियोंको देखके क्षमा करते हैं और जो पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत हैं, उनका अन्न भोजन निषेध है। यज्ञके निमित्त पशु वध होते ही और होम आदिके बिना समाप्त हुए यज्ञ करनेवाले पुरुषका अन्न भोजन न करे। सोम रस बेचनेवाले, सूम, तक्ष, व्यभिचारिणी, चिकित्सा करनेवाले और नगर रक्षकका अन्न भी भक्षणीय नहीं है। इसी भांति परिवित्त, स्तुति करनेवाले और जुआरी पुरुषोंका अन्न भी नहीं ग्रहण करना चाहिये। गणान्न और ग्राम-दूषित पुरुषका भी अन्न ग्रहण करना उचित नहीं है। पर्य्युषित और बायें हाथसे ग्रहण किये हुए भोजनको खाना नही चाहिये जो मित्र आत्मीय पुरुषोंको न देकर अपने ही वास्ते खाने योग्य वस्तुओंको संग्रह करता है, उसका तथा सुरासे स्पर्श हुआ अन्न और जूठा भोजन नहीं करना चाहिये। पिष्टक, ऊखके रस और शाक बिगड़नेसे त्यागने योग्य हैं। सत्तू, अष्टयव और दहीसे युक्त सत्तू भी बहुत समय बीतने पर खाना उचित नहीं है। दूध युक्त पायस, कृशरान्न अर्थात् तिलयुक्त अन्न, पिष्टक और मांस देवताओंके निमित्त तैयार हुए हों, तो ग्रहण करना उचित नहीं है। हे महाराज! गृहमेधी ब्राह्मण आदि जो कुछ भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तु हैं, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया, परन्तु देवता, ऋषि, पितर, अतिथि और प्रात्यहिक गृह देवताकी पूजा अर्चना करके अनिषिद्ध वस्तुओंको भोजन करना उचित है। इसी भांति गृहस्थ मनुष्य प्रव्राजित चारों आश्रमोंकी भांति गृहमें ही पापरहित होके रह सकते हैं, अर्थात् स्त्रीके सहित ऊपर कहे हुए सदाचारसे युक्त होकर गृहस्थ पुरुष गृहस्थाश्रममें ही धर्म लाभ करनेमें समर्थ होंगे। धर्म्मात्मा पुरुषको यशकी अभिलाषा वा भयके कारण दान करना नहीं चाहिये। और नाचने गानेके व्यवसायी, भांड़, मतवाले उन्मत्त, चोर निन्दक, बहिरे, अङ्गहीन, बदसूरत, बौने, दुर्जन, नीचकुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुष, अपकारी और जो लोग ब्रह्मचर्य्य आदि व्रतोंसे हीन हैं, उन्हें दान देना उचित नहीं है। श्रोत्रियके अतिरिक्त वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको भी दान देना निषेध है, क्योंकि वैसा दान और प्रतिग्रह ग्रहण करना अन्याय कार्य्य कहा गया है, इससे वैसे दान देने और लेनेवाले दोनों ही अनर्थमें फंसते हैं। जैसे खदिर वा शिला ग्रहण करके समुद्र तरनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके सब उद्यम निष्फल होते और उन्हें अवश्य ही जलमें डूबना पड़ता है, वैसे ही दाता और ग्रहीता दोनों ही पापरूपी समुद्रमें डूबते हैं। भीगे काष्टकी अग्निकी भांति तपस्या स्वाध्याय और सच्चरित्रतासे हीन ब्राह्मणको तेजरहित जानना चाहिये; इससे ऐसे ब्राह्मणको दानदेना निष्फल है। जैसे कपाल पात्रमें स्थित जल और कुत्तेके चमड़ेमें रखनेसे दूध आधार दोषसे अपवित्र होता है, वैसेही सदाचार रहित ब्राह्मणोंके निकट वेदकी भी प्रतिभा नहीं प्राप्त होती। मन्त्रहीन, व्रत रहित, शास्त्र न जाननेवाले और असूयायुक्त लोगोंको केवल दयाके वशमें होकर दान दिया जा सकता है, अर्थात् दीन, भूखे, आतुर, मन्त्रहीन और व्रतहीन आदि मनुष्योंको दान देनेके समय "यह मिष्टा-

चार वा धर्म है ?,, ऐसा विचारके दान करना उचित नहीं है; उन्हें आक्षादिसे पीड़ित न करके केवल दया युक्त होके दान दिया जा सकता है; वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको दान देनेसे वह निष्फल हो जाता है,-ऐसा ही शास्त्रमें कहा गया है; विशेष करके अपात्रको दान देनेसे दान करनेवालेको पापमें फंसना होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। काठके बने हुए हाथी, चमड़ेसे बने हुए मृग और वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मण ये तीनों नाम मात्रके ही हैं; इनसे कोई भी कार्य्य पूर्ण नहीं हो सकता। जैसे नपुंसक पुरुषोंसे स्त्रियोंके और बन्ध्या स्त्रीसे पुरुषोंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते; उसी भांति वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मणोंसे भी मनुष्योंके कार्य्य नहीं पूर्ण होते। और पङ्खरहित पक्षी, शस्यहीन धान्य, जलरहित कूएं और मन्त्रज्ञानसे रहित ब्राह्मणोंको एक समान ही जानना चाहिये। अधिक क्या कहा जावे, भस्ममें आहुति देनेकी भांति मूर्ख ब्राह्मणको दान देना सब भांति निष्फल होता है। मूर्ख शत्रुस्वरूप है, क्यों कि वह अन्नापहारी और देवता पितरोंके उद्देश्यसे दिये हुए हव्य कव्यका नाशक है, इससे मूर्खको इस लोक और परलोकमें कहीं भी कल्याणकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! तुमने जो कुछ प्रश्न किये, मैंने संक्षेपसे उन सब प्रश्नोंका उत्तर यथा रीतिसे वर्णन किया है; यह महत् वृत्तान्त आर्य्योंको अवश्य सुनना चाहिये।

२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे ऋषि सत्तम भगवन्! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके सब धर्म विशेष करके राजधर्म और आपत्काल उपस्थित होने पर मनुष्योंको किस प्रकारकी रीति अवलम्बन करनी उचित है और धर्मयुक्त मार्गसे गमन करते हुए किस प्रकार पृथ्वी जय कर सकूंगा,— इस सम्पूर्ण वृत्तान्तको विस्तार पूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। भक्ष्याभक्ष्य और उपवास आदि महत् कौतूहलसे युक्त आपकी कही हुई प्रायश्चित्तकी कथा मेरे चित्तको अत्यन्त ही आनन्दित कर रही है। परन्तु राज्य पालन और धर्म आचरण इन दोनोंका आपसमें बड़ा विरुद्ध भाव है; इससे एक ही पुरुषके द्वारा ये दोनों आपसमें विरुद्ध भावोंसे युक्त कार्य्य कैसे अनुष्ठित हो सकते हैं? इस हीकी चिन्ता करके मेरा चित्त बार बार मोहित होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जन्मेजय! वेदवादियोंमें अग्रणी श्रीवेदव्यास मुनि धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचनोंको सुनके सम्पूर्ण ज्ञान तत्वके जाननेवाले प्राचीन ऋषि नारद मुनिकी ओर देखकर युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! यदि तुम्हें भली भांति सम्पूर्ण धर्म्म तत्व जाननेकी इच्छा हुई हो, तो तुम कुरुपितामह बूढ़े भीष्मके निकट गमन करो। धर्म्म रहस्यके विषयमें तुम्हारे चित्तमें जो कुछ सन्देह है, सब धर्म्मोंके जाननेवाले गङ्गानन्दन भीष्म तुम्हारी शङ्का दूर करनेमें समर्थ होंगे। महाराज! स्वर्ग लोकमें जो त्रिपथ गामिनी होके बहरही हैं, उसही गङ्गादेवीसे जिसकी उत्पत्ति हुई है उस गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मने इन्द्रआदि देवताओं और बृहस्पति आदि देवर्षियोंका प्रत्यक्ष दर्शन कर अनेक भांतिसे उनकी पूजा अर्चा करके सब राजनीति विद्या सीखी थी। दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य्य और देवतोंके गुरु बृहस्पति जिन सब शास्त्र और धर्म्मतत्वोंको जानते हैं, कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्मने उन दोनों महात्माओंसे वह सब विद्या प्राप्त की है। विशेष करके उस महाबाहु भीष्मने व्रत करके भृगुकुलनन्दन परशुराम, शुक्राचार्य्य, च्यवन और महात्मा वशि-

शुक्रके निकट साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़ा था। पहिले उन्होंने अध्यात्म विद्याके सारतत्त्वका जाननेवाले ब्रह्माके जेठे पुत्र महातेजस्वी सनत्कुमारके समीप सब अध्यात्मविद्या सीखी थी और मार्कण्डेय मुनिके मुखसे समस्त यतिधर्म्म भी श्रवण किया था। इसके अतिरिक्त उस पुरुषश्रेष्ठने इन्द्र और परशुरामजीसे सब अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या सीखी थी। जिन्होंने मनुष्य लोकमें जन्म लेकर भी इच्छामरण प्राप्त किया है; और अपत्यहीन होनेपर भी जिसके पुण्यका प्रभाव सब लोकोंमें विख्यात हुआ है, अधिक क्या कहा जावे, पवित्रात्मा ऋषि लोग जिसके निकट सभासद होकर विराजमान रहते थे, और ज्ञान तथा जानने योग्य वस्तुओंमें जिसे कुछ भी अविदित नहीं है, वही सूक्ष्म धर्म्म अर्थके तत्त्वको जाननेवाले धर्म्मज्ञान विशारद भीष्म तुम्हें धर्म्म उपदेश करेंगे; परन्तु उस महात्माके प्राणत्याग होनेके पहिले ही तुम उनके समीप गमन करो।

इतनी कथा सुनके महाबुद्धिमान दीर्घदर्शी राजा युधिष्ठिर ज्ञानियोंमें अग्रणी सत्यवती पुत्र भगवान वेदव्यास मुनिसे बोले, हे महर्षि! मैंने रोएंको खड़े करनेवाले अत्यन्त वृहत स्वजन-हत्या करके सब लोगोंके समीप पृथ्वीनाशक तथा अपराधी कहके गिना गया हूं, विशेष करके भीष्म पितामह रणभूमिमें सरल भावसे युद्ध कर रहे थे, तौभी मैंने कपट व्यवहारके सहित उनका वध कराया है, इससे अब मैं क्या कहके उनके समीप जाके धर्म्मविषयमें प्रश्न करनेमें समर्थ हूंगा?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके यदुकुल श्रेष्ठ महाबुद्धिमान श्रीकृष्णचन्द्र चारों वर्णोंकी प्रजाके हितकी अभिलाषा करके बोले, महाराज! बीते हुए शोकके विषयमें आपको अब बारबार अत्यन्त शोक प्रकाश करना उचित नहीं है। भगवान वेदव्यास मुनिने जो कुछ वचन कहे, उसके अनुष्ठानमें यत्नवान होइये। जैसे ग्रीष्मकालके अन्तमें जल चाहनेवाले प्राणी जलके निमित्त बादलोंकी उपासना करते हैं, वैसे ही आपके ये महाबलवान भाई और ब्राह्मणलोग आपकी उपासना कर रहे हैं, यह देखिये, युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजा और कुरु-जाङ्गलवासी राष्ट्रकी चारों वर्णोंकी सभामें एकत्रित हैं। इससे आप इन लोगों महात्मा ब्राह्मणों, हम सब कोई सुहृद मित्रों, द्रौपदीके अनुरोध और महातेजस्वी वेदव्यास मुनिकी आज्ञानुसार इस प्रियकार्य्यका अनुष्ठान कीजिये, हे शत्रुनाशन! आप यदि भीष्म पितामहके निकट उपदेश ग्रहण करेंगे, तो जगत्का कल्याण होगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषसिंह महाबुद्धिमान राजीवलोचन युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनके सबके हितकी इच्छा करके उठे, उन्होंने स्वद श्रीकृष्ण, अर्जुन महर्षि वेदव्यास और देवस्थान आदि ऋषियोंके विनीत वचनोंसे प्रबोधित होकर धीरज धरके अपना मानसिक दुःख सन्ताप परित्याग किया। पाण्डुपुत्र महायशस्वी राजा युधिष्ठिर वेदवाक्य तथा वेदोंके अर्थ विचारवाले ग्रन्थ तथा मीमांसा और नीतिशास्त्रके जाननेवाले थे; इससे उन्होंने वेद-शास्त्रके सब वचनोंको निश्चय करके अपने चित्तको शान्त किया; और नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति ऋषियों और भाइयोंसे घिरके अन्धराज धृतराष्ट्रको आगे करके हस्तिनापुर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। धर्म्म जाननेवाले कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिरने राज नगरीमें प्रवेश करनेकी इच्छा करके पहिले देवता और सहस्रों ब्राह्मणोंकी पूजा की। उस समय आज्ञा पाते ही उस ही स्थलमें शुभ लक्षणोंसे युक्त पाण्डुर वर्ण सोलह बैल जुते हुए उत्तम २ कम्बल और अजिनयुक्त एक सफेद रथ वहां

लाया गया अनन्तर पवित्र वेदमन्त्रोंसे वह रथ पूजित हुआ। तब राजा युधिष्ठिर इस प्रकार उस रथपर चढ़े, जैसे भगवान चन्द्रमा अपने अमृतमय रथपर चढ़ते हैं। रथपर चढ़नेके समय बन्दीजन चारों ओरसे राजा युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे। महापराक्रमी भीमसेनने उस रथके सारथी होके घोड़ोंकी बागडोर ग्रहणकी और अर्जुन मणि रत्नोंसे भूषित श्वेतछत्र ग्रहण करके राजा युधिष्ठिरके पीछे खड़े हुए।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उस रथके ऊपर मोतियोंकी माला शोभित जब उस श्वेतछत्रको ग्रहण करके महात्मा अर्जुनने धर्मराज युधिष्ठिरके सिरपर धारण किया, तब उस समय बोध हुआ, मानो आकाश मण्डलमें तारापुञ्जसे युक्त एक श्वेत मेघ उदित हुआ है, अनन्तर माद्रीपुत्र महावीर नकुल सहदेव चन्द्रकिरणके समान प्रकाशमान अनेक भांतिकी मणिरत्नोंसे भूषित दो सफेद चवंर ग्रहण करके दोनों ओर खड़े होकर डुलाने लगे। जिस समय उन पांचो भाइयोंने अनेक भांतिके आभूषणोंसे भूषित होकर रथपर चढ़के हस्तिनापुरकी ओर गमन किया, उस समय वह रथ सब प्राणियोंको पञ्चभूत मय देहकी भांति बोध होने लगा। अनन्तर युयुत्सु मनके समान वेगगामी घोड़ोंके रथपर चढ़कर महाराज युधिष्ठिरके अनुगामी हुए, और श्रीकृष्ण सात्यकिके सहित शैव्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त सुवर्णमय सफेद रथपर चढ़के कौरवोंके पीछे पीछे गमन करने लगे। अन्धे धृतराष्ट्र गान्धारीके सहित पालकीमें चढ़के धर्मराज युधिष्ठिरके आगे आगे गमन करने लगे। तिसके पीछे कुन्ती द्रौपदी और अन्य कौरवोंकी स्त्रियां नाना भांतिकी सवारियोंमें बैठके विदुरके सङ्ग चलीं।

अनन्तर भली भांति वस्त्र और भूषणोंसे भूषित रथी, गजपति, घुड़सवार आदि सेना उनके पीछे पीछे गमन करने लगी। उस समय वैतालिक और सूत, मागध, सुललित भाषामें स्तुति पाठ करते हुए राजाओंके संग हस्तिनापुरकी ओर गमन करने लगे। महाराज! राजा युधिष्ठिर इस ही भांति जब चतुरंगिनी सेना और स्वजनोंमें घिरकर गमन करने लगे, उस समय सब मार्गमें बहुत भीड़ इकट्ठी होगई और वे सब लोग आनन्दित और हर्षित होके आपसमें वार्त्तालाप करते थे; उससे उस समय में महाकोलाहल सुनाई देता था। पृथापुत्र राजा युधिष्ठिर नगरमें आवेंगे, इस समाचारको सुनके नगरवासियोंने पहिलेसे ही नगरको विधिपूर्व्वक सज्जित कर रखा था। उस समय नगरके बीच मार्गोंमें फूलोंसे सब भूमि इस प्रकार सजाई गई थी, कि सब मार्ग पुष्पमय बोध होते थे, उस समय सब राजमार्ग धूपदीपसे युक्त और ध्वजा पताकासे परिपूरित थे; राजनगरीमें रहनेवाले कर्म्मचारियोंने फूल माला तथा प्रियंग आदि सुगन्धित वस्तुओंसे गृहोंको सज्जित कर रखा था। नगरके दरवाजे तथा समस्त पुरवासियोंके द्वारपर जलयुक्त धातुके नवीन कलश दीख पड़ते थे; और जगह जगह सुन्दर अङ्गोंसे युक्त महासुन्दरी मनको हरनेवाली कन्यायें खड़ी की गई थीं। पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित पुरवासियोंके मङ्गलजनक वचन सुनते हुए ऊपर कहे हुए शोभासे शोभित और मङ्गल लक्षणोंसे युक्त नगरके भीतर प्रवेश किया।

३७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पृथापुत्रोंको नगरमें प्रवेश करते सुनकर अनगिनत पुरवासी उनके दर्शनकी लालसासे इकट्ठे हुए। उस समय राजमार्ग और चौतरे इस प्रकार शोभित हुए

थे, जैसे चन्द्रमाको देखके समुद्र उमड़ता है। राज मार्गके दोनों ओर नाना भांतिके अलङ्कारोंसे शोभित बड़ेर अटारियां स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण होकर इस प्रकार बोध होती थीं, मानो उनके भारसे छिल रही हैं। वे सब स्त्रियां लज्जासे युक्त तथा मृदुस्वरसे द्रौपदीको कहती थीं,—हे पाञ्चाली! हे कल्याणि! महर्षियोंकी उपासना करनेवाली गौतमीकी भांति तुम सदा सर्व्वदा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंकी उपासना करती हो, तुम्हारे व्रताचरण आदि सब कर्म्म अमोघ हैं; इससे तुम धन्य हो! ऐसा वचन कहके युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवकी भी प्रशंसा करने लगीं। उन लोगोंके उस प्रीति और प्रेमसे पूर्ण प्रशंसासूचक आपसकी वार्त्तालापसे वे सब अटारियां परिपूरित हो रही थीं। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने राजमार्गको अतिक्रम करके अनेक अलङ्कारोंसे भूषित राजपुरीमें प्रवेश किया। उस समय सब मनुष्य तथा पुरवासी लोग उनके सम्मुख उपस्थित होकर कहने लगे, हे शत्रुनाशन! हे राजेन्द्र! भाग्यसे ही आपने विजय लाभ करके फिर राज्य प्राप्त किया है; यह सब आपके धर्म्मप्रभावसे ही हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, इस समय आप हम लोगोंके राजा होकर देवराज इन्द्रकी भांति प्रजाको पालन करते हुए एक सौ वर्ष पर्य्यन्त राज्य भोग कीजिये, इसी प्रकार कानोंको सुख देनेवाले वचन सब कोई कहने लगे। श्रीमान् धर्म्मराज युधिष्ठिर राजनगरीके बीच प्रजाओंके मङ्गल मय वचनोंसे पूजित होके और ब्राह्मणोंके आशीर्व्वादको सुनते तथा पुरवासी और राजसेवकोंके जय शब्दसे सत्कृत होते हुए राजभवनकी बाहिरी कक्षामें प्रवेश करनेके अनन्तर रथसे उतरे और भीतर प्रवेश करके अनेक भांतिकी मणि रत्न और सुगन्धित पुष्पमालासे शोभित मन्दिरमें प्रतिष्ठित देवमूर्त्तियोंके दर्शन करके धूप दीप, फलपुष्प नैवेद्यसे उनकी पूजा की। तिसके अनन्तर मांगलिक वस्तुओंको हाथमें ग्रहण किये हुए कितने ही महात्मा ब्राह्मणोंका दर्शन किया। उस समय महायशस्वी राजा युधिष्ठिर आशीर्व्वाद देनेवाले ब्राह्मणोंके बीचमें घिरके इस प्रकार शोभित हुए, जैसे तारापुञ्जके बीचमें चन्द्रमा शोभित होता है अनन्तर उन्होंने गुरु धौम्य और जेठे पिता धृतराष्ट्रको सत्कृत कर ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके उन लोगोंसे कहने लगे, कि आप लोगोंकी क्या इच्छा है, आपकी क्या अभिलाषा है? इसी भांति प्रत्येक ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हुए बहुत सा सुवर्ण, रत्न, वस्त्र, मनोहर मोदक और गऊ दान कर हर एक ब्राह्मणको सन्तुष्ट करके उनकी पूजा की। उस समय सम्पूर्ण दर्शक तथा पुरवासी लोग उन बहुत ब्राह्मणोंके पदपदाक्षरोंसे युक्त मनोहर आशीर्व्वाद वचनोंको एकबारगी हंसनिनादकी भांति सुनने लगे। महाराज! सुहृदमित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाले उन पुण्यात्मा ब्राह्मणोंका अशीर्व्वाद शब्द एकबारगी इस प्रकार समुत्थित होकर ऐसा बोध हुआ, कि उस शब्दसे आकाशमण्डल गूंज उठा। उस समय अनेक पुरुषोंके जयजयकार, शङ्ख और नगाड़ोंके शब्द, मिलके तुमुल शब्द सुनाई देने लगा। कुछ समयके अनन्तर जब पुरवासी और ब्राह्मणोंका शब्द बन्द होकर सन्नाटा छागया, तब उस समय दुर्य्योधनका मित्र चार्व्वाक राक्षस मायाप्रभावसे रुद्राक्षकी माला, शिखा और त्रिदण्ड धारण कर भिक्षुक ब्राह्मणका वष बनाके उस स्थानमें आके उपस्थित हुआ। वह दुष्ट महात्मा पाण्डवोंके अनिष्टकी अभिलाषा करके लज्जा और भयरहित होकर राजाओंकी मण्डली तथा ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके किसीसे भी कुछ वार्त्तालाप न करके एकबारगी राजा युधिष्ठिरके समीप आके उनसे बोला,

महाराज! ये सब ब्राह्मण लोग जो मेरे ऊपर धिक्कार शब्दका प्रयोग कर रहे हैं, वह केवल आरोपित वचन मात्र है; प्रत्युत वे आपको कह रहे हैं, कि "तुम ज्ञाति हत्या करनेवाले, दुष्ट राजा हो, इससे तुम्हें धिक्कार है!" हे कुन्तीनन्दन! स्वजनोंका वध करके तुम्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसका कुछ भी प्रयोजन नहीं है; विशेष करके गुरुहत्या करने पर जीनेसे मरना ही उत्तम है। ब्राह्मण लोग उस दुष्ट राक्षसके वचनको सुनके अत्यन्त दुखित होके चिल्लाने लगे, उन ब्राह्मणोंने और स्वयं धर्म्मराजने भी लज्जासे अत्यन्त व्याकुल होकर कुछ समय तक शिर नीचा करके मौनावलम्बन किया। अनन्तर युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मण लोगो! मैं विनयपूर्व्वक आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूं, कि आप लोग मेरे ऊपर प्रसन्न होइये; मैं स्वयं सुख भोगके वास्ते राज्यग्रहणकी अभिलाषा नहीं करता हूं, परन्तु चिरकालसे दुःखित अपने इन भाइयोंके वास्ते राज्यग्रहण करता हूं; इससे आप लोग अब मेरे विषयमें धिक्कार प्रदान न कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ब्राह्मण लोग राजा युधिष्ठिरको कातरता युक्त वचन सुनके बोले, महाराज! हम लोगोंने ये सब वचन नहीं कहे हैं, वरन अब भी कहते हैं, कि आपकी श्री बढ़े। उन वेद जाननेवाले तपस्वी महात्मा ब्राह्मणोंने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहके उस कपट वेषवाले ब्राह्मणके विषयको जाननेकी कोशिश की, और ध्यानसे क्षणमात्रमें सब जान लिया; अर्थात् उसे चार्व्वाक राक्षस समझा। तब वे लोग युधिष्ठिरको सम्बोधन करके बोले, महाराज! हम लोगोंने कोई विरुद्ध वचन नहीं कहा, इससे आपका मानसिक शोक और दुःख दूर होवे, आप भाइयोंके सहित बहुत दिनों तक जीवित रहके परम सुखके सहित राज्य भोग कीजिये। इस दुष्टात्माको हमने ध्यानसे पहचान लिया है, यह दुर्योधनका मित्र चार्व्वाक नामका राक्षस है; दुर्योधनके हितकी अभिलाषासे परिव्राजक वेषसे आपके निकट आके तुम्हारे अनिष्टकी इच्छासे ऐसा वचन कह रहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उन सब पवित्रात्मा ब्राह्मणोंने राजा युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहते हुए अत्यन्त क्रोधित होकर उस पापाचारी राक्षसकी अनेक भांतिसे निन्दा करके हुङ्कारसे ही उसे भस्म कर दिया। तब चार्व्वाक राक्षस उस समय ब्राह्मणोंके तेज प्रभावसे इस प्रकार भस्म होगया, जैसे इन्द्रके वज्रप्रभावसे नवीन अंकुरोंसे युक्त वृक्ष भस्म होजाते हैं। जब ब्राह्मणोंने इस प्रकार राक्षसका नाश किया, तब धर्म्मराज युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित अत्यन्त आनन्दित होके उन महात्मा ब्राह्मणोंकी विधि पूर्व्वक पूजा की और ब्राह्मणोंने भी राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके अपने अपने स्थानोंपर गमन किया।

३८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सर्व्वदर्शी देवकीनन्दन जनार्द्दन कृष्ण भाइयोंके सहित बैठे हुए धर्म्मराजसे बोले, महाराज! इस पृथ्वीमण्डलके बीच ब्राह्मणोंकी ही सब भांतिसे पूजा करनी हम लोगोंको उचित है, क्योंकि ब्राह्मणोंके समीप सदा सर्व्वदा विनीत भावसे रहनेसे वे लोग प्रसन्न होके विनयी भक्तोंकी मङ्गलकामना सिद्ध करते हैं। जो दुष्टात्मा अभिमानसे मतवाले होके ब्राह्मणोंकी अवज्ञा करते हैं, वे उस ही समय उनके अव्यर्थ वचनकी अग्नि सदृश शापरूपी अग्निमें भस्म होजाते हैं; इस ही कारण ब्राह्मण लोग इस जगत्के बीच वाक्यबल और भूदेव कहके प्रसिद्ध हैं। महाराज! मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, सुनिये।

सतयुगमें चार्व्वाक राक्षसने बदरिकाश्रममें स्थित होके महाघोर तपस्या करके ब्रह्माको प्रसन्न किया था। जब पितामह ब्रह्मा वर देनेके वास्ते उसके समीप उपस्थित हुए उस समय उसने यह वर मांगा था, कि "किसी प्राणीसे भी मुझे भय उत्पन्न न होवे,"—जगत्पति ब्रह्माने उसकी प्रार्थना सुनके उसे वरदान किया, कि, "किसी प्राणीसे भी तुम्हें भय नहीं होगा, परन्तु ब्राह्मणोंको अवमान ना करनेसे उस ही समय तुम्हारी मृत्यु होगी।" वह पापी राक्षस ब्रह्माके समीप वर पाके अत्यन्त पराक्रमी तीव्र कर्म्म करनेवाला और महाबलवान होके इस जगत्के सब प्राणियोंको दुःखित करनेमें प्रवृत्त हुआ। देवताओंने क्रमसे चार्व्वाक राक्षसके उपद्रवसे आकुल तथा दुःखित हो ब्रह्माके निकट गमन कर उसके वधके निमित्त अनुरोध किया। उस समय अव्यय-देव ब्रह्माने उन देवताओंसे कहा, हे देवतो! शीघ्र ही उस दुराचारी राक्षसकी जिस भांति मृत्यु होगी, मैंने वह उपाय स्थिर कर रक्खा है, सुनो। मनुष्य लोकमें राजा दुर्य्योधन चार्व्वाक राक्षसका मित्र होगा उस ही मित्रता स्नेहसे बद्ध होकर वह ब्राह्मणोंका अपमान करेगा; उससे वाक्य बल सम्पत्तिसे युक्त ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके उस पापी चार्व्वाकको शाप-रूपी अग्निसे भस्म कर देंगे। उस समय देवता लोग ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके निश्चिन्त होके अपने स्थानोंपर गये। हे राजेन्द्र! इस ही कारणसे वह दुष्टात्मा चार्व्वाक राक्षस आज ब्राह्मणोंके तेजप्रभावसे भस्म होगया, इससे आप उसके वास्ते कुछ भी शोक न कीजिये और अपने मृत स्वजनोंके वास्ते भी अब आप चित्तको ग्लानियुक्त न कीजिये; क्यों कि वे वीरोंमें मुख्य महात्मा क्षत्रिय पुरुष युद्धमें मरके स्वर्गलोकमें गये हैं; इससे आप इस समय शत्रु जय, प्रजापालन और ब्राह्मणोंकी पूजा आदि अपने कर्त्तव्य कर्म्मोंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाइये।

३९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके वचनको सुनके मानसिक चिन्ता तथा दुःखको दूर किया और पूर्व्व ओर मुंह करके सुवर्णके आसनपर बैठे। शत्रुनाशन कृष्ण और सात्यकी राजा युधिष्ठिरके सम्मुखमें ही प्रकाशमान स्वर्णासन पर बैठ गये। महात्मा भीमसेन और अर्ज्जुन राजा युधिष्ठिरको बीचमें करके उनके बगलमें ही मणिरत्नोंसे जटित सुन्दर पीठासनोंपर बैठे; पाण्डवोंकी माता कुन्तीदेवी नकुल सहदेवको सङ्ग लेकर सुवर्ण भूषित हाथीदांतके सफेद आसनपर बैठीं। राजा दुर्य्योधनके पुरोहित सुधर्म्मा, पाण्डवपुरोहित धौम्य मुनि, राजा धृतराष्ट्र और विदुर आदि सब कोई अग्निके समान प्रकाशमान आसनोंपर पृथक् पृथक् बैठ गये। यशस्विनी गान्धारी, सञ्जय और युयुत्सु राजा धृतराष्ट्रके समीपमें ही बैठे। तिसके अनन्तर धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरने सफेद पुष्प, भूमि, सोना, चांदी, मणि, अक्षत और सब भांतिकी उत्तम वस्तुओंसे अङ्कित देवता पीठ आदि स्पर्श किया। उस ही समय सब प्रजा तथा पुरवासियोंने अनेक भांतिके मणि, रत्न मृत्तिका, सुवर्ण और अनेक भांतिकी माङ्गलिक वस्तुओंको ग्रहण करके पुरोहितके सङ्ग आके राजदर्शन किया। तिसके अनन्तर सोना, चांदी और काष्ठमय पृथ्वीकी मूर्त्ति, पूर्ण घड़े, फूल, लावा कुश, दूध, दही आदि वस्तु और पीपल पलाश, बेलख, आम तथा उदुम्बर आदि काष्ठोंके बने हुए श्रुवे सुवर्ण भूषित शङ्ख, और मधु, घृत आदि सम्पूर्ण माङ्गलिक वस्तु उस स्थलमें लाके रक्खी गई। अनन्तर पाण्डवोंके पुरोहित बुद्धिमान धौम्य

मुनिने श्रीकृष्णकी सम्मतिसे पूर्व्व और उत्तर भागमें क्रमसे नीची करके सब शुभ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर वेदी तैयार करके उसके निकटमें हो जलती हुई अग्निके समान दृढ़ चरण अर्थात् पायासे युक्त ऊपरके हिस्सेमें व्याघ्र चर्म्मसे भूषित सुवर्ण सर्व्वभद्र नाम आसन पर राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीको बैठाकर विहित मन्त्रोंको उच्चारण करते हुए आगमें आहुति देनेमें प्रवृत्त हुए। होमकार्य्य समाप्त होनेपर श्रीकृष्णने उठके लोकपूजित शङ्ख ग्रहण करके कुन्तीनन्दन पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरको अभिषिक्त किया। अनन्तर कृष्णकी आज्ञासे राजा धृतराष्ट्र और सब प्रजा जल लेके राजा युधिष्ठिरके ऊपर अभिषेचन करनेमें प्रवृत्त हुई; परन्तु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित पाञ्चजन्य शङ्खके जलसे अभिषिक्त होकर अत्यन्त दर्शनीय हुए। उसही समय ढोल नगाड़े आदि बाजा बजने लगी।

तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने प्रजाके दिये हुए उपहार आदि ग्रहण करके बहुतसा धन देकर उन लोगोंको सत्कृत किया, और वेद पढ़नेवाले श्रुति तथा शीलसे युक्त स्वस्ति-वाचक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्णमुद्रा दान किया। ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्व्वक हंसकी भांति मधुर शब्दसे जय हो; जय हो; स्वस्ति स्वस्ति;—हे महाबाहो! भाग्यसे हो तुम्हारी विजय हुई है, हे महा तेजस्विन्! तुमने प्रारब्धहीसे पराक्रम द्वारा क्षत्रिय धर्म्म लाभ किया है; प्रारब्धसे हो गाण्डीव धनुर्धारी अर्ज्जुन, भीम, नकुल सहदेव और तुम शत्रुओंको पराजित करके वैसे भयङ्कर संग्रामसे मुक्त हुए हो; इस समय अब जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म करना बाकी है, उसके अनुष्ठानमें शीघ्र प्रवृत्त हो आओ। इसी भांति आशीर्व्वाद युक्त वचन कहते हुए सब कोई राजा युधिष्ठि-रकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगी। धर्म्मराज युधिष्ठिरने उन साधुओंसे इस प्रकार पूजित होकर सुहृदोंके सहित बहुत बड़ेभारी राज्य भारको ग्रहण किया।

४० अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर प्रजा और ब्राह्मणोंके देश-कालके अनुसार सब वचन सुनके बोले, हे ब्राह्मण लोगो! पाण्डुपत्र धन्य है, क्योंकि चाहे सत्य हो, चाहे मिथ्याही हो. आप लोग उप-स्थित होके उनके गुणोंको वर्णन कर रहे है। विशेष करके आप लोग जब मत्सरताहीन होके हम लोगोंको गुण-सम्पन्न कहते है, तब यह बोध होता है कि हम निश्चय ही आप लोगोंके कृपापात्र है। देखिये, ये जो हमारे जेठे पिता महाराज धृतराष्ट्र है. वह हम लोगोंके पास देवता स्वरूप हैं, इससे आप लोग यदि मेरे प्रियकार्य्य तथा कल्याणके अभिलाषो हैं, तो इनके प्रियकार्य्योंके करनेमें नियुक्त रहि येगा। अधिक क्या कहें, मै जा इस प्रकार स्वजनोंको मारके भी अबतक जोवन धारण कर रहा हूं, वह केवल आलस रहित होके इनको सेवा टहलके निमित्त हो समझियेगा। मैं यदि आप लोगों और सुहृद पुरुषोंका कृपा पात्र होऊं, तो आप लोग धृतराष्ट्रके सङ्ग पहि-लेकी हो भांति व्यवहार कीजिये। ये हमारे, आपके और जगत्के स्वामी है, यह सब पृथ्वी और पाण्डव लोग इनके अधीन हैं। मैंने जो कुछ कहा, आप लोग मेरे उस वचनको स्मरण रखियेगा।

राजा युधिष्ठिरने इसी भांति ब्राह्मणोंके समीप धृतराष्ट्रको "राजा" कहके सबको विदित करके ब्राह्मणोंको निज निज स्थानोंपर जानेके वास्ते बिदा किया। तिसके अनन्तर उन्होंने पुरवासी तथा जनपदवासी सब प्रजाको बिदा कर राजकार्य्यमें प्रवृत्त होके प्रीति पूर्व्वक

भीमसेनको युवराज किया। मन्त्र निश्चय, शत्रु-ओंके सङ्ग सन्धि स्थापन, युद्धके निमित्त यात्रा, शत्रु ता करके निवास, दोनों ओर सन्धि करना और किला आदिक वा किसीका आश्रय ग्रहण करना इत्यादि राज्य-रक्षाके विषयमें ऊपर कहे हुए छः उपायोंके विचारके निमित्त बुद्धिमान विदुरको नियुक्त किया; कर्त्तव्या-कर्त्तव्य विषयों और आय व्ययके विचारके निमित्त सब गुणोंसे युक्त वृद्ध सञ्जयको नियत किया। सेनाका परिमाण, उन्हें अन्न और वेतन देने तथा सेनाके सब कार्य्योंको देखनेके निमित्त नकुलको नियुक्त किया और दुष्टोंके दमन तथा शत्रु राज्य आक्रमणका भार अर्ज्जुनको सौंपा। प्रात्यहिक ब्राह्मणों और देव कार्य्योंका भार निज पुरोहित धौम्य मुनिको सौंपा! केवल सहदेवको सर्व्वदा अपने समीपमें रहनेके निमित्त आज्ञा दी, क्योंकि धर्म्मराज हर समय सहदेवसे रक्षित होना कर्त्तव्य कार्य्य सब भांते थे। पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरने इसके अतिरिक्त जो कार्य्य जिस पुरुषके योग्य समझा अत्यन्त प्रीतिके सहित उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त कर दिया।

तिसके अनन्तर धर्म्मात्मा धर्म्मात्मा शत्रुना-शन राजा युधिष्ठिर महाबुद्धिमान् विदुर और युयुत्सुसे बोले,—हमारे जेठे पिता राजा धृत-राष्ट्रको जब जिस कार्य्यकी आवश्यकता होगी, उस ही समय आप लोग स्वयं उठके आलस रहित होकर उन कार्य्योंको पूरा कीजियेगा। और नगर तथा जनपदवासी प्रजाके सम्बन्धमें जो कुछ कार्य्य उपस्थित होगा, उसे महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने अपने कार्य्यभा-रके अनुसार पूर्ण कीजियेगा।

४१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उदार बुद्धिसे युक्त राजा युधिष्ठिरने कुरुक्षेत्रके युद्धमें मरे हुए स्वजनोंका फिर पृथक् रूपसे श्राद्ध कराया और अन्धे राजा महायशस्वी धृतराष्ट्रने भी अपने पुत्रोंके श्राद्धमें अन्न, रत्न और गौ आदिक सब वस्तु इच्छानुसार ब्राह्मणोंको दान किया; विशेष करके धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरने द्रौपदीके सहित एकत्रित होके महात्मा द्रोणाचार्य्य, कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, हिडिम्बापुत्र घटो-त्कच, द्रौपदीके पांचो पुत्र और परम हितैषी राजा विराट आदि मृत सुहृद मित्रोंके श्राद्धमें हर एकके नामसे एक एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराके उन्हें धन रत्न, वस्त्र और गऊ आदि दान किया। इसके अतिरिक्त जिन राजा-ओंके पुत्रादि तथा इष्टमित्रोंमें किसीको जीवित नहीं देखा, उनके श्राद्ध करनेके अनन्तर हर एकके नामसे एक एक धर्म्मशाला, तालाव, कूआं आदिक खुदवाके उनके वंशधर पुत्र पौत्रोंके करने योग्य कार्य्यको पूर्ण किया। वह इसी भांति आत्मीय और मृत सुहृद पुरुषोंके श्राद्ध आदि, कार्य्य समाप्त करके उनके ऋण तथा लोकनिन्दासे रहित होके कृतार्थ हुए, और धर्म्म पूर्व्वक प्रजा पालन करते हुए पहिलेकी भांति राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी विदुर आदि पूजनीय कौरवों और मुख्य मुख्य पदोंपर प्रति-ष्ठित सेवकोंको अत्यन्त सम्मानके सहित प्रति-पालन करने लगे। जो सब स्त्रियां स्वामी और पुत्ररहित होकर वहां पर निवास करती थीं, कुरुराज युधिष्ठिर कृपापूर्व्वक अत्यन्त सम्मानके सहित उनका भरण पोषण करने लगे। अन-न्तर उन्होंने कृपाके वशमें होकर अन्धे, लूले, लङ्गड़े और दीन दुःखियोंको घर, वस्त्र और भोजनकी सामग्री प्रदान करके कृपा प्रकाशित की। इसी भांति राजा युधिष्ठिर पृथ्वी विजय करके शत्रुओंके निकट अऋणी हुए, और निष्कण्टक तथा सुखी होकर राज्य-भोगमें प्रवृत्त हुए।

४२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मराज युधिष्ठिर फिर राज्य पाकर तथा राज्यपद पर अभिषिक्त होके हाथ जोड़के शुद्धभावसे पुण्डरीकाक्ष दाशार्ह कृष्णसे बोले। हे शत्रुनाशन! हे यदुकुल सिंह कृष्ण! हमने तुम्हारे ही बल, बुद्धि, नीति और पराक्रमके प्रभाव तथा तुम्हारीही प्रसन्नतासे पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यको फिर पाया है। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम्हें बारम्बार प्रणाम है। सब शास्त्र तुम्हें अद्वितीय पुरुष सात्वत पुरुषोंकी गति स्वरूप कहके वर्णन करते हैं। द्विज लोग यत्नपूर्व्वक तुम्हारे विविध नामोंका उच्चारण करते हुए तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं। तुम ही पुरुषोत्तम, विष्णु, जिष्णु, कृष्ण वैकुण्ठ, विश्वात्मा और जगतके उत्पन्न करनेवाले हो; इससे हे विश्वकर्म्मन्! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हींने सप्तधा अदितिके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है और पुराणोंमें तुम ही प्रश्निगर्भ कहके विख्यात हो पण्डित लोग तुम्हें त्रियुग कहके वर्णन करते हैं। तुमही शुचिश्रवा अर्थात् पुण्यकीर्त्ति, हृषीकेश, घृतार्च्चि: (यज्ञेश्वर) हंस, त्रिनेत्र, शम्भु, विभु और दामोदर नामसे वर्णित होते हो। तुम वाराह, अग्नि, सूर्य, वृष भध्वज, गरुडध्वज, अनकिसाह (शत्रु सेना विमर्दी) पुरुष (जीव) शिपिविष्ट (सर्व्वान्तरव्यापी) उरुक्रम, वरिष्ठ, उग्रसेनानी, देवसेनानी, सत्य, राजसनि (अन्नप्रद) हो। तुम स्वयं अच्युत और शत्रुओंके नाश करनेवाले हो। तुम संस्कृति (ब्राह्मण रूप) और विकृति (अनुलोम प्रतिलोम जाति रूप) हो। तुम श्रेष्ठ, ऊर्द्धवर्त्मा, अद्रि, वृषदर्भ और वृषाकपि हो। तुम ही सिन्धु, विधर्म्मा (निर्गुण) त्रिककुत त्रिधामा, त्रिदिवाच्युत (अवतीर्ण मूर्त्ति) हो। तुम ही सम्राट्, विराट, स्वराट, सुरराज, भवकारणविभू, भू, (सत्वी रूप) अभिभू (अशरीर) कृष्ण, कृष्णात्मा, स्विष्टकृत् (अभिलाष पूर्ण करनेवाले,) भिषजावर्त्त (दोनों अश्विनीकुमारोंके पिता सूर्य्य) हो, तुम ही कपिल, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड़ और यज्ञसेन नामसे विख्यात हो। तुम ही सिखण्डी, नहुष, बभ्रु (महेश्वर) दिवस्पृक्, पुनर्व्वसु नाम नक्षत्र सुवभ्रु, (अत्यन्त पीतवर्ण) उक्थ यज्ञ, सुषेण, दुन्दुभि, गभस्तिनेमि, श्रीपद्म, पुष्कर, पुष्पधारण ऋभु, विभु और सर्व्वसूक्ष्म हो, वेदमें तुम्हारे ही चरित्रोंके विषय गाये जाते हैं। तुम अम्भोनिधि, ब्रह्मा, पवित्र धाम, धामवित् हो; श्रुति तुम्हारे ही नामको हिरण्यगर्भ कहके तुम्हारे महात्म्यका वर्णन करती है। तुम ही स्वाहा, स्वधा और केशव हो; तुम ही इस जगतके कारण और प्रलयस्वरूप हो; हे कृष्ण! पहिले ही तुम इसको सृष्टि करते हो। हे विश्वयोनि! हे शार्ङ्गपाणि! हे खड्गपाणि! चक्रपाणि! यह संसार तुम्हारे वशमें स्थित है, इससे तुम्हें नमस्कार है।

यदुकुल शिरोमणि कमल नेत्र कृष्णने इसी भांति सभाके बीच पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिरके स्तुतियुक्त वचनोंसे सत्कृत तथा पूजित होके अत्यन्त प्रीतिके सहित उचित वचनोंसे उन्हें भी आनन्दित किया।

४३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने सभामें स्थित पुरुषोंको विदा किया, उन लोगोंने अपने गृहोंकी ओर गमन किया। तब वह महापराक्रमी, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवका धीरज देके आदर पूर्व्वक यह वचन बोले, हे भरतश्रेष्ठ! तुम लोग महासंग्राममें शत्रुओंके अस्त्रोंसे क्षत-विक्षत शरीरसे युक्त होकर थक गये हो, विशेष करके तुम लोगोंने राजपुत्र होकर भी मेरे वास्ते बहुत दिनोंतक वनवासकर क्रोध और शोकसे दुःखित होके साधारण पुरुषोंकी भांति अनेक क्लेश सहे; इससे

आज रात्रिको अपनी इच्छानुसार विश्राम-सुख अनुभव करो। अब तुम लोगोंकी बुद्धि प्रकृतिस्थ और तुम्हारी थकावट दूर हो, तब तुम लोग प्रातःकाल फिर आके मेरे निकट उपस्थित होना। धर्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंका ऐसी आज्ञा देकर राजा धृतराष्ट्र की अनुमतिसे अनेक मणि रत्नोंसे शोभित, दास दासियोंसे युक्त दुर्य्योधनका घर भीमसेनको समर्पण किया; उन्होंने इन्द्रके वैजन्तपुरी प्रवेश करने की भांति उस गृहके भीतर प्रवेश किया। अनन्तर प्रासादमाला शोभित सुवर्णके तोरणोंसे युक्त दुर्य्योधनके भवन समान ही अनेक धन-धान्य और दास दासियोंसे पूरा दुःशासनका गृह महाबाहु अर्जुनको समर्पण किया। तिसके अनन्तर बनवास क्लेशसे दुःखित नकुलको मणि रत्नोंसे युक्त कुवेर गृहके समान दुःशासनके गृहसे भी श्रेष्ठ दुर्म्मर्षणके गृहको अत्यन्त प्रीतिके सहित प्रदान किया। प्रिय कार्य्योंके करनेवाले सहदेव सुवर्ण भूषित, पद्मपत्रनयनाख्यो और उत्तम शय्या तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे भूषित दुर्म्मुखका उत्तम गृह पाके कैलासधाममें वासस्थान पाये हुए कुवेरकी भांति आनन्दित हुए। विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, राजपुरोहित धौम्य और सुधर्म्मा आदिने अपने अपने गृहोंमें गमन किया। जैसे शार्द्दूल पर्व्वतकी कन्दरामें प्रवेश करता है, वैसे ही पुरुषसिंह श्रीकृष्णने सात्यकिके सहित अर्जुनके गृहमें प्रवेश किया। उन सभोंने उन गृहोंमें अन्न आदिक खाने पीनेकी वस्तुओंसे तृप्त होकर परम सुखसे रात्रि बिताई और भोरके समय फिर सब कोई स्नान आदिसे निवृत्त होके राजाके समीप सभामें उपस्थित हुए।

४४ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्रर्षि! महाबाहु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर जो कुछ कार्य्य किये और त्रिलोक गुरु भगवान कृष्णने उस समय जो कुछ कार्य्य किया हो; उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कृष्णके सहित पाण्डवोंने जो कुछ कार्य्य किये, मैं वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनिये। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर चारों वर्णकी प्रजाको निज निज धर्म्ममें स्थापित कर, एक हजार महात्मा स्नातक ब्राह्मणोंको एक एक सहस्र स्वर्णमुद्रा दान करके फिर अनुजीवी सेवकों और उस समय वहांपर इकट्ठे हुए अतिथियोंको तृप्त किया; अधिक क्या कहा जावे, उन्होंने कृपण और विरुद्ध मतावलम्बी पुरुषोंकी भी अभिलाषा पूरी करनेमें त्रुटि नहीं की। महायशस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिरने निज पुरोहित धौम्य मुनिको दश हजार गऊ और सोना, चांदीसे युक्त अनेक भांतिके मणिरत्न तथा वस्त्र आदि प्रदान करके कृपाचार्य्यको पहिलेकी भांति अपना गुरु नियत किया; परन्तु विदुर और धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सुको विशेष रूपसे सम्मानित किया। दान देनेवाले पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने आश्रित सब पुरुषोंको ही भोजन, पान, शयन, आसन और वस्त्र आदिसे सन्तोषित किया। उन्होंने नगरनिवासियोंको प्रसन्न करके प्राप्त हुए राज्यमें शान्ति स्थापित किया, और धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा विदुरको सब राज्यभार सौंपके निश्चिन्त होकर सुखपूर्व्वक निवास करने लगे। अनन्तर सवेरा होनेपर राजा युधिष्ठिरने हाथ जोड़के महात्मा कृष्णके समीप गमन किया। उन्होंने वहां जाके देखा, कि दिव्य आभूषणोंसे भूषित, पीताम्बरधारी, नीलमणिके समान तेजसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णजड़ित मणिके समान प्रकाशमान शरीरसे प्रज्वलित होके सुवर्ण-मणि भूषित बृहत् शय्याके ऊपर बैठे हैं; उनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणिसे इस

प्रकार शोभित होरहा था, जैसे उदय हुए सूर्य्यके सहित उदयाचल पर्व्वत शोभित होता है। महाराज! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं दीख पड़ती, जिससे श्रीकृष्णचन्द्रके उस समयके शोभाकी उपमा होसके। उस समय धर्म्मात्मा युधिष्ठिर पुरुषविग्रह महात्मा विष्णुके समीप पहुंचके हंसकर मधुर वचनसे कहने लगे। हे पुरुषोत्तम! हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! सुखपूर्व्वक रात्रि बीती है न? इस समय तुम्हारी बुद्धि पहिलेकी भांति स्थिर और प्रसन्न तो है? हे त्रिविक्रम भगवान! तुम्हारी कृपासे ही हम लोगोंने फिर राज्य पाया तथा सब पृथ्वी भी हमारे वशमें हुई है; तुम्हारे प्रसादसे ही हम लोग क्षत्रिय धर्म्मसे भ्रष्ट नहीं हुए, तुम्हारी कृपासे ही हमारी युद्धमें विजय हुई और उत्तम यश प्राप्त हुआ है। शत्रुनाशन युधिष्ठिर इसी भांति स्तुति कर रहे थे, तोभी श्रीकृष्ण भगवानने कुछ भी उत्तर नहीं दिया; क्यों कि उस समय वह ध्यानमें प्रवृत्त थे।

४५ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे अमित पराक्रमी! आज मैं यह कैसा आश्चर्य देख रहा हूं, तुम ध्यानमें प्रवृत्त हुए हो? हे देव! तुम तुरीय ध्यानपथ (जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत स्वरूप अवस्था) अवलम्बन करके स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंसे अपक्रान्ति होकर स्थित होरहे हो, उसे देखके मेरा मन विस्मित होता है। देख रहा हूं कि तुमने प्राण आदि पञ्च कर्म्म निर्व्वाहक शरीरस्थ प्राणवायुको निरोध किया (रोका) है; हे गोविन्द! तुमने सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करके मनके बीच स्थापित किया है और वाक्य तथा मनको बुद्धिमें लीन किया है। शब्द आदि पञ्च-विषय अपने अपने आधारके आसरे स्थित हैं। तुम्हारे शरीरके सब रोएं और मन बुद्धि स्थिर भावसे स्थित हैं, इससे तुम काष्ठ वा शिलाकी भांति चेष्टारहित होरहे हो। हे भगवन! जैसे दीपशिखा वायुरहित स्थानमें स्थिरताके सहित जलती रहती है, अथवा जैसे पत्थर एक ही स्थलमें पड़ा रहता है, वैसे ही तुम भी आज चेष्टा रहितके समान दीख पड़ते हो। हे देव! यदि यह गोपनीय न होवे और मैं सुननेका पात्र होऊं, तो यह प्रार्थना है, कि आप मुझ शरणागतके इस संशयको दूर कीजिये। हे धार्म्मिकप्रवर! हे पुरुषोत्तम! तुम क्षर, अक्षर कर्त्ता और अकर्त्ता हो। तुम अनादि और मृत्यु से रहित हो, और तुम ही आदि पुरुष हो। मैं तुम्हारा शरणागत भक्त शिर झुकाके तुम्हें प्रणाम करता हूं, कि आप इस ध्यानके यथार्थ कारणको मेरे समीप प्रकाशित कीजिये; उस समय इन्द्रके भ्राता श्रीकृष्ण भगवान् मन बुद्धि और इन्द्रियोंको पहिलेकी भांति निज निज स्थलोंमें स्थापित करके हंसकर धर्म्मराज युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! शान्त होनेवाली अग्निकी भांति तेजस्वी शरशय्यापर स्थित पुरुषसिंह भीष्म मेरा ध्यान कर रहे हैं, उसी कारण मैं भी उनके ध्यानमे प्रवृत्त था। जिन्होंने स्वयम्बरके बीच अपने तेजके प्रभावसे सब राजाओंको पराजित करके तीनों कन्याओंको हरण किया, जिसके वज्र समान धनुषटङ्कार और तलत्राणके शब्दको इन्द्र भी नहीं सह सकते थे; जिन्होंने तेईस दिनोंतक भृगुकुल शिरोमणि परशुरामके सङ्ग युद्ध किया था; परशुराम जिसे किसी प्रकार पराजित करनेमें समर्थ नहीं हुए; जिसे गङ्गादेवीने निज-गर्भमें धारण किया और वशिष्ठ मुनिने अपना शिष्य बनाया था, जिस महातेजस्वीने बुद्धि-प्रभावसे सब दिव्य अस्त्रोंकी विद्या और सांगोपांग चारों वेदोंको पढ़ा था। हे महाराज!

वही परशुरामके प्रिय शिष्य सब विद्याके आधार स्वरूप भीष्म मन और सब इन्द्रियोंको संयम करके एकाग्रचित्तसे मेरे शरणागत हुए हैं; उसी कारण मैं भी उनके ध्यानमें प्रवृत्त हुआ था। उस धर्म्मात्मा भीष्मकी भूत-भविष्य और वर्त्तमान कालके सब विषयोंका ज्ञाता समझियेगा। महाराज! पुरुषशार्दूल भीष्म जब अपने कर्म्मके प्रभावसे शरीरको त्याग कर स्वर्ग लोकमें गमन करेंगे, तब यही पृथ्वी चन्द्रमासे हीन होकर रात्रिके समान बोध होगी; इससे आप महापराक्रमी गङ्गानन्दन भीष्मके समीप उपस्थित होके धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यज्ञादिक और चारों आश्रमोंके धर्म्म तथा निखिल राजधर्म्म और इसके अतिरिक्त जो कुछ पूछनेकी इच्छा हो, वह सब पूछिये। महाराज! कौरवकुल धुरन्धर भीष्मके परलोक गमन करनेके अनन्तर पृथ्वीसे सब ज्ञान शास्त्र इकबारगी लुप्तसे होजायेंगे, इसी कारण मैं आपको उन महात्माके समीप जानेके वास्ते कहता हूं।

धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके सारगर्भ उत्तम बचन सुनके धीमे स्वरसे बोले, हे कृष्ण! आपने भीष्मके प्रभाव विषयक जो कुछ बचन कहे उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है, मैंने भीष्मके प्रारब्ध और प्रभावकी कथा पहिले महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे अनेक बार सुनी है, विशेष करके सब लोगोंके कर्त्ता होकर जब तुम भी उनकी प्रशंसा कर रहे हो; तब उसमें सन्देह ही क्या है। हे मधुसूदन! यदि मेरे ऊपर आपकी अत्यन्त कृपा प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई हो, तो तुम स्वयं हमको अपने सङ्ग भीष्मके समीप ले चलो। हे यदुनन्दन! कुरुकुल शिरोमणि भीष्म सूर्य्यके उत्तरायण होने पर शरीर त्याग करेंगे, इससे उन्हें दर्शन देना आपका कर्त्तव्य है। हे भगवन्! तुम आदि देव, क्षर; अक्षर ब्रह्ममय और परमनिधि हो, इस आसन्नमृत्युके समय पितामह एकबार तुम्हारा दर्शन करें, यही मेरी इच्छा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मधुसूदन कृष्णने धर्म्मराज युधिष्ठिरके बचनको सुनके समीपमें ही स्थित सात्यकिसे कहा तुम शीघ्र ही मेरे रथको सज्जित करो; इतना बचन सुनते ही सात्यकि उसी समय वहांसे उठके दारुक सारथीके निकट जाके यह बचन बोले, तुम शीघ्र ही श्रीकृष्णके रथको सज्जित करो। अनन्तर दारुकने सात्यकिके बचनको सुनते ही सुवर्ण-भूषित बहुतसे मरकत, चन्द्रकान्त, सूर्य्यकान्त मणिमय सुवर्ण भूषित चक्र-सहित सूर्य्य किरणके समान प्रकाशमान शीघ्रगामी, मध्यभागमें अनेक भांतिके मणि रत्न सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित, शत्रुओंको दुःखित करनेवाले, मनके समान वेगपूर्व्वक गमन करनेवाले शैव्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त अनेक भांतिकी पताका और गरुड़ ध्वजासे शोभित उत्तम रथको सज्जित करके हाथ जोड़के श्रीकृष्णचन्द्रसे निवेदन किया।

४६ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे ऋषिवर! पितामह भीष्मदेवने शरशय्या पर स्थित होके किस प्रकार योग अवलम्बन करके शरीर त्याग किया था, आप उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! तुम पवित्र और एकाग्र चित्त होकर भीष्मके शरीर त्यागनेके विषयको श्रवण करो। जब सूर्य्य दक्षिणायन मार्गसे उत्तरायण गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। तभी भीष्म पितामहने स्थिर होके अपना चित्त, आत्मामें लगाया। महाराज! उस समय भीष्मदेव महात्मा ब्राह्मणोंके बीचमें स्थित और अनेक बाणोंसे परिपूरित शरीरसे इस प्रकार शोभित हुए, जैसे किरण-

धारी भगवान सूर्य शोभित होते हैं। उस समय वेद जाननेवाले व्यासदेव, देवऋषि नारद महात्मा देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्त, जैमिनि महात्मा पैलशाण्डिल्य, देवरात, धीमान् मैत्र, असित वशिष्ठ, महात्मा कौशिक हारीत, लोमश, बुद्धिमान अत्रिय, बृहस्पति, शुक्राचार्य, महामुनि च्यवन, सनत्कुमार, कपिल वाल्मीक, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य भृगुनन्दन परशुराम, महामुनि तृणबिन्दु, पिप्पलाद, वायु, सम्वर्त्त पुलह, कठ, काश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतमकुलमें उत्पन्न हुए महामुनि, गालव, धौम्य, विभाण्ड, माण्डव्य धौम्र कृष्णानुभौतिक, महर्षि उलूक, महामुनि मारकण्डेय, भास्करी, पूरण, कृष्ण, परम धार्म्मिक सूत,—ये सम्पूर्ण ऋषि तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे श्रद्धा दम और शमसे युक्त महा तपस्वी महात्मा मुनियोंसे घिरकर पुरुषसिंह भीष्म इस प्रकार शोभित हुए, जैसे नक्षत्रोंके बीच भगवान चन्द्रमाकी शोभा दीख पड़ती है। अनन्तर वह पवित्र भावसे हाथ जोड़के कर्म्म, मन और वचनसे एकाग्रचित्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करने लगे; और हृष्ट-पुष्ट स्वरसे मधुसूदन कृष्णकी स्तुति करने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! बोलनेवालोंमें मुख्य परम धर्म्मात्मा भीष्मने जिस प्रकार हाथ जोड़के पद्मनाभ योगीश्वर विष्णु, जिष्णु, जगत्पति श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुतिकी थी। मैं उसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये।

भीष्म बोले, हे पुरोषत्तम! तुम पवित्र और शुचिपद हो, तुम पारमेष्टपद, प्रजापति और आत्मस्वरूप हो, इससे मैं अब तुम्हारेमें चित्त समर्पण करके एकान्त भावसे तुम्हारी उपासनाका अभिलाषी होकर जो कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं, आप उस संक्षेप और विस्तार युक्त मेरे कहे हुए वचनोंके दोषोंको त्यागके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। आदि अन्त रहित परब्रह्मके स्वरूपको ठीक सब लोकोंके रचनेवाले भगवान विधाता नारायण हरि ही जानते है; इनके अतिरिक्त देवता वा ऋषि कोई भी उनके रूपको नहीं जान सकते। नारायणकी कृपासे ही देव गन्धर्व, यक्ष, राक्षस सर्प, सिद्ध और देवऋषि लोग उस सनातन परमेश्वरको परम अव्यय मानते हैं; परन्तु कोई भी यह नहीं जानते कि "ये कौन हैं, कहांसे किस प्रकार ये भगवान हुए है!" जिस अविनाशी ब्रह्ममें जगत्के सम्पूर्ण प्राणी प्रलय कालके समय इस प्रकार लीन होजाते है, जैसे धागेमें मालाकी मणियें गुथी रहती हैं; यह जगत् जिस विश्वाङ्ग जगत कर्त्ता नित्यपुरुषके रूपमें स्थित है, ऋषि लोग जिसे सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष, सहस्र चरण सहस्र बाहु, सहस्र मुकुट, सहस्र शरीरोंसे प्रकाशमान, जगदाधार नारायण देव, सब सूक्ष्म वस्तुओंसे सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुरु पदार्थोंसे भी गुरुतर और उत्तम वस्तुओंसे भी श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं। जो वाक्, अनुवाक् निषत्, उपनिषत् और सत्य स्वरूप है; जिसकी सामवेदके बीच सत्य और सत्यकर्म्मा आदि नामोंसे स्तुति होती है। साधक लोग ब्रह्म, जीव, मन, अहंकार इन चारों अध्यात्मतत्वोंके वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार परमगुह्य दिव्य नामोंका उच्चारण करके सदा बुद्धिसे अभिव्यक्त और भक्तोंके ईश्वर जानके जिनकी पूजा अर्चा किया करते है; तथा जिसकी प्रीतिके निमित्त स्वधर्म्मरूपी तपस्याका अनुष्ठान करते हैं; जिसकी कृपासे आचरित तपका प्रभाव चित्तमें आके उपस्थित होता है; मैं उस चैतन्य स्वरूप, सर्व्वज्ञ, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्व्वेश्वर भगवानका शरणागत हुआ हूं। दो अरणीकी अग्निकी भांति जो भगवान पृथ्वी, ब्राह्मण, वेद और यज्ञ रक्षाके निमित्त वसुदेव देवकीसे उत्पन्न हुए हैं;

और योगी लोग एकाग्रचित्त होकर सब वासना त्यागके एक मात्र मोक्षपदके निमित्त जिसकी उपासना करते हुए निज आत्मामें ही जिस स्वरूपका दर्शन करते हैं, मैं उसही निर्म्मल ज्योतिस्वरूप सर्व्वेश्वर गोविन्द कृष्णको शरण हूं। जो निज तेज प्रभावसे सूर्य्य, कर्म्मसे वायु और इन्द्रको अतिक्रम करके विद्यमान है; मैं उसही बुद्धि तथा मन आदि इन्द्रियोंसे अतीत परमात्माको शरण हूं, जो पुराणमें पुरुष, युगादिकोंमें ब्रह्म और प्रलय समयमें सङ्कर्षण नामसे वर्णित हैं, मैं उसी उपास्य देवकी उपासनामें प्रवृत्त हुआ हूं। जो एक होकर भी अनेक रूप दीख पड़ते हैं, और कर्म्म योगी पुरुष अनन्य भक्तिसे युक्त होकर जिसकी उपासना करते रहते हैं, मैं उसी सर्व्व कामप्रद भगवानकी शरण हूं ज्ञानी लोग जिसे जगतकोष कहते हैं, यह सब प्रजा जिसके रूपमें स्थित है और जलमें तैरने वाले हंस तथा कारण्डव आदि पक्षियोंकी भांति सब प्राणी जिसकी चैतन्य सत्तासे चेष्टमान होते है, देवता और ऋषि लोग भी जिसके स्वरूपको नहीं जान सकते; मैंने उसी आदि अन्त, मध्य अवस्था और सत् असत्से रहित सत्य स्वरूप, एकाक्षर परब्रह्म परमेश्वरका आसरा ग्रहण किया है। देवता, असुर, सिद्ध, गन्धर्व्व, सर्प और ऋषि लोग सदा स्थिरभावसे जिसकी उपासना किया करते है; जो भव रोगके छुड़ानेमें परम वैद्यस्वरूप है; मैं उसी अनादि अविनाशी, नेत्र आदि इन्द्रियोंके अगोचर सर्व्वकारण, सनातन, रमात्म स्वरूप सर्व्व, शक्तिमान नारायण हरिके शरणागत हुआ हूं। वेद जिसको जगत्कर्त्ता, स्थावर जङ्गमात्मक जगत्के पालक, सर्व्वाध्यक्ष, अक्षर और परमाधार करके वर्णन करते हैं; जिन्होंने एक होकर भी दैत्योंको नाश करनेके वास्ते अदिति गर्भसे बाहर अंशोंमें विभक्त होकर अवतार लिया था; उस हिरण्यवर्ण सूर्य्यमूर्त्ति परमात्माको नमस्कार करता हूं। जो अक्षय अन्धकारसे अतीत स्वयं ज्योतिस्वरूप तथा सब स्थानोंमें पूर्ण हैं; जिसे जाननेसे ही साधक लोग जन्म मृत्युसे छूटकर परम पद पाते हैं, उस ज्ञेयरूप परमात्माको नमस्कार है। जो अमृतसे शुक्ल पक्षमें देवतों और कृष्णपक्षमें पितरोंको तृप्त करता है और जगत्में द्विजराज नामसे प्रसिद्ध है; उस सोममूर्त्ति परमात्माको नमस्कार है। ऋषिलोग जिसे उक्थके बीच बहुच और अग्निहोत्र आदिक महायज्ञोंमें अध्वर्य्यु नामसे वर्णन करके सामगान करते हैं; उस देवात्मक पुरुषको नमस्कार है। ऋक् यजु और साम ये तीनों वेद ही जिसके धाम है, जो जव, दधियुक्त सत्तू, परिवाप, पुरोडाश और दूध यही पञ्च हविरात्मक है जो वेदके बीच गायत्री आदि सात छन्दोंसे विस्तृत हुआ है, उस यज्ञात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो "आश्रावय" आदि सप्त दश अक्षरोंसे अग्निमें होम होता है, उस होमात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो वेद पुरुष और यजु नामसे विख्यात है, गायत्री आदिक छन्द ही जिसके शाखाके अवयव हैं, ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंसे युक्त यज्ञ ही जिसका मस्तक है और वृहत रथान्तर ही जिसकी प्रीतिस्वरूप है; उस स्तोत्रात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो सर्व्वज्ञ पुरुष प्रजापति आदिकोंके सहस्र वर्ष यज्ञ करनेके अनन्तर यज्ञमें हिरण्यपक्ष युक्त हंसरूपसे उत्पन्न हुए थे; उस हंसरूपी परमात्माको नमस्कार है। वैदिक पद ही जिसके अङ्ग, सन्धि आदिक अंगुली स्वर और व्यञ्जन ही जिसके भूषण हैं, तथा वेदके बीच जो दिव्य अक्षर करके वर्णित हुआ हैं; उस वागाधिष्ठात्री परम देवताको नमस्कार है। जिन्होंने तीनो लोकोंके हितकी अभिलाषासे यज्ञमें वाराहमूर्त्ति धारण करके रसातल में गई हुई पृथ्वीका उद्धार किया था, उस वीर्य्यात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो योगनिद्रा

अवलम्बन करके सहस्र फणोंसे युक्त नाग भूषित शय्यापर शयन करते हैं ; उस निद्रात्मक पुरुषको नमस्कार है । जो वाक् आदि इन्द्रियोंको जीतकर मोक्षके कारण वेदमें कहे हुए उपायसे साधुओंको संसारके दुःखोंसे छुड़ाके मुक्त करता है ; उस सत्यात्माको नमस्कार है । हर एक पृथक् पृथक् धर्म्म अवलम्बन करनेवाले पुरुष इच्छानुसार विविध फलोंको अभिलाषासे जिसकी पूजा किया करते हैं, उस धर्म्मात्माको नमस्कार है । जिससे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती हैं और जो सबके शरीरमें स्थित काममय देह अर्थात् मनके उन्मादजनक है ; उस कामात्मा पुरुषको नमस्कार है । महर्षि लोगोंने जिस अव्यक्त पुरुषको देहके बीच स्थित क्षेत्रज्ञ कहके निश्चय किया है ; उस क्षेत्रात्माको नमस्कार है । चैतन्य और नित्य स्वरूपसे स्थित रहनेपर भी साङ्ख्यवादी जिसे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्था, एकादश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत आदि सोलह गुणोंसे युक्त, उदारतनु, सबह सङ्ख्यात्मक कहके वर्णन करते हैं ; उस संख्यात्मा पुरुषको नमस्कार है । जितेन्द्रीयोगी पुरुष निद्रा और श्वासवायुको जीतके जिस ज्योतिरूपका हृदयमें दर्शन करते हैं ; उस योगात्माको नमस्कार है । पाप पुण्यसे पर, शान्त सन्न्यासी लोग आवागमनसे छूटकर जिसे पाते हैं, उस मोक्षात्माको नमस्कार है । जो दिव्य परिमाणसे सहस्र युगोंके अन्तमें जलती हुई शिखासे युक्त अग्निरूपसे सब भूतोंको भक्षण करता है, उस घोरात्माको प्रणाम है । जो सब वस्तुओंको भक्ष और जगत्को एक समुद्रमय करके एक मात्र बालक रूपसे निद्रित होता है ; उस मायात्मक पुरुषको प्रणाम है । पुष्कर-लोचन अजेय नाभीस्थलसे जो कमल उत्पन्न होता है, जिससे जगत् प्रतिष्ठित हुआ है, उस पद्मात्माको प्रणाम है । समुद्रके समान चार भांतिके काम जिसके प्रभावसे नष्ट होते हैं, उस अनगिनत सिर और असंख्य योगात्मक पुरुषको नमस्कार है । जिसके केशोंमें सम्पूर्ण बादलोंके समूह, अङ्गसन्धियोंमें नदियां और हृदयमें चार समुद्र स्थित हैं, उस जलमय पुरुषको प्रणाम है । जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति और मृत्युरूपी विकार उत्पन्न होता है, और महाप्रलयके समय जिसमें सम्पूर्ण जगत्के प्राणी लीन होते हैं, उस कारणात्माको नमस्कार है । जो प्राणियोंकी निद्रित अवस्थामें भी जागता रहता है ; और कर्त्ता न होनेपर भी स्वप्नावस्थामें कर्त्ताकी भांति बोध होता है ; परन्तु यथार्थमें वह प्राणियोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंका द्रष्टामात्र है ; उस साक्षीस्वरूप चैतन्य पुरुषको नमस्कार है । जो किसी कार्य्यमें शोकित नहीं होता और धर्म्म-कार्य्यके निमित्त उद्यत रहता है, उस सर्व्वत्र पूर्ण वैकुण्ठरूपी कार्य्यात्मक पुरुषको प्रणाम है । जिसने क्रुद्ध होकर इक्कीस बार युद्धभूमिमें धर्म्म-मर्य्यादा उलङ्घन करनेवाले क्षत्रियोंका नाश किया था, उस क्रूरात्माको प्रणाम है । जो प्राण आदि पांच अंशोंमें विभक्त होके शरीरस्थ वायुरूपसे प्राणियोंको चैतन्य करता है ; उस वायुमय पुरुषको प्रणाम है । जो युग युगमें योगमायासे मत्स्य, कूर्म्म, वराह आदि रूपोंको धारण करके अवतार लेता है और महीना, ऋतु, अयन तथा वर्ष आदि रूपसे उत्पत्ति, स्थित और प्रलयके कार्य्योंको पूर्ण करता है, उस कालरूपी पुरुषको नमस्कार है । ब्राह्मण जिसके मुख, क्षत्रिय जिसकी दोनों भुजा, वैश्य जिसके उरुस्थल और शूद्र जिसके दोनों चरणोंके आसरेसे प्रकट होके स्थित हैं, उस वर्णात्मा पुरुषको प्रणाम है । स्वर्ग जिसका सिर, अग्नि, मुख, आकाश नाभी, सूर्य्य नेत्र, दिशा कान और पृथ्वी जिसका चरण है, उस सम्पूर्ण लोकमय पुरुषको प्रणाम है । जो कालसे भिन्न सम्पूर्ण यज्ञोंके अधिष्ठाता देव

हिरण्यगर्भसे भी श्रेष्ठ हैं, जो स्वयं अनादि और अनन्तका आदि पुरुष है; उस विश्वात्माको नमस्कार है। राग द्वेषसे युक्त अज्ञानी लोग शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें वर्त्तमान श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका अनादर करके, जिसे विषय, गोप्ता समझते हैं; उस गोप्तृस्वरूपी परमात्माको नमस्कार है। जो अन्न, पान और इन्धनरूपसे शारीरक रस और बलको बढ़ाता है, तथा जो सब प्राणियोंको धारण कर रहा है; उस प्राणमय पुरुषको नमस्कार है। जो प्राणियोंके प्राणधारणके निमित्त चारों प्रकारके अन्नोंको भोजन करता है, और शरीरके भीतर प्रवेश करके उन भोजन किये हुए चारों भांतिके अन्नोंको परिपाक करता है; उस पाकात्मक पुरुषको नमस्कार है। जिसके जटा और नेत्र पिंगलवर्ण और दांत तथा नख जिसके शस्त्र हैं; उस दुर्ज्जय दैत्यनाशक नृसिंह रूपधारी परमात्माको नमस्कार है। जिसे देवता दानव, यक्ष गन्धर्व आदि कोई भी यथार्थ रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, उस सूक्ष्मात्माको प्रणाम है। जो सर्व्वशक्तिमान सर्व्वव्यापक भगवान रसातलमें प्रवेश करके सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रहे हैं; उस वीर्य्यात्माको नमस्कार है। जो सृष्टिरचाके वास्ते जगत्के सब प्राणियोंको स्नेह पाशसे मोहित कर रहा है; उस मोहात्मा परम पुरुषको प्रणाम है। योगी लोग ज्ञान साधनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांचों विषयोंसे ज्ञानको पृथक् करके पवित्र ज्ञान मार्गसे आत्म स्वरूप जानके जिसे प्राप्त करते हैं उस ज्ञानस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिसके ज्ञानरूपी नेत्र सर्व्व-वर्त्तमान हैं, जो अगोचर स्वरूप है; और जिसमें ये सम्पूर्ण विषय स्थित रहते हैं; उस दिव्यात्माको नमस्कार है। जो सदा जटा और दण्डधारी है, लम्बोदर शरीर युक्त कमण्डलु ही जिसका तूणीर है; उस ब्रह्मात्माको नमस्कार है। जो सदा शरीरमें खाक लगाये हुए शूल धारण करके विराजमान रहता है; उस त्रिदशनाथ, त्रिनेत्र ऊर्द्धलिंग रुद्रात्माको नमस्कार है। अर्द्धचन्द्र जिसके माथेका भूषण और सर्प जिसके यज्ञोपवीत हैं, उस शूल और पिनाकधारी उग्रात्माको नमस्कार है। जो सब प्राणियोंका आत्मस्वरूप है, जो अहंकारको नाश करनेवाला है; उस क्रोध, मोह और द्रोहसे रहित शान्तात्माको नमस्कार है। यह संसार जिसके प्रभावसे स्थित है, जिससे जगत्की उत्पत्ति होती है, जो सब स्थानोंमें विराजमान है, जो स्वयं विश्वरूप और सब प्राणियोंका आत्मा स्वरूप हैं; उस नित्यस्वरूप सर्व्वमय परम पुरुषको प्रणाम है।

हे विश्वकर्म्मन्! हे जगत्के उत्पन्न करनेवाले! तुम पञ्च भूतोंसे पृथक् और नित्य मुक्ति स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तीनों लोकों सब दिशाओं और तीनों कालोंमें समभावसे विद्यमान हो, तुम ही सर्व्वमय और निधिस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। हे भगवन! हे विष्णु! तुम इस जगत्को उत्पन्न करनेवाले और अव्यय स्वरूप हो? इससे तुम्हें प्रणाम है। हे हृषीकेश! तुम जगत्कर्त्ता, संहर्त्ता और अपराजेय हो; इससे तुम्हें प्रणाम है। हे भगवन! यद्यपि मैं तुम्हारे वर्त्तमान आदि त्रिकालस्थित दिव्यभावके दर्शनमें समर्थ नहीं हूं, तथापि तुम्हारा जो सनातन स्वरूप है, उसे तत्वभावसे दर्शन कर रहा हूं। तुम्हारे मस्तकसे द्युलोक, चरणसे भूलोक और तुम्हारे पराक्रमसे तीनों लोक व्याप्त हैं; तुम्हीं साक्षात् सनातन पुरुष हो। सम्पूर्ण दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य्य तुम्हारे नेत्र और पापरहित प्रजापति ही तुम्हारे वीर्य्य स्वरूप हैं; तुम महातेजमय वायुरूपसे ऊपरके सप्तर्षियोंको रोकके स्थित हो।

अलसी पुष्पके समान रूपवाले पीताम्बर-

धारी पञ्च, न गोविन्दको जो प्रणाम करते हैं, उन लोगोंको कुछ भी भय उपस्थित नहीं होता। दस अश्वमेध यज्ञोंके समाप्तिमें अवभृत स्नान करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, वह श्रीकृष्ण भगवानके एक बारके प्रणाम की समानता भी नहीं कर सकता। क्यों कि उन दश अश्वमेध यज्ञोंके करनेवाले पुरुषोंको फिर जन्म लेना होता है, परन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालोंको जन्म मरण रूपी दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता। कृष्ण ही जिसके व्रत है, और सोते, उठते जो लोग श्रीकृष्णका स्मरण करते हैं, तथा यागपूर्व्वक उनके ध्यानमें रत होते हैं, वे इस प्रकार उनके स्वरूपमें लीन होजाते हैं, जैसे मन्त्रसे युक्त घृत अग्निमें प्रवेश करता है। जो नरक भयके छोड़ानेवाले और संसार सागरसे पार करनेके निमित्त नौका स्वरूप हैं, उस विष्णु भगवानको बार बार प्रणाम है। जो गऊ ब्राह्मण और सब जगत्‌के हितकारी हैं, उस जगत् त्राणकर्त्ता ब्रह्मण्यदेव कृष्ण भगवानको बारम्बार प्रणाम है। "हरि"—इन दो अक्षरोंसे युक्त नाम प्राणियोंको कठिन मार्गोंसे भी पार करता है, यह संसार सागरके तरनेका उपाय और शोक दुःखको नाश करनेवाला है। जब कि सत्य विष्णुमय जगत् विष्णुमय और सब वस्तु विष्णुमय हैं तब मेरा चित्त भी विष्णुमय होके पापरहित होवे। हे पुण्डरीकाक्ष! हे सुरसत्तम! यह भक्त अभिलषित गति पानेको इच्छासे सब भांतिसे एकमात्र तुम्हारा ही शरणागत हुआ है, इस समय जिसमें मङ्गल हो; आप उसी का विचार कीजिये

हे जनार्द्दन! तुम विद्या और तपस्याके कारणस्वरूप विष्णु हो, आप मेरे स्तुति वचनरूपी यज्ञसे पूजित होके तृप्त तथा प्रसन्न हूजिये; वेद, तपस्या और देवता इत्यादि जो कुछ वस्तु है, वह सबही नित्य-नारायण रूप है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुल शिरोमणि भीष्मने इतना वचन कहके उनमें चित्त लगाके श्रीकृष्णको प्रणाम किया। तब उस समय श्रीकृष्ण भगवानने योगप्रभावसे भीष्मके शरीरके भीतर प्रवेश कर उन्हें भक्ति और त्रिकाल दर्शन ज्ञान प्रदान करके फिर निज शरीरमें आगमन किया। महाबुद्धिमान भीष्मके वचन समाप्त होनेपर मुख्य मुख्य ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोगोंने वचनसे उनकी पूजाकी। अनन्तर वे लोग पुरुषोत्तम कृष्णकी स्तुति करके मृदुस्वरसे बार बार भीष्मकी प्रशंसा करने लगे।

इधर पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र योगबलसे भीष्मकी भक्तिके विषयका जानके अत्यन्त आनन्दके सहित सहसा उठके रथपर चढ़े। यदुवीर सात्यकि कृष्णके रथपर चढ़के उनके सङ्ग गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। महात्मा युधिष्ठिर और अर्जुन एक रथपर और भीमसेन तथा माद्रीपुत्र नकुल सहदेव एक दूसरे रथपर चढ़के गमन करने लगे। पुरुषश्रेष्ठ शत्रुनाशन कृपाचार्य्य, युयुत्सु और सूतकुलमें उत्पन्न हुए सञ्जयने एक बहुत बड़े रथपर चढ़के रथ शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए प्रस्थान किया। मधुसूदन पुरुषसिंह कृष्णने गमन करनेके समय मार्गमें कितने ही ब्राह्मणोंके अनेक भांतिके स्तुतियुक्त वचनको सुनके तथा कितने ही पुरुषोंको बिनीतभावसे स्थित देखकर आनन्दके सहित उन लोगोंको प्रसन्न किया।

४७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! इसी भांति श्रीकृष्णचन्द्र, भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिर और कृपाचार्य्य आदि सब कोई शीघ्रगामी घोड़ों और ध्वजा पताकाओंसे युक्त नगरके समान रथोंपर चढ़के कुरुक्षेत्रको ओर गमन करने लगे। युधिष्ठिर आदि महारथी लोग जहांपर महात्मा क्षत्रियोंने युद्धमें प्राण-

त्याग किया था; उस प्रेत-राक्षसोंसे सेवित, यमराजके स्थान तथा श्मशानभूमिके समान कुरुक्षेत्रमें पहुंचके किसी किसी स्थानमें ढेरके ढेर केश, मज्जा और हड्डी आदिक तथा कहीं कहीं मरे हुए हाथी घोड़ोंके शरीर, और हड्डियोंको पर्वतके समूहके समान देखने लगे; और कहीं शङ्ख और टूटे शस्त्रोंके समूह तथा कहींपर सहस्रों चिता दीख पड़ती थीं; और कहींपर शङ्खके समान मनुष्योंके सिरकी सफेद खोपड़ियोंको देखते हुए शीघ्रताके सहित आगे गमन करने लगे। मार्गमें जाते हुए यदुनन्दन कृष्णने युधिष्ठिरसे जमदग्निपुत्र परशुरामके पराक्रमका विषय वर्णन करना आरम्भ किया।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज! भृगुनन्दन परशुरामने जिस स्थानपर युद्धमें क्षत्रियोंके रुधिरसे पांच तालाबोंको भरके पितरोंका तर्पण किया था। ये वेही पाचो रामहृद दूरसे दीख पड़ते हैं। महात्मा परशुराम इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके अब इस क्रूर कर्मसे विरक्त हुए हैं।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे यदुकुलश्रेष्ठ! हे अमित पराक्रमी! तुमने जो परशुरामजीके इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेकी कथा कही; उससे मुझे अत्यन्त ही संशय उत्पन्न हुआ है। यदि परशुरामने अपने शस्त्ररूपी अग्निमें सब क्षत्रिय बीज ही भस्म कर दिया, तो फिर किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई? और करोड़ों क्षत्रियोंने महाघोर रण युद्धमें मरके अपने मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित किया, महात्मा परशुराम भगवानने अकेले ही किस प्रकार क्षत्रियकुलका नाश किया; और फिर किस भांति उनकी वृद्धि हुई? हे कृष्ण! भृगुनन्दन परशुरामने कुरुक्षेत्रके बीच किस कारणसे क्षत्रियकुलका नाश किया? हे वार्ष्णेय! हे गरुड़ध्वज! तुम मेरे इन सब संशयोंको दूर करो; तुम्हारा वचन मैं वेदसे भी श्रेष्ठ समझता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सर्वशक्तिमान गदा पद्मधारी भगवान कृष्णने जिस प्रकार पृथ्वी क्षत्रियोंके मृत शरीरोंसे परिपूर्ण हुई थी, उस वृत्तान्तको महाबलवान धर्मराज युधिष्ठिरके समीप यथार्थ रूपसे वर्णन करनेमें प्रवृत्त हुए।

४८ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैंने महर्षियोंके मुखसे भृगुनन्दन परशुरामके जन्म और उनके पराक्रम विषयक कथाको जिस भांति सुनी है; वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो। जिन महात्मा परशुरामजीने जिस प्रकार करोड़ों क्षत्रियोंका वध किया था और वे सब क्षत्रिय जिस भांति फिर राजवंशमें उत्पन्न हुए अर्थात् जो लोग उस समय भारतयुद्धमें मरे थे, उनकी पुनरुत्पत्तिका वृत्तान्त भी कहूंगा। पहिले समयमें जन्हु नाम एक राजा थे; अज नाम उनके एक पुत्र हुआ; अजके पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्वके कुशिक नाम एक धर्म्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ कालके अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी महात्मा कुशिकने विचारा, कि मेरे सब प्राणियोंसे अजेय त्रिलोकेश्वरके समान एक पुत्र उत्पन्न हो,—ऐसी इच्छा करके महाराज महात्मा कुशिक तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। सहस्र नेत्रवाले भगवान इन्द्रने महात्मा कुशिककी कठोर तपस्या देखकर तथा उन्हें अभिलषित पुत्र लाभके यथार्थ अधिकारी समझके स्वयं ही उनका पुत्र होना स्वीकार किया। महाराज! देवोंके राजा भगवान इन्द्र महात्मा कुशिकके पुत्ररूपसे जन्म लेकर गाधि नामसे विख्यात हुए। कुछ समयके अनन्तर महात्मा गाधिके सत्यवती नाम

की एक कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याको उन्होंने भृगुनन्दन महात्मा ऋचीकको प्रदान किया। महात्मा ऋचीकने निज भार्य्याके शुद्ध व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर उसके और गाधिराजके पुत्र उत्पन्न होनेके वास्ते यत्नसे दो चरु उत्पन्न किये। अनन्तर अपनी स्त्रीको समीप बुलाके उससे बोले, हे कल्याणी! इन दोनों चरुओंको ग्रहण करो। इसमेंसे यह चरु अपनी माताको देना और इस चरुको तुम भक्षण करना। ऐसा होनेसे तुम्हारी माताके सब शस्त्रधारी प्राणियोंसे अजेय, क्षत्रियोंमें अग्रगण्य अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा; वह पुत्र पृथ्वीके सब क्षत्रियोंको दमन करनेवाला होगा। और इस दूसरे चरुके प्रभावसे तुम्हारे भी धृतिमान शान्तस्वभाववाला महा तपस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा।

भृगुनन्दन ऋचीकने भार्य्यासे इतनी कथा कहके तपस्या करनेके वास्ते वनके बीच गमन किया। उसी समय गाधिराज तीर्थयात्रा करते हुए स्त्री सहित महात्मा ऋचीकके आश्रममें उपस्थित हुए। उन दोनोंको निज आश्रममें आया हुआ देखके ऋचीक-पत्नी सत्यवतीने दोनों चरुओंको लेकर हर्ष पूर्व्वक माताके समीप गमन करके दोनों ही भाग उसके हाथमें देकर स्वामीके कहे हुए सब वृत्तान्तको वर्णन किया। गाधिराजकी स्त्रीने भ्रमसे अपना चरु कन्याको देकर उसके चरुको आप भक्षण किया। अनन्तर सत्यवतीने क्षत्रियोंको नाश करनेवाला, अग्निके समान प्रकाशमान अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र गर्भमें धारण किया। उस समय भृगुशार्द्दूल भगवान ऋचीक वहांपर आके उपस्थित हुए और योग प्रभावसे निज-भार्य्या देवरूपिणी सत्यवतीके गर्भस्थ पुत्रको देखके उससे कहने लगे,—हे भद्रे! चरु अदल बदल होनेके कारण तुम अपनी मातासे ठगी गई; इस कारण तुम्हारा पुत्र क्रूर स्वभाव और क्रूरकर्म्मोंका करनेवाला होगा और तुम्हारी माताके गर्भसे अत्यन्त तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। इसका कारण यह है कि तुम्हारा चरु ब्रह्मतेजसे परिपूर्ण था, और तुम्हारी माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज परिपूरित था; परन्तु उसके उलट फेर होनेसे पुत्रभी तुम दोनोंके विपरीत होंगे अर्थात् तुम्हारे गर्भसे क्षत्रिय और तुम्हारी माताके गर्भसे ब्राह्मण लक्षण युक्त पुत्र उत्पन्न होगा। तब सत्यवती स्वामीके मुखसे ऐसा वचन सुनके पृथ्वीमें गिर पड़ी और कांपती हुई विनय पूर्व्वक उनसे यह वचन बोली। हे भगवन् "तुम्हारे ब्राह्मणाधम पुत्र उत्पन्न होगा।" आप मेरे विषयमें ऐसा वचन न प्रयोग करिये, क्यों कि आप तपके प्रभावसे सब विषयोंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं।

ऋचीक मुनि बोले, हे भद्रे! तुम यह मत समझो, कि मैंने पहिलेसे ही तुम्हारे वास्ते ऐसा सङ्कल्प किया था; केवल चरु बदलनेसे ही तुम्हारे गर्भसे कठोर कर्म्म करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा।

सत्यवती बोली, हे भगवन्! उत्तम पुत्र उत्पन्न होनेकी बात ही क्या है! आप इच्छा करनेसे तीनों लोकोंको फिरसे उत्पन्न कर सकते हैं; इससे कृपा करके मेरे गर्भसे एक शम परायण शान्त स्वभाव युक्त पुत्र उत्पन्न करिये।

ऋचीक मुनि बोले, हे कल्याणि! यज्ञकी अग्निसे चरु प्राप्त करनेकी बात तो बहुत दूर है, मैंने कभी परिहासके मिससे भी मिथ्या वचन नहीं कहा है। विशेष करके तुम्हारे पिताके कुलमें जो शम परायण ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न होंगे अपने सब कुलको ब्राह्मण धर्म्मावलम्बी करेगा; उसे मैंने पहिलेसे ही तपस्याके प्रभावसे जान लिया था।

सत्यवती बोली, हे भगवन् आपने जो कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहे, इसे मैं स्वीकार

करता हूं परन्तु पुत्र और पौत्रमें कुछ भी विशेष अन्तर नहीं है; इससे आपकी कृपासे मेरा पौत्र क्षत्रियधर्म्म युक्त क्रूर-कर्म्मोंका करनेवाला और मेरा पुत्र शमपरायण ब्रह्मनिष्ठ होवे।

महात्मा ऋचीक मुनि बोले, हे वरवर्णिनि! पुत्र और पौत्रमें जो विशेष अन्तर नहीं है, मैं इस वचनको स्वीकार करता हूं; इससे तुमने जैसी अभिलाषाकी है, वैसा ही होगा।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! समय पूरा होने पर ऋचीकपत्नी सत्यवतीके जमदग्नि नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पुत्र तपस्यामें रत इन्द्रिय जीतनेवाला और शान्त प्रकृतिवाला हुआ था, इधर कुशिकपुत्र महात्मा गाधिराजके भी ब्राह्मणलक्षण युक्त विश्वामित्र नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुछ दिनोंके अनन्तर क्रमसे ब्रह्मत्व प्राप्त करके सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच ब्रह्मर्षि कहके विख्यात हुए थे।

तिसके अनन्तर ऋचीक-पुत्र तपस्वी जमदग्निके एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा अवस्था प्राप्त होनेपर वह अग्निके समान अत्यन्त तेजस्वी होकर धनुर्व्वेद आदि सब विद्या पढ़के क्षत्रियनाशक राम नामसे सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच विख्यात हुए, उन्होंने गन्धमादन पर्व्वत पर जाके कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न करके तीक्ष्ण धारसे युक्त परशु और दूसरे सब अस्त्र शस्त्रोंको प्राप्त किया; और जलती हुई अग्निके समान तीक्ष्ण धारवाले प्रचण्ड फरसेसेही वह सब लोकोंके बीच अद्वितीय वीर योद्धा कहके विख्यात हुए। उस समय हैहय देशमें कृतवीर्य्यपुत्र सहस्रबाहु अर्ज्जुन नाम एक महाबली राजा थे। उस धर्म्मात्मा महातेजस्वी अर्ज्जुनने महर्षि दत्तात्रेयकी कृपासे निज अस्त्र और बाहुबलके प्रभावसे सब पृथ्वी जय करके चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त किया और अश्वमेध यज्ञमें पर्व्वत वन और सात द्वीपवाली पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की। किसी समयमें अग्निदेवने भूखे होकर तृण काष्ठ आदि वस्तुओंको भस्म करनेकी अभिलाषासे राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके समीप आके प्रार्थना की, उन्होंने अग्निदेवको वन पर्व्वतोंके सहित ग्राम नगर और राज्य अर्पण किया; उससे अग्नि भगवानने अत्यन्त प्रसन्न होकर महातेजस्वी पुरुषेन्द्र कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे उनके बाणके अग्रभागसे प्रकट होके पर्व्वतोंके सहित सम्पूर्ण वनस्पतियोंको भस्म कर दिया। अग्निने हैहयराजकी सहायता पाके तथा वायुके प्रभावसे बढ़के निर्ज्जन स्थानमें स्थित महातेजस्वी महात्मा महर्षि वशिष्ठ मुनिके मनोहर आश्रम पर्य्यन्तको भी भस्म कर दिया। महाराज! इसी प्रकार कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे निज आश्रमको भस्म हुआ देखकर महातेजस्वी वशिष्ठ मुनिने उसे शाप दिया। हे अर्ज्जुन! तुमने जो मेरे इस वन और आश्रमको भस्म किया है, इस अपराधके कारण परशुराम तुम्हारे सब शाखाको काटेंगे। महात्मा वशिष्ठ मुनिके शाप देनेपर भी महापराक्रमी शमपरायण, ब्रह्मनिष्ठ, शरणागत पालक, दानी महातेजस्वी बलवान सहस्रबाहु अर्ज्जुनने उनके शापकी कुछ भी पर्व्वाह न की। परन्तु, राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके बलवान पुत्र ही उनके वधके कारण होगये, अर्थात् वे लोग शाप प्रभावसे अभिमानमें मत्त होकर दुष्टताके सहित परशुरामकी अनुपस्थितिमें महर्षि जमदग्निके होमकी गऊके बछड़े हर ले गये। परन्तु यह कार्य्य हैहयराजकी अजानकारीमें हुआ था, तौभी महात्मा जमदग्नि मुनिके सङ्ग उनका महाघोर विरोध उपस्थित हुआ। उसी समय परशुराम युद्धमें प्रवृत्त होकर सहस्रबाहु अर्ज्जुनकी सब भुजाओंको काटके राजभवनके भीतर स्थित अपनी गौओंके बछड़ोंको लेकर अपनी कुटीपर लौट आये।

तिसके अनन्तर किसी समय यशस्वी परशु-राम कुश और काष्ठ लानेके निमित्त वनमें गये थे, उसी समयमें सहस्रबाहु अर्जुनके मूर्ख पुत्रोंने उनकी अवज्ञा की, और सबने एकत्रित होके महात्मा जमदग्नि ऋषिके आश्रममें गमन करके भालेसे उनका सिर काट डाला। भृगु-कुलसिंह महातेजस्वी परशुराम पिताके वधसे अत्यन्त कुपित हुए और क्रोधसे व्याकुल होकर उन्होंने प्रतिज्ञा करके अस्त्र ग्रहण किया, कि "मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करूंगा।"—अनन्तर महात्मा परशुरामने अपना पराक्रम प्रकाशित करके युद्धमे कार्त्त-वीर्य अर्जुनके पुत्र और पौत्रोंको शीघ्र ही मार डाला। महाराज! अनन्तर भृगुनन्दन परशु-रामने क्रुद्ध होके युद्धमें हैहयवंशीय सहस्रों क्षत्रियोंका वध करके उनके रुधिरसे पृथ्वीको कीचड़मय कर दिया। तिसके अनन्तर महात्मा परशुराम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे सूनी करके अत्यन्त कृपायुक्त होकर वनमें चले गये, वनमें तपस्या करते हुए पर-शुरामको कई हजार वर्ष बीत गये। तब विश्वामित्र-पौत्र रैभ्यके पुत्र महातपस्वी परा-वसु जनसमाजके बीच परशुरामकी निन्दा करके उनसे यह वचन बोले, हे राम! स्वर्गसे पतित हुए ययाति राजाके निमित्त जो यज्ञ हुआ था, और उस यज्ञमें जो प्रतर्दन आदि राजा आके एकत्रित थे, वे क्या क्षत्रिय नहीं है? तुमने जो जनसमाजके बीच पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेकी प्रतिज्ञा करके अपनी बड़ाई की थी; तुम्हारी वह सब प्रतिज्ञा मिथ्या हुई! क्यों कि इस समय पृथ्वी फिर अनगिनत क्षत्रियोंसे परिपूर्ण है; हम लोगोंने समझ लिया, कि तुम इन सब वीरोंके भयसे ही इस पर्व्वतपर आके निवास कर रहे हो। महाराज! क्रुद्ध स्वभाव वाले भगवान परशुरामने परावसुके ऐसे निन्दायुक्त वचनोंको सुनके अपना अपमान समझकर फिर शस्त्र ग्रहण किया। जो क्षत्रिय पहिली बारके युद्धमें किसी भांति जीवित बच गये थे, उन्हीं महाबलवान क्षत्रियोंसे ही क्षत्रिय वंश बढ़ा, और धीरे धीरे वेही सब क्षत्रिय सन्तान सारी पृथ्वीके राजा होगये थे। भृगुनन्दन परशु-रामने फिर शीघ्र ही युद्धभूमिमें उपस्थित होके बालकों तथा पुत्र पौत्रोंके सहित सब क्षत्रियोंको मारडाला।

तिसके अनन्तर जो बालक गर्भमें थे, उन्ही सब क्षत्रियपुत्रोंसे पृथ्वी फिर परिपूरित होगई, परशुरामजीने इस वृत्तान्तको सुनते ही फिर आके उनका वध किया। महाराज! इसी भांति जब जब क्षत्रियोंके पुत्र गर्भसे उत्पन्न होके बढ़ते थे, तब तब परशुराम बनसे आके उनका संहार करते थे, परन्तु उस समय बहुतसे क्षत्रियोंकी स्त्रियोंने अति कौशलके सहित अपने गर्भकी रक्षा की थी। इधर महातेजस्वी भग-वान परशुरामने क्रमसे इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया और दक्षिणामें कश्यप मुनिको सारी पृथ्वी दान कर दी। महर्षि कश्यपने क्षत्रिय बालकोंकी रक्षाकरनेकी अभिलाषासे हाथमें स्रुवा लेकर पृथ्वीका दान ग्रहण करके परशु-रामसे कहा, हे राम! इस समय यह पृथ्वी मेरी हुई है, अब इस पृथ्वीपर वास करना तुम्हें उचित नहीं है, तुम शीघ्रही दक्षिण समु-द्रके तीर गमन करो। इधर समुद्रने महात्मा परशुरामके निमित्त पृथ्वी सीमाको त्यागके अपने उदरमें शूर्पारक नाम स्थान बना रक्खा। महर्षि कश्यप परशुरामसे सब पृथ्वी दान लेकर ब्राह्मणोंको समर्पण करके निज स्थानमें चले गये। महाराज जब पृथ्वी राजासे रहित हो गई, तब बलवान पुरुष निर्ब्बल पुरुषोंको दुःख देने लगे, शूद्र, वैश्य आदिक इच्छानुसार ब्राह्म-णोंकी स्त्रियोंसे अधर्म करने लगे, अधिक क्या

कहा जाये, उस समय डाकुओंके उपद्रवसे किसी को भी अपने धन पर अधिकार तथा प्रभुता न रही। इसी भांति समयकी गति विपरीत होनेपर पृथ्वी धर्म्म-पालक क्षत्रियोंसे यथारीति न रक्षित होनेके कारण दुष्टोंके भारसे अत्यन्त दुःखित होके पातालमें जानेके निमित्त उद्यत हुई। महातपस्वी कश्यप मुनिने पृथ्वीको पातालमें गमन करनेके वास्ते उद्यत देखकर उसे उरु पर धारण किया, पृथ्वी कश्यप मुनिके उरु पर धारण होनेके कारण उर्व्वी नामसे विख्यात हुई। अनन्तर पृथ्वीने अपनी रक्षाके वास्ते महात्मा कश्यपको प्रसन्न करके धर्म्मात्मा राजाकी प्रार्थना की। पृथ्वी बोली, हे ब्रह्मन्! कितनी ही स्त्रियोंसे क्षत्रिय सन्तान उत्पन्न होके मुझसे रक्षित होकर गुप्तरीतिसे निवास कर रहे हैं, मैं तुम्हारे समीप उनके कुल और गोत्रका वर्णन करती हूं आप सुनके मेरी रक्षाका उपाय करिये। कितने ही हैहयवंशीय धर्म्मात्मा क्षत्रिय जीवित है, पुरुवंशीय विदूरथ पुत्र ऋक्षवान पर्व्वत पर रीछोंसे रक्षित होकर वहां पर निवास कर रहा है। सौदास राजपुत्र जिसकी पराशर मुनिने कृपा करके रक्षाकी है; वह भी जीवित है; परन्तु उसके संस्कार आदि सब कर्म्म शूद्रजातिकी भांति किये गये हैं; इसीसे अब वह सर्व्व-कर्म्मा नामसे विख्यात है। शिबि-पुत्र महातेजस्वी गोपति वनके बीच गौवोंके दूधसे प्रतिपालित होकर जीवित है। प्रतर्द्दन-पुत्र महाबलवान वत्स गौवोंके समूहमें बछड़ोंके साथ मिलके गौवोंका दूध पीके प्राण धारण करता है। गङ्गाके किनारे गौतम-वंशीय किसी ब्राह्मणने कृपा करके दधिवाहन-पौत्र दिविरथके पुत्रकी रक्षा की है। महर्षि भूरि-भूतिने महातेजस्वी बृहद्रथका संस्कार आदि कर्म्म किया है, वह भाग्यवान बालक गृध्रकूट पर्व्वत पर गोलाङ्गूलोंसे रक्षित होकर प्राण धारण करता है। इन्द्रके समान पराक्रमी कितने ही मरुत्तवंशी क्षत्रिय भी जीवित हैं; समुद्रने उन लोगोंकी रक्षा की है। हे ब्रह्मन्! ये सब क्षत्रिय पुरुष आके दुष्ट डाकुओंसे मेरी रक्षा करें। हे विप्र! मैंने जिन क्षत्रियोंका वृत्तान्त कहा है, वे सब प्राणभयसे डरकर कहे हुए स्थानोंमें गुप्त रीतिसे निवास कर रहे हैं; इसके अतिरिक्त कितनेही बढ़ई और सोनारोंके घरोंमें वेष बदलके बहुतसे क्षत्रिय पुरुष विद्यमान हैं। यदि वे सब श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय पुरुष आके मेरी रक्षा करें, तो मैं अवश्य ही स्थिरताके सहित स्थित होऊंगी। देखिये, इन क्षत्रियोंके पिता, पितामह आदि सब पुरुष मेरे ही निमित्त कठिन कर्म्मोंके करनेवाले परशुरामके हाथसे मारे गये हैं; इससे मैं अवश्य ही उनके कुलमें उत्पन्न हुए तथा मरनेसे बचे हुए वीर धुरीण पुत्र पौत्रोंको अपना स्वामी स्वीकार करके उन मृत राजाओंके ऋणसे मुक्त होऊंगी। हे महर्षि! अधिक क्या कहूं, मैंने जो कुछ वचन कहा यदि वैसा ही हो, तो मैं स्थिरताके सहित निवास कर सकती हूं; परन्तु मर्य्यादारहित दुष्ट पुरुषों तथा डाकुओंसे रक्षित होना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करूंगी; इससे आप शीघ्रताके सहित उन राजपुरुषोंको राज्यपद पर प्रतिष्ठित करनेका उपाय करिये।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! तिसके अनन्तर महात्मा कश्यप मुनिने पृथ्वीके वचनको सुनके उन बलवीर्य्यसे युक्त सब क्षत्रिय पुत्रोंको लाके राज्यपदपर अभिषिक्त किया। जिन राजाओंके पुत्र पौत्र आदि जीवित थे, इसी भांति उन लोगोंका वंश फिर राजपदपर प्रतिष्ठित हुआ। हे राजेन्द्र! तुमने मुझसे जो कुछ प्रश्न किये, मैंने वह सब वृत्तान्त यथारीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! इसी भांति यदुकुल श्रेष्ठ महात्मा श्रीकृष्ण-

चन्द्र धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रणी राजा युधिष्ठिरसे प्राचीन कथा कहते हुए सूर्य्य किरण समान प्रकाशमान रथसे सब दिशाओंको प्रकाशित करते तथा वायुके समान वेगगामी रथपर चढ़े हुए गमन करने लगे ।

४६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिर भृगुकुल शिरोमणि परशुरामजीके अद्भुत कर्म्मोंको सुनके अत्यन्त ही विस्मित हुए और जनार्द्दन कृष्णसे बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! मैं इन्द्रके समान अत्यन्त पराक्रमी परशुरामके पराक्रमकी कथा सुनके अत्यन्त ही आश्चर्य युक्त हुआ हूं, क्योंकि उन्होंने क्रुद्ध होकर अकेले ही सब पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया था। यह भी अत्यन्त ही आश्चर्यका विषय है, कि मरनेसे बचे हुए क्षत्रियसन्तानोंने परशुरामके भयसे व्याकुल होकर गऊ, गोलाङ्गूल ऋक्ष, बन्दर और समुद्रके आसरेसे अपनी प्राणरक्षा की थी। अहा ! इस जीव लोकको धन्य है और इस पृथ्वीके मनुष्योंको भी धन्य है। क्योंकि ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य महर्षि कश्यपने इस प्रकार धर्म्म कार्य्य किया है, अर्थात् कृपा करके राजपुत्रोंकी रक्षा करके पृथ्वीको धर्म्मपूर्व्वक रक्षित किया है। महाराज ! श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर इसी भांति वार्त्तालाप करते हुए चलते चलते सात्यकि आदि वीरोंके सहित उस स्थानपर जा पहुंचे, जहां गङ्गानन्दन भीष्म शरशय्यापर शयन कर रहे थे। उन लोगोंने वहांपर पहुंचके देखा, कि बहती हुई नदीके किनारे परम पवित्र स्थानमें शरशय्यापर स्थित महात्मा भीष्म मानो अपने तेजसे सन्ध्या कालके सूर्य्य समान प्रकाशित हो रहे हैं।

अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान, कृपाचार्य्य और भीम-अर्जुन आदि पुरुषश्रेष्ठ वीर भगवान इन्द्रकी उपासना करनेवाले देवताओंकी भांति मुनियोंसे पूजित भीष्मको दूरसे ही देखके सब कोई रथसे उतरे, और सब इन्द्रियों तथा चञ्चल चित्तको संयम करके पहिले मुख्य मुख्य मुनियों तथा व्यास आदिक ऋषियोंको प्रणाम करके फिर गङ्गानन्दन भीष्म की उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए। तिसके अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ यादव और कौरव लोग महातपस्वी गङ्गानन्दन भीष्मका दर्शन करके उनके चारों ओर बैठ गये, तब यदुनन्दन कृष्ण शान्त होती हुई अग्निकी भांति भीष्मको क्रमशः शान्य भावसे देखकर किञ्चित् दीन चित्तसे बोले,—हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! इस समय आपका चित्त पहिलेकी भांति प्रसन्न तो है ? आपकी बुद्धि व्याकुल तो नहीं हुई है ? बाणोंके चोटकी पीड़ासे आपका शरीर पीड़ित तो नहीं है, क्योंकि मानसिक दुःखोंसे भी शारीरिक क्लेश प्रबल होते हैं। मैं जानता हूं, कि आप निजपिता महाराज शान्तनुके वर-प्रभावसे इच्छानुयायी मृत्यु प्राप्त करनेमें समर्थ हुए हैं ! अधिक क्या कहूं, आपने जिस प्रकार पिताको सन्तुष्ट करके इच्छामरण वर प्राप्त किया है; वैसा पितृसन्तोष रूपी कारण हम लोगोंमें विद्यमान नहीं है। तथापि जब कि मनुष्य शरीरमें एक कांटेके गड़जानेसे भी शरीरको क्लेश होता है तब अनगिनत बाणोंकी चोटसे जो आपके शरीरमें पीड़ा होगी इसमें क्या आश्चर्य है ? परन्तु इसे मैं अवश्य ही स्वीकार करूंगा, कि ऊपर कहे हुए सुख दुःख साधारण पुरुषोंको ही आक्रमण कर सकते हैं; आप ऐसे पुरुषोंको क्लेश आदिक कदापि मोहित तथा दुःखित नहीं कर सकते, क्योंकि आप प्राणियोंकी उत्पत्ति और लय आदि सम्पूर्ण तत्त्वोंका देवताओंको भी उपदेश करनेमें समर्थ हैं। हे भरतर्षभ ! आप इस पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। अधिक क्या कहूं, भूत, वर्त्तमान और भविष्य

इन तीनों शास्त्रोंके जो कुछ जाननेयोग्य विषय हैं, आप उन सब वृत्तान्तोंको जानते हैं। हे महाबुद्धिमान! धर्म्मके फलोंकी प्राप्ति और प्राणियोंका संहार यह सब आपको विदित है; क्यों कि आप धर्म्मात्मा और धर्म्मके आधार स्वरूप हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! दार-परित्याग रूपी प्रतिज्ञाके पहिले भी जब कि आप वैसे समृद्धि-युक्त राज्यके बीच सहस्रों स्त्रियोंके बीच घिरे रहते थे, उस समय भी मैंने आपको रोगरहित शरीरसे युक्त ऊर्द्ध रेता ब्रह्मचारी पुरुषके समान देखता था। धर्म्मपरायण सत्यनिष्ठ महाबली पराक्रमी शान्तनुपुत्र भीष्मके अतिरिक्त तीनों लोकके बीच दूसरे ऐसे किसी प्राणीका भी प्रभाव नहीं सुना गया, जो शरशय्यापर शयन करके तपके प्रभावसे मृत्युको इच्छानुसार निवारण कर रखे? भरतकुल शिरोमणि! सत्य, तपस्या, दान युद्ध, यज्ञ, धनुर्वेद, वेद और शरणागतको पालन करनेवाला आपके समान दूसरा कोई भी पुरुष नहीं है; और अनृशंसता, पवित्र स्वभाव, इन्द्रिय-संयम, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाला और युद्धमें अद्वितीय रथी हो आपके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है? आप जो अकेले ही युद्धमें देवता, गन्धर्व्व, असुर, यक्ष और राक्षसोंको पराजित करनेमें समर्थ हैं, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वसु अंशसे जन्म ग्रहण करनेसे यद्यपि ब्राह्मण लोग आपकी गणना नवम वसुमें करते हैं, तौभी निज गुणोंके प्रभावसे आप सब वसुओंसे भी श्रेष्ठ होकर इन्द्रकी समानताको पहुंचे हैं। हे पुरुष सत्तम! आप निज पराक्रमके प्रभावसे देवलोकमें भी विख्यात हुए हैं, आपके ज्ञान और सामर्थ्यके विषय आदि मुझसे कुछ भी छिपे हुए नहीं हैं। हे पुरुषेन्द्र! इस पृथ्वीपर आपके समान गुणशाली कोई पुरुष विद्यमान है, ऐसा न कहीं देखा गया और न कहींपर सुननेमें ही आया। हे पुरुषोत्तम! आप सब गुणोंमें देवताओंसे भी श्रेष्ठ हुए हैं और निज तपस्याके प्रभावसे चराचर प्राणियोंकी नयी सृष्टि भी करनेमें समर्थ हैं। ऐसे समयमें आप जो उत्तम गुणोंके प्रभावसे अपने गमन करने योग्य उत्तम लोकको प्राप्त करेंगे; उसमें सन्देह ही क्या है। इससे आप इस समय निज उपदेशसे स्वजन-नाश शोकसे व्याकुल पाण्डवोंमें जेठे महाराज युधिष्ठिरका शोक दूर करिये। क्यों कि चारों वर्ण; चारों आश्रम, चारों विद्या, चातुर्होत्र, वेद, सांख्य, योग और शिष्टाचार आदि जो कुछ धर्म्म हैं, वे सब आपको विदित हैं; अधिक क्या कहा जावे, जो चातुर्व्वर्णोंके विरुद्ध नहीं हैं, उन सब धर्म्मके गूढ़ तात्पर्य्य अर्थोंको व्याख्याके सहित आप जानते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिलोमजात वर्ण धर्म्म, जातिधर्म्म, देश धर्म्म और कुलधर्म्म आदि जो सब लक्षण वेद-शास्त्रोंमें वर्णित हैं, वे सब भी आपसे अविदित नहीं हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! अर्थ सहित निखिल धर्म्मशास्त्र और पुराण आदिकोंके सब तात्पर्य्य आपके मनमें विशेष करके इस संसारके बीच जिन विषयोंके अर्थोंमें संशय है; उसे छेदन करनेवाला आपके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष होसक्ता है? इससे आप अपने ज्ञानप्रभावसे धर्म्मराज युधिष्ठिरके मन उत्पन्न हुए शोकको दूर कीजिये, क्यों कि आपके समान ज्ञान वृद्ध पुरुषोंका जन्म केवल शोकादिकोंसे मोहित मनुष्योंके चित्तमें शान्ति स्थापित करानेके वास्ते होता है।

५० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कुरु-कुल शिरोमणि भीष्म बुद्धिमान कृष्णके वचनको सुनके कुछ बदन झुकाके हाथ जोड़के उनसे बोले, हे भगवन्! तुम ही इस जगत्के

उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हो; इससे तुम्हें नमस्कार है। हे कृष्ण! हे विश्वकर्मन्! तुम्हीं इस जगत्की आत्मा हो, तुमसे ही यह संसार उत्पन्न हुआ है। हे वृषाकपे! तुम सम्पूर्ण लोकोंमें प्रविष्ट हो; तुम्ही सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो। तुम, ही अपवर्ग अर्थात् नित्य मुक्त स्वरूप हो, तुम पञ्च महाभूतों और शब्द, स्पर्श, रूप रस गन्ध आदि पांचों गुणोंसे पृथक् हो। तुम स्वर्ग, मर्त्यलोक और पाताल इन तीनों लोकों और तीनों कालोंमें विद्यमान हो; तथापि इनसे भिन्न समझे जाते हो! इससे तुम्हें नमस्कार है। हे योगीश्वर! तुम सबके आश्रय स्वरूप हो, इसे तुम्हें प्रणाम है। हे पुरुषोत्तम! तुमने प्रसन्न होकर मेरे गुणोंका वर्णन किया है, उससे मुझे दिव्य-नेत्र प्राप्त हुआ है; जिसके प्रभावसे मैं त्रिलोक स्थित दिव्य भाव और आपके सनातन रूपका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ हूं। तुम अत्यन्त तेजस्वी वायुरूपसे सप्तछिद्रोंको निरोध करके सबके हृदयमें स्थित हो। तुम्हारे शिरसे आकाश और चरणसे पृथ्वी व्याप्त है, दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य्य नेत्र और इन्द्र तुम्हारे पराक्रमके प्रभावसे प्रतिष्ठित हैं। हे अच्युत! तुम्हारा शरीर अतसीपुष्पके समान है, वह पीतवस्त्रोंसे युक्त होकर इस प्रकार शोभित होरहा है, जैसे आकाशमण्डलमें बिजलीसे युक्त बादलोंकी शोभा होती है! हे देवोंमें श्रेष्ठ! हे पुण्डरीकाक्ष! मैं तुम्हारा शरणागत भक्त हूं, मैं उत्तम गति पानेकी अभिलाषासे तुमसे प्रार्थना कर रहा हूं; इससे जिस प्रकार मेरा कल्याण होवे, आप उसीका विधान करिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे कुरुनाथ! तुम जो कपटरहित होकर मेरी भक्तिमें तत्पर रहते हो, उसी कारण तुमने मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन किया है! भक्तिरहित, कपटी भक्त और शान्ति रहित पुरुष मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होसकते; परन्तु तुम मेरे अनन्य ही भक्त और विनय सम्पन्न हो। विशेष करके तुम तपस्या, दया और दान आदि कर्म्मोंमें सदासर्वदा रत रहते हो; तुम्हारा स्वभाव अत्यन्त निर्म्मल है; तुम निज तपस्याके प्रभावसे मेरी दिव्य मूर्त्ति दर्शनके योग्यपात्र हो। हे भीष्म! जिस स्थानमें गमन करनेसे जीवोंकी पुनरावृत्ति नहीं होती, तुम्हें उसी स्थानमें मैं भेजूंगा परन्तु इस समय अभी तीस दिवस तुम्हारे जीवनका समय बाकी है; आर्य्योंको कर सकते हैं, आप तीस ही दिनोंमें उससे अधिक कर्त्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करके उसे पूर्ण करनेमें समर्थ होंगे। इसके अनन्तर शरीर त्यागके अपने अभिलषित स्थानमें गमन कीजियेगा। यह देखिये, जलती हुई अग्निके समान वसु और देवता लोग विमानोंपर चढ़के अलक्षित भावसे सूर्य्यके उत्तरायण कालकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! तत्वज्ञानी पुरुष जिस लोकमें जाके फिर मर्त्यलोकमें नहीं आते; भगवान सूर्य्यके उत्तरायण होनेपर तुम शरीर त्यागनेके उपरान्त उस ही स्थानमें गमन करोगे। हे भीष्म! जब तुम इस लोकसे गमन करोगे, तब उस समय ज्ञान लुप्त प्राय होजायगा, इसी कारणसे ये सब कोई धर्म्म-जिज्ञासु होकर तुम्हारे समीप आके उपस्थित हुए हैं, उससे स्वजन-नाशरूपी शोकसे दुःखित सत्यवादी युधिष्ठिरको आप धर्म्म, अर्थ और समाधि, तथा योगयुक्त सत्य वचनोंका उपदेश करके इनका शोक दूर करिये।

५१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्मने श्रीकृष्णचन्द्रके धर्म्म अर्थ-युक्त लोक हितकर वचनको सुनके हाथ जोड़के उन्हें उत्तर दिया, हे जगन्नाथ! तुम साक्षात्

शिवस्वरूप अव्यय पुरुष नारायण हो ; तुम्हारे वचनोंको सुनके मेरा हृदय आनन्दसे पुलकित होरहा है। जब कि हर एक विषयोंमें कहने योग्य जो कुछ वचन हैं, वे सब पहिलेसे ही तुम्हारे वचनरूपी वेदोंमें विद्यमान हैं ; तब मैं तुम्हारे सम्मुख किस कथाका उपदेश करनेमें समर्थ होसकता हूं इस लोक और परलोकमें कल्याणकी अभिलाषा करके बुद्धिमान पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं, और इस संसारमें जो कुछ करने योग्य कार्य्य हैं, वह सब तुमसे ही प्रकट हुए हैं ; इससे जो पुरुष देवराज इन्द्रके समीप देवलोकका भी वृत्तान्त कहनेमें समर्थ है। वही पुरुष तुम्हारे सम्मुख धर्म्म अर्थ, काम और मोक्षके यथार्थ वृत्तान्तको कह सकेगा। हे मधुसूदन ! मेरा शरीर बाणोंकी चोटसे अत्यन्त पीड़ित है, उससे मेरा चित्त व्याकुल होरहा है, मेरा सम्पूर्ण शरीर शिथिल होरहा है, मेरी बुद्धि चञ्चल है। हे गोविन्द ! विष तथा अग्निके समान बाणोंकी चोटसे मेरे सब अङ्ग अत्यन्त ही पीड़ित होरहे है, इसी कारण मेरी बुद्धि इस प्रकार प्रतिभा-रहित होरही है, कि वचन कहनेमें प्रवृत्ति नहीं होती हैं। मेरा शरीर धीरे धीरे बलहीन हुआ जाता है, प्राण शरीरसे बाहर हुआ चाहता है और मेरे मर्म्मस्थल इस प्रकार पीड़ित होरहे हैं, कि उससे बारम्बार मेरा चित्त भ्रमित होता है। जब कि निर्बलताके कारण मेरे मुखसे वचन भी बार बार नहीं बाहर होते हैं ; तब मैं धर्म्म उपदेश करनेका किस प्रकार उत्साह कर सकता हूं ? हे दाशार्ह कुलवर्द्धन कृष्ण ! मैं तुमसे क्षमा प्रार्थना करता हूं, आप कृपा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ; मैं कुछ भी नहीं कह सकूंगा ? विशेष करके तुम्हारे समीप उपदेश करनेमें वृहस्पति भी अवसन्न हो सकते हैं ! हे मधुसूदन ! मेरा चित्त इस प्रकार भ्रान्त हो रहा है, कि आकाश, पृथ्वी और दिशा भी मुझे विशेष रूपसे नहीं मालूम होती है ; केवल तुम्हारे तेजके प्रभावसे जीवन धारण कर रहा हूं, इससे धर्म्मराज युधिष्ठिरका जिसमें हित हो ; तुम स्वयं ही उस विषयका उपदेश करो ; क्योंकि तुम वेद-शास्त्रोंके नियन्ता हो। हे कृष्ण ! सब लोकोंके कर्त्ता नित्यपुरुषस्वरूप तुम निकटमें हो उप-स्थित हो, ऐसी अवस्थामें मेरे समान पुरुष किस प्रकार धर्म्मका वक्ता होसकता है ? ऐसा होनेसे जैसे गुरुके उपस्थित रहते कोई शिष्य उपदेष्टा बने, मेरा उपदेश करना भी तुम्हारे समीप वैसा ही समझा जावेगा।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे गङ्गानन्दन भीष्म ! तुमने जो कुछ वचन कहा, वह सब वचन स्वार्थदर्शी, स्थिर-प्रतिज्ञ, महापराक्रमशाली कौरव-शिरोमणि महात्मा भीष्मके योग्य ही है। तुमने जो बाणोंकी पीड़ाका वर्णन किया, उसके शान्त मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देता हूं,—अबसे शारीरिक पीड़ा तथा दाह मूर्च्छा आदि किसी प्रकारकी पीड़ा और भूख प्यास आदिके क्लेश तुम्हारे चित्तको कदापि दुःखित न कर सकेंगे। हे पापरहित ! इस समय तुम्हारे ज्ञानकी प्रतिभा पूरी रीतिसे प्रकाशित होगी ; तुम्हारी बुद्धि अबसे किसी विषयमें भी भ्रमित न होगी। आजसे तुम्हारा चित्त रज और तमोगुणसे रहित होकर केवल सतोगुणमें इस प्रकार स्थित होगा, जैसे चन्द्रमा मेघमण्डलसे मुक्त हो निर्म्मल ज्योतिसे युक्त होकर आकाशमें स्थित होता है। तुम जिस धर्म्म वा अर्थका विचार करोगे, वह विषय तुम्हारी बुद्धिमें पूर्ण रीतिसे प्रकाशित होगा। हे महापराक्रमी ! तुम दिव्य चक्षुके सहारे चार प्रकारके प्राणियोंके सूक्ष्म तत्वोंको जान सकोगे, और वे सब निर्म्मल जलमें स्थित मछ-लियोंकी भांति जिस प्रकार इस संसारमें विच-रण कर रहे हैं ; उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको भी

तुम ज्ञान नेत्रसे सबारे यथार्थ रूपसे देख सकोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण भगवानने जब भीष्मको ऐसा वरदान किया, तब व्यासदेव आदिक ऋषियोंने ऋक् यजु और सामवेदके मन्त्रोंसे उनकी पूजा की, उस समय आकाशसे श्रीकृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऊपर सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फूलोंके समूहों की वर्षा होने लगी, नाना भांतिके बाजे बजने लगे और अप्सरा गीत गाती हुई नृत्य करने लगीं। उस समय वहांपर किसी प्रकारके अनिष्ट विषय नहीं दीख पड़े! सब प्रकारसे सुख जनक शीतल, मन्द और सुगन्ध युक्त वायु बहने लगा, सम्पूर्ण दिशा निर्मल हो गई, मृग आदि, पशु-पच्छी आनन्दित होके शान्त भावसे चारोंओर भ्रमण करने लगे। तिसके अनन्तर जैसे अग्नि भगवान बहुत बड़े बनको भस्म करके जङ्गलके एक भागमें दीख पड़ते हैं वैसे ही सहस्र किरणधारी भगवान सूर्य्य अपने प्रचण्ड तेजसे जगतको तपाके पश्चिम दिशामें दीख पड़े। सूर्य्यको पश्चिम दिशामें देखकर महर्षि लोगोंने सन्ध्योपासना करनेके निमित्त सहसा उठके जनार्द्दन कृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप विदा होनेको प्रार्थना की। महात्मा कृष्ण, पाण्डव लोग, सात्यकि, सञ्जय और कृपाचार्य्य आदि पुरुषोंने उन ऋषि मुनियोंको प्रणाम किया। धर्म्मात्मा ऋषि लोग कृष्ण आदि महात्मा पुरुषोंसे पूर्ण रीतिसे पूजित और सत्कृत होकर कल्ह हम लोग फिर आवेंगे, ऐसा वचन कहके निज निज अभिलषित स्थानोंपर चले गये। तब महात्मा कृष्ण और पाण्डव लोगोंने भीष्मको सम्बोधन करके उनकी प्रदक्षिणा की और फिर अपने उत्तम रथोंपर चढ़के प्रस्थान करनेके निमित्त तैयार हुए। उस समय सुवर्णमय सुन्दर ध्वजा पताकाओंसे शोभित रथ, गरुड़के समान शीघ्र गमन करनेवाले घोड़े और पर्व्वतके समान बड़े शरीर वाले हाथियोंके समूह सज्जित होनेपर गजसवार, रथी घुड़सवार निज वाहनपर और पैदल सेनाके योद्धालोग हाथमें धनुष ग्रहण करके उनकी सङ्ग चलनेको तय्यार हुए। अनन्तर वह चतुरङ्गिनी सेना सज्जित होकर दो भागोंमें विभक्त हुई और भगवान कृष्ण तथा धर्म्मराज युधिष्ठिरके आगे पीछे होकर इस प्रकार गमन करने लगी, जैसे ऋक्षवान पर्व्वतके आगे पीछेसे परिक्रमा करती हुई महानदी नर्मदा गमन करती है। इधर भगवान चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे उस व्यूहबद्ध सेनाके पुरुषोंके चित्तको आनन्दित और प्रचण्ड प्रभाकर औषधियोंमें रस प्रदान करते हुए पूर्व्वदिशामें उदय हुए। तिसके अनन्तर यदुपति कृष्ण, सात्यकि और पाण्डव लोग इन्द्रपुरीके समान लक्ष्मीसे युक्त हस्तिना नगरीमें उपस्थित हुए; और जैसे थका हुआ सिंह पर्व्वतकी कन्दरामें प्रविष्ट होता है वैसे ही उन महात्मा पुरुषोंने उस राज-नगरीमें प्रवेश किया।

५२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर मधुसूदन कृष्णने राजभवनमें गमन करके उत्तम पलङ्गके ऊपर जाके शयन किया, और आधी रात बाकी रहते ही उठके पहिले इन्द्रियों और बुद्धिको स्थिर करके परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान किया। कुछ समयके अनन्तर मनोहर कण्ठ और स्वरोंसे युक्त शास्त्र और पुराणोंके जानने वाले बन्दीजन प्रजापति, विश्वकर्म्मा श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुति करने लगे। उस ही समय सहस्रों ढोल, मृदङ्ग शंख, बीन और बांसुरी आदि बाजे बजने लगे; गीत गानेवाले कोमल स्वरोंसे मीठे गीत गाने लगे। उस समय गीत और बाजोंके शब्दसे पूरित होकर भग-

वान कृष्णका शयनागार इस प्रकार शोभ होता था, मानो ऊंचे स्वरसे हंस रहा है। इधर राजा युधिष्ठिरके निकट भी मङ्गल-जनक स्तुतिपाठ, बाजोंके शब्द और कोमल स्वरोंसे युक्त उत्तम गीत आदि सुनाई देने लगे। तिसके अनन्तर यदुकुल शिरोमणि महाबाहु श्रीकृष्ण-चन्द्र स्नान कर हाथ जोड़कर गुप्त मन्त्रोंका जप किया, और होम कार्य्य समाप्त करके राज मन्दिरके बाहर आये, उस समय चारों वेदोंके जाननेवाले एक हजार ब्राह्मण उनके समीप आकर उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण भगवानने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक गऊ दान की; उन सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने आनन्दित होकर दान ग्रहण करके उनका स्वस्तिवाचन किया। तब कृष्ण सम्पूर्ण मांगलिक वस्तुवोंको स्पर्श करके दर्पणमें अपने स्वरूपका दर्शन करके सात्यकिसे बोले; हे सात्यकि! महातेजस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिर भीष्मके दर्शनकी इच्छासे उनके समीप जानेके वास्ते तैयार हुए हैं, वा नहीं; तुम उनके मन्दिरमें जाके देख आओ।

सात्यकिने कृष्णकी आज्ञा सुनके धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप जाके यह बचन कहा, महाराज! बुद्धिमान कृष्णका रथ सज्जित है, वह गंगानन्दन भीष्मको देखनेकी इच्छासे तुम्हारी प्रतीक्षा करके स्थित हैं; इस समय जो कुछ कर्त्तव्य कार्य्य करना हो, उसे कहिये।

धर्म्मराज युधिष्ठिर सात्यकिका बचन सुन कर अर्जुनसे बोले, हे महा तेजस्वी अर्जुन! तुम मेरे वास्ते उत्तम रथ सज्जित करनेकी आज्ञा दो। आज केवल हम लोग ही कई एक पुरुष महात्मा भीष्मके निकट जावेंगे, सेना के चलने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है; क्यों कि धर्म्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी महात्मा भीष्म पितामहको सेनाके कोलाहलसे क्लेश देना उचित नहीं है; इससे आज तुम सेनाको सङ्ग चलनेके वास्ते निषेध करो। भीष्म पितामह आजसे अत्यन्त गुप्त धर्म्मकथाका उपदेश करेंगे, इससे मैं उस स्थानपर अन्य साधारण पुरुषोंके भीड़की इच्छा नहीं करता हूं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कुन्तीपुत्र महाबाहु अर्जुनने धर्म्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनके शीघ्रही रथ सज्जित कराके उनके समीप आके निवेदन किया। तब धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव पांचों भाई मिलके कृष्णके समीप गये। महात्मा पाण्डवोंके आगमन करते ही श्रीकृष्ण भगवान सात्यकिके सहित अपने रथ पर चढ़े। वे सब पुरुष श्रेष्ठ वीर लोग आपसमें "तुम्हारी सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत हुई?" इत्यादि कुशल प्रश्न करते हुए बादलके शब्द समान अपने रथोंके शब्दसे पृथ्वीको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे। अनन्तर श्रीकृष्णके मेघपुष्प, बलाहक, शैव्य और सुग्रीव नामक चारों घोड़े दारुक सारथीके चलानेपर इस प्रकार वेगपूर्व्वक गमन करने लगे, मानो आकाश मार्गसे उड़ जाते हैं। इसी भांति महात्मा पाण्डवोंके रथ भी शीघ्रताके सहित गमन करने लगे, अधिक क्या कहा जावे? क्षणभरमें वे सब रथ कुरुक्षेत्र नामक धर्म्मक्षेत्रमें आके उपस्थित हुए और क्रमसे जिस स्थानमें देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माकी भांति भीष्म महर्षियोंसे घिरे हुए शरशय्यापर शयन कर रहे थे, उनके समीप आके स्थित हुए। तब श्रीकृष्ण, धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, गाण्डीवधारी अर्जुन, नकुल, सहदेव और सात्यकि आदि महातेजस्वी पुरुष रथसे उतरे और दहिने हाथसे ऋषियोंकी पूजा की। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने तारामण्डलसे युक्त चन्द्रमाकी भांति भाइयोंके बीच घिरकर उपदेश ग्रहणकी अभिलाषासे इस प्रकार गङ्गानन्दन भीष्मके समीप गमन किया, जैसे इन्द्र देवतोंके सहित ब्रह्माके निकट गमन करते हैं। उन्होंने

उस स्थानमें स्थित होकर भययुक्त चित्तसे स्वर्ग भ्रष्ट आदित्यके समान शरशय्यापर महाबाहु भीष्म पितामहका दर्शन किया।

५३ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे महार्षि! उस भयङ्कर वीर समागममें सम्पूर्ण सेनाके नष्ट होनेके अनन्तर वीर-शय्यारूपी शरशय्यापर शयन करते हुए सत्यवादी, जितेन्द्रिय, महा-पराक्रमी, पुरुषसिंह गङ्गादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए शान्तनुपुत्र महातजस्वी धर्मात्मा भीष्म पितामहने पाण्डवोंसे उपासित होकर जिन कथाओंका प्रसंग किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नारद आदि सिद्ध महर्षि लोग और अन्धराज धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और युद्धमें मरनेसे बच हुए राजा लोग दूसरे दिन सवेरा होते ही कुरु पाण्डवोंके पितामह कुलधुरन्धर गंगानन्दन भीष्मके समीप गमन करके उन्हें आकाशभ्रष्ट सूर्य्यकी भांति शरश-य्यापर शयन करते देखकर आक्षेप करने लगे अनन्तर देवर्षि नारद मुनिने मुहूर्त्त भर तक चिन्ता करके युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजाओं और पाण्डवोंसे बोले, देखो सूर्य्यके अस्त होनेकी भांति गगानन्दन भीष्मका मृत्युकाल निकट-वर्त्ती हुआ है, इससे तुम लोगोंको जो कुछ पूछना हो, उसे इस ही समय पूछ लो; क्योंकि इस समय महात्मा भीष्मने प्राण त्यागनेका सङ्कल्प किया है, इससे तुम लोग धर्म्म शिक्षा लाभे प्रवृत्त होजाओ; ये चारों वर्णोंके धर्म्म विविध रूपसे जानते हैं। हे राजा लोगों! तुम लोग मेरा वचन चित्तलगाके सुनो, यह ज्ञान वृद्ध भीष्म अवश्य ही शरीर त्यागके परलोकमें गमन करेंगे; तुम लोगोंको जिस विषयमें संशय हो, वह इनसे पूछके अपनी शङ्का निवारण करो। राजा लोग नारद मुनिके वचनोंको सुनके सब कोई भीष्मके निकट उपस्थित हुए। परन्तु किसी विषयमें कुछ प्रश्न करनेमें समर्थ न हुए, वे सब कोई आपसमें एक दूसरेके मुखकी ओर देखने लगे। उस समय पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर हृषीकेश कृष्णसे बोले, हे देवकी नन्दन! हे मधुसूदन! हे यदुकुल भूषण! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष पितामहके निकट प्रश्न करनेमें समर्थ होगा? हे भ्राता! हम सब लोगोंके बीच तुम ही पूर्णरीतिसे धर्म्म विषयके जाननेवाले हो, इससे पहिले तुम्हीं पितामहके समीप प्रश्न करो।

अनन्तर उस समय श्रीकृष्ण भगवान युधिष्ठिरके वचनको सुनके महात्मा भीष्मके निकट गमन करके यह वचन बोले, हे राजसत्तम! गत रात्रि तुमने सुखसे व्यतीत की है न? तुम्हारी बुद्धि भली भांति स्थिर तो है? हे पाप रहित! तुम्हारा ज्ञान अच्छी प्रकार प्रकाशित तो है? तुम्हारा चित्त पीड़ासे कातर होकर व्याकुल तो नहीं है?

भीष्म बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! कल्ह जो तुमने प्रसन्न होकर मुझे वरदान दिया, तभीसे मेरे शरीरसे मोह, थकावट, दाह खिन्नता, ग्लानि और सम्पूर्ण पीड़ा दूर होगई है। हे अच्युत! हे महातजस्वी! तुम्हारे वर-दानके प्रभावसे मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्यत इन तीनों कालोंके सम्पूर्ण विषयोंको हाथमें स्थित फलकी भांति और वेदशास्त्रोंमें जो कुछ धर्म्म आदिक विषय वर्णित हुए हैं, उसे प्रत्यक्षकी भांति अवलोकनकर रहा हूं। हे जनार्द्दन! देश, जाति और कुलविषयक तथा महात्मा पुरुषोंके कहे हुए जो कुछ धर्म्म हैं, वह मेरे अन्तःकरणमें स्थित हैं। हे जनार्द्दन! तुम्हारी कृपासे मेरा मन कल्याण करनेवाली बुद्धिसे युक्त हुआ है, इससे सम्पूर्ण राजधर्म्म, ब्रह्मचर्य्य,

गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यास आदि चारों आश्रम सम्बन्धीय धर्म्मोंके जो कुछ उद्देश्य हैं, वे सब मुझे मालूम हुए हैं। जिन स्थलोंमें जो कुछ कहना उचित है, मैं उसे कहूंगा। अधिक क्या कहूं, तुम्हारे ध्यानके प्रभावसे मेरे शरीरमें फिर युवा अवस्थाके समान बल प्राप्त हुआ है; उससे अब मैं लोकहितकर धर्म्मकथाको कहनेमें समर्थ होऊंगा; परन्तु तुम किस कारणसे धर्म्मराज युधिष्ठिरको धर्म्मोपदेश नहीं करते हो! इस विषयमें तुम्हारा क्या विचार है, उसे शीघ्र मेरे समीप प्रकाशित करो।

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र भीष्मका वचन सुनके उनसे बोले, हे कौरव! तुम कल्याण और कीर्त्तिका मूल कारण मुझे ही समझो, सत् और असत् भाव मुझसे ही प्रकट हुए हैं। देखिये यदि कोई चन्द्रमाको शीत-किरणवाला कहके प्रशंसा करे, तो कोई पुरुष इसमें आश्चर्य नहीं कर सक्ता। इसी भांति कृष्ण "कीर्त्तिपूर्ण हैं" कहके यदि कोई पुरुष मेरा गुण वर्णन करे तो इसमें कोई भी आश्चर्ययुक्त नहीं हो सक्ता। हे महातेजस्वी! मैंने इस पृथ्वीपर तुम्हारे यशको अधिक विस्तार करनेकी अभिलाषासे तुम्हें निर्म्मल बुद्धि प्रदान की है। जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक तुम्हारी यह अक्षय कीर्त्ति जगत्के बीच प्रकाशित रहेगी। हे भीष्म! तुम प्रश्नके अनुसार धर्म्मराज युधिष्ठिरको जो कुछ धर्म्मका उपदेश करोगे, वे सब तुम्हारे उपदेश वचन वेदवाक्यके समान जगतके बीच प्रमाणिक होंगे। जो पुरुष उस प्रमाणके अनुसार लोकयात्रा निर्व्वाह करेंगे, वे परलोकमें सम्पूर्ण पुण्यफलोंको भोगनेमें समर्थ होंगे। हे भीष्म! पृथ्वीमें किस प्रकार तुम्हारा यश विस्तार होगा इस विषयको विचार कर मैंने तुम्हें दिव्य बुद्धि प्रदान की है। इस पृथ्वीपर जबतक लोग किसी पुरुषके यशको गाया करते हैं, तबतक वह यश मान हो उसकी अक्षय कीर्त्तिका मल समझा जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! कुरुक्षेत्रकी युद्धमें मरनेसे बचेहुए राजा लोग धर्म्म जिज्ञासु होकर तुम्हारे चारों ओर स्थित हैं; तुम इन लोगोंको राजधर्म्मोपदेश करो। तुम अवस्थामें सबसे वृद्ध वैदिक और लौकिक आचारोंसे युक्त और राजधर्म्म आदि सम्पूर्ण धर्म्मोंके जाननेवाले हो; जन्मसे आजपर्य्यन्त कोई पुरुष तुम्हारा कुछ भी पापाचरण नहीं देख सका; विशेष करके पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा लोग तुम्हें सब धर्म्मोंका जाननेवाला समझते हैं, क्यों कि बाल्यावस्थासे ही तुमने देवता और ऋषियोंकी उपासना करी है; इससे जैसे पिता पुत्रोंको उत्तम नीति उपदेश करता है, वैसे ही तुम भी इन राजाओंको धर्म्मका उपदेश करो प्राचीन पण्डितोंने धर्म्मविषय ऐसा कहा है, कि धर्म्म जिज्ञासु होकर प्रश्न करे, तो उसे धर्म्मोपदेश करना उचित है इससे धर्म्म विषय सुननेके अभिलाषी राजाओंको उपदेश करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य्य है। हे विद्वन्! धर्म्मजिज्ञासु पुरुषको उपदेश न करनेसे पापमें फंसना होता है; ऐसा ही शास्त्रोंमें वर्णित है; इससे तुम्हारे ये पुत्र तथा पौत्र लोग धर्म्मजिज्ञासु होकर जो कुछ प्रश्न करें, तुम प्रश्नके अनुसार ही उन लोगोंको धर्म्मोपदेश करो

५४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर कौरवोंमें मुख्य महातेजस्वी भीष्म यह वचन बोले, हे गोविन्द! तुम सब प्राणियोंके नित्य आत्मस्वरूप हो; तुम्हारी कृपासे मेरा वचन और मन दृढ़ हुआ है; इससे मैं प्रसन्नताके सहित धर्म्मकथा कहूंगा; परन्तु कोई धर्म्मात्मा पुरुष धर्म्मविषयमें मुझसे प्रश्न करे, तो मैं प्रीतिपूर्व्वक धर्म्मविषयको व्याख्या करूंगा। जिस धर्म्म-

शील महात्मा पुरुषके जन्म लेनेपर वृष्णि लोग आनन्द सागरमें मग्न हुए थे ; वह पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न करे। यशस्वी, धर्म्मचारी कौरवोंके बीच कोई भी जिसके समान नहीं है ; धृति, दम, ब्रह्मचर्य्य, क्षमा, धर्म्म, तेज, और बल जिसमें सदा विद्यमान रहता है ; जो सम्बन्धी, सेवक, अतिथि और आश्रितोंको यथायोग्य आदरके सहित सम्मानित करते हैं ; सत्य, दान, तपस्या, वीरता, शान्ति, दक्षता और सावधानता आदि सम्पूर्ण धर्म्म जिसमें सदासर्व्वदा विराजमान रहते हैं, जो धर्म्मात्मा काम, क्रोध, भय, लोभ और अर्थके वशमें होकर कदापि अधर्म्म कार्य्योंमें प्रवृत्त नहीं होते ; जो सत्य, क्षमा और ज्ञान विषयमें सदा दृढ़ताके सहित स्थित रहते हैं ; जो यज्ञ, अध्ययन, धर्म्म और शान्तिमार्गमें सर्व्वदा रत रहते हैं, जिन्होंने धर्म्मके सम्पूर्ण रहस्योंको सुना है ; वही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे धर्म्म विषयमें प्रश्न करें।

भीष्मका इतना वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे कौरव शिरोमणि ! धर्म्मराज युधिष्ठिरने गुरु आदि पूज्य पुरुषों और सेवक, सम्बन्धी, ब्रह्मवादी भक्त और माननीय पुरुषोंका कुरुक्षेत्रके युद्धमें वध किया है ; इसी कारण अत्यन्त लज्जित होकर आपके भयसे भयभीत हुए हैं ; इसीसे वह तुम्हारे सम्मुख आनेमें समर्थ नहीं होते हैं ; क्यों कि जिन लोगोंका नाना भांतिकी वस्तुओंसे सम्मान करना उचित था, उनके शरीरका अस्त्रोंसे छेदन किया है ; इस ही निमित्त धर्म्मराज युधिष्ठिर तुम्हारी दृष्टिके सम्मुख नहीं स्थित होसकते हैं।

भीष्म बोले, हे कृष्ण ! जैसे ब्राह्मणोंके निमित्त दान, अध्ययन और तपस्या ही धर्म्म है वैसे ही क्षत्रियोंके निमित्त युद्धमें शत्रुओंके शरीरको अस्त्रोंसे छेदन करना ही धर्म्म है। पिता, पितामह, भ्राता, गुरु, सम्बन्धी आदिक कोई क्यों न हों यदि वे लोग निरर्थक आके युद्धमें प्रवृत्त हों, तो उस ही समय उनका वध करना उचित है, क्यों कि यही क्षत्रियोंका धर्म्म है, शास्त्रोंमें ऐसा ही वर्णित है। हे कृष्ण ! जो नियम उल्लङ्घन करनेवाले, लोभी अत्याचारी गुरुका युद्धभूमिमें वध करते हैं, वेही धर्म्मात्मा क्षत्रिय हैं। जो पुरुष लाभके वशमें होकर सनातन धर्म्म मार्गको उल्लङ्घन करते हैं, उनके मारनेवाले क्षत्रिय ही धर्म्मात्मा कहे जाते हैं। जो युद्धमें प्रवृत होकर इस पृथ्वीको रुधिररूपी जल, केशरूपी तृण, हाथी रूपी पर्व्वत और ध्वजा पताका रूपी वृक्षोंसे परिपूरित करनेमें समर्थ हैं ; वेही धर्म्मात्मा क्षत्रिय कहे जाते हैं। युद्धमें आह्वान करनेपर अपना आत्मीय और पराया विचार न करके श्रेष्ठ क्षत्रिय पुरुषोंको उनके संग युद्धमें प्रवृत्त होना उचित है; क्योंकि भगवान मनुने धर्म्म युद्धको क्षत्रियोंके निमित्त इस लोक और परलोकमें कल्याण दायक कहके वर्णन किया है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिरने भीष्मका वचन सुनके अत्यन्त विनीत भावसे उनके दृष्टिके सम्मुख उपस्थित होकर उनके दोनों चरणोंको छूके उन्हें प्रणाम किया। तब सम्पूर्ण धनुद्धारियोंमें अग्रणी भीष्मने उनका मस्तक सूंघके उन्हें आनन्दित किया। अनन्तर महातेजस्वी भीष्म युधिष्ठिरको बैठनेकी आज्ञा देकर यह वचन बोले, हे कुरुकुल तिलक ! हे तात ! तुम कुछ भी शङ्का मत करो, तुम निर्भयताके सहित शुद्ध चित्तसे मेरे समीप प्रश्न करो।

५५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्म्मराजयुधिष्ठिरने हृषीकेश कृष्ण और भीष्मको

प्रणाम करके उस स्थलमें स्थित गुरुजनोंको अनुमतिसे प्रश्न करना आरम्भ किया । हे पितामह ! धर्म्म जाननेवाले पुरुष राजधर्म्मको ही परमधर्म्म समझते हैं और मैं भी उसके भारको ग्रहण करना अत्यन्त कठिन समझता हूं ; इससे आप विशेष करके राजधर्म्मका ही वर्णन करिये राजधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनका अवलम्ब रूप है ; क्योंकि धर्म्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग और मोक्षधर्म्म ये सब पूर्णरीतिसे राजधर्म्मसे ही सिद्ध होसकते हैं। जैसे घोड़ेको लगाम और हाथियोंको अङ्कुश नियममें स्थित रखता है, वैसे ही राज्यधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंको यथायोग्य नियमोंमें स्थित रखता है। यदि राज-ऋषियोंसे सेवित राजधर्म्ममें पुरुषोंको मोह उपस्थित होवे, तो सम्पूर्ण नियम तितर बितर होजाते हैं और उससे सम्पूर्ण प्रजा दुःख-सागरमें व्याकुल होजाती है। जैसे सूर्य्य उदय होकर महाघोर अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही राजधर्म्मसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी अशुभ गति निवारित होती है। हे पितामह ! आप इस भरतकुलमें तथा सम्पूर्णधर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं, इससे पहिले मुझे राजधर्म्मका उपदेश कीजिये। हे शत्रुनाशन ! जब कि श्रीकृष्ण भी आपका परमज्ञानी समझते हैं, तो आपके निकट धर्म्म उपदेश सुनना ही हम लोगोंके निमित्त कल्याणकारी है

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म्मको नमस्कार करके नित्य धर्म्मकी व्याख्या करूंगा। हे तात युधिष्ठिर ! मैं सम्पूर्ण रूपसे राजधर्म्मका निश्चय करके कहता हूं, तुम चित्त लगाके पूर्ण रीतिसे राज्यधर्म्म तथा अन्य धर्म्म भी जिसके सुननेकी तुम्हारी इच्छा हो। मुझसे सुनो। राजा क्षत्रिय न होनेपर भी प्रजाके अनुरागपात्र होनेके निमित्त शास्त्रविधिके अनुसार देवता, ब्राह्मणोंमें श्रद्धा और भक्ति प्रकाश करे। राजा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे उनसे अऋणी होकर सम्पूर्ण प्रजाका श्रद्धाभाजन होता है। हे पुत्र युधिष्ठिर ! तुम सदासर्व्वदा पुरुषार्थके निमित्त यत्न करना, पुरुषके उद्योगके बिना केवल दैवके आसरे राजाओंके कार्य्य नहीं सिद्ध होसकते ; भाग्य और पुरुषार्थ समान होनेपर भी मैं पुरुषार्थको श्रेष्ठ समझता हूं ; क्योंकि पुरुषार्थ लोगोंको प्रत्यक्षही फल देता है और भाग्य भी किये हुए पूर्व्व पुरुषार्थका फल मात्र है। पुरुषार्थ करनेसे यदि आरम्भ किये हुए कर्म्मोंकेफल सिद्ध न होवें, तो पुरुष लोकापवादसे, और फल सिद्ध होनेसे दुःखोंसे मुक्त होसकता है। हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! यदि दैवो संयोगसे आरम्भ किया हुआ कर्म्म निष्फल होजावे, तौभी मनमें कदापि दुखित होना नहीं चाहिये ; फिर द्विगुणित यत्नके सहित उसे सिद्ध करनेके निमित्त कार्य्यमें प्रवृत्त होना उचित है ; क्योंकि यही राजाओंकी परम नीति है। परन्तु सत्य जिस प्रकार राजाओंके कार्य्यको सिद्ध करनेवाला है, वैसा दूसरे किसी यत्नसे भी राजाओंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते ; सत्यमें तत्पर रहनेवाले राजा इस लोक और परलोकमें परम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। हे राजेन्द्र ! सत्य ऋषियोंका भी परम धन है और राजाओंका भी विश्वास उत्पन्न करानेका कारण सत्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है, गुणवान, शीलयुक्त, दयावान, सत्यवादी धर्म्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, प्रजाके ऊपर प्रीति करनेवाले उदार राजा कदापि श्रीभ्रष्ट नहीं होते।

हे कुरुनन्दन ! अपने छिद्रोंको छिपाना और पराये छिद्रको अन्वेषण करते हुए अपने विचारोंको गुप्त रखना और न्यायके अनुसार विचार पूर्व्वक समस्त कार्य्योंमें सरलता अवलम्बन करना चाहिये। राजाके मृदुभाव अवलम्बन करनेसे सम्पूर्ण प्रजा उसके नियमोंको अतिक्रम करती है और कठोर भाव

ग्रहण करनेसे सब कोई उसके भयसे व्याकुल होते हैं; इससे तुम्हें यथा योग्य कोमलता और कठोरता दोनों ही 'अवलम्बन' करना उचित है। हे पाण्डुपुत्र उदारबुद्धि युधिष्ठिर ! तुम कदापि ब्राह्मणोंको दण्ड विधान मत करना; क्यों कि इस लोकमें तपके प्रभावसे ब्राह्मण ही सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। हे राजेन्द्र ! मनुभगवानने इस विषयमें दो श्लोक कहे हैं, तुम्हें निज धर्म्मविषयमें उन दोनों श्लोकोंको हृदयङ्गम करना उचित है। "जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है; इससे उनका तेज सम्पूर्ण स्थानोंमें पूर्ण होनेपर भी सयोनिमें शान्त होजाता है। जिस समय लोह पत्थरको विदीर्ण करता है अग्नि जलको सुखाती है, क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं; उस समय वे शीघ्र ही तेजभ्रष्ट होके नष्ट होते हैं।" हे राजेन्द्र! इससे ब्राह्मण लोग सदा प्रणाम करने योग्य हैं; श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग पूर्ण रीतिसे पूजित होनेसे वेद और यज्ञोंको धारण करते हैं।

हे भरतर्षभ ! जो पुरुष ब्राह्मणोंके योग्य सम्मान लाभकी अभिलाषा करे, उन्हें बाहु-बलके सहारे पराजित करके दण्ड देना उचित है। हे तात ! पहिले समयमें महर्षि शुक्राचार्य्यने जो श्लोक कहा था, उसे तुम चित्त लगाके सुनो। "वेदवेदान्त जाननेवाला ब्राह्मण यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्धभूमिमें आगमन करे, तो धर्म्मात्मा राजा शस्त्र आदिकोंके प्रभावसे उसे बांधके कैद करे, परन्तु कदापि उसका वध न करे, जो आततायी पुरुषोंसे नष्ट होते हुए धर्म्मकी सब भांतिसे रक्षा करते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले धर्म्मात्मा राजा कहाते हैं; आततायी पुरुषोंका वध करनेसे पाप नहीं होता। आततायीका क्रोध ही दूसरेको उत्तेजित करके अपना नाश कराता है, इससे आततायीके मारनेसे पाप नहीं होता। हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अपराध करे, तो उसे राज्यसे बाहर करना चाहिये; परन्तु प्राण नाश करना उचित नहीं है। हे प्रजानाथ ! ब्राह्मण यदि परस्त्रीके सङ्ग व्यभिचार दोषसे अपवाद युक्त होवे, तौभी उसके ऊपर कृपा प्रकाश करना कर्त्तव्य है। ब्रह्महत्या, विमाता सहवास और भ्रूणहत्या आदि तीन प्रकारके पापग्रस्त तथा राजद्रोही होने पर उसे निजराज्यसे बाहर करना उचित है; परन्तु बेत-कोडोंकी चोटसे उसके शरीरको पीड़ित करना वा शारीरक दण्ड देना उचित नहीं है। जो लोग ब्राह्मणोंमें भक्ति करते हैं, उन्हें ही प्रिय समझके निज कार्य्योंमें नियुक्त करना चाहिये, क्यों कि राजाओंके चाहे कितनाही धन रत्नसे युक्त खजाना क्यों न होवे, ब्राह्मण भक्त पुरुषोंके संग्रहकी अपेक्षा कोई भी कोष उत्तम नहीं कहे जा सकते ! महाराज ! पण्डित लोग मरु, (बालुकामय स्थान) जल, भूमि बन, पर्व्वत और मनुष्य आदि छः और बाकी सब भांतिके दुर्ग किलासे) मनुष्य दुर्गको ही श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं; इससे बुद्धिमान राजाओंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णको प्रजाके ऊपर दया प्रकाशित करनी उचित है। राजाके धर्म्मात्मा और सत्यवादी होनेसे सम्पूर्ण प्रजा उस पर अनुरक्त होती है। हे पुत्र ! तुम सब जातिकी प्रजा समूहके विषयमें क्षमा प्रकाशित न करना, क्यों कि राजा क्षमाशील हाथीके समान मृदुस्वभाव युक्त होनेसे धर्म्म विरोधी कहे जाते हैं। महाराज ! इस विषयमें बृहस्पति प्रणीत शास्त्रमें जो श्लोक कथित है, उसे मैं वर्णन करता हूं, चित्त स्थिर करके सुनो ! जैसे महावत क्षमाशील हाथीके मस्तकपर ही चढ़नेकी इच्छा करता है, वैसे ही राजाके क्षमाशील होनेपर नीच पुरुष उसकी आज्ञाको उल्लङ्घन करके मनमाना कार्य्य करते

हैं; इससे जैसे बसन्त ऋतुके सूर्य्य अत्यन्त शीतल और प्रचण्ड किरणधारी तथा बहुत तेजस्वी नहीं होते, वैसे ही राजाको भी सदा अत्यन्त कठोर भाव अवलम्बन करना उचित नहीं है। महाराज! प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम आदि प्रमाणोंसे शत्रु-मित्रोंकी सदा परीक्षा करनी उचित है। हे राजेन्द्र! तुम मृगया आदि सम्पूर्ण व्यसनोंको परित्याग करो; परन्तु एकबारगी परित्याग न करके केवल मात्र उसमें आसक्ति रहित होना ही उचित है। क्योंकि व्यसनोंमें फंसे हुए पुरुष सदा कुत्सित होते हैं। राजा यदि प्रजाद्रोही होवे, तो राजा प्रजामें विरोध बढ़ता है; इससे गर्भ धारण करनेवाली माता जैसे गर्भस्थित बालकके निमित्त व्यवहार करती है; वैसे ही राजाको भी प्रजाको पालन करना योग्य है। महाराज! जिस कारणसे ऐसी उपमा दीगई है, उसे सुनिये जैसे गर्भधारिणी माता अपने इच्छानुसार निज इष्ट वस्तुओंको त्यागके भी गर्भस्थ बालकके कल्याणकी चेष्टा करती है, उसी भांति प्रजा समूहके मङ्गलकी इच्छासे राजाको भी कार्य्य करना उचित है। हे कुरुनन्दन! जिन कार्य्योंके करनेसे प्रजाका कल्याण हो, अपने मनकी अभिलाषा त्यागके भी सदा उस ही धर्म्मका अनुगामी होना चाहिये। हे पाण्डुनन्दन! तुम कभी धीरज रहित मत होना, क्यों कि राजाके धीर और दण्डधारी होनेसे उसे कहीं भय उपस्थित नहीं होता। हे राजशार्दूल! सेवकोंके सङ्ग सदा परिहास करना उचित नहीं है; क्यों कि उससे जो दोष उत्पन्न होते हैं, मैं उन्हें वर्णन करता हूं। उपजीवी सेवकोंके सङ्ग सदा सहवास करनेसे वे लोग स्वामीका पूर्णरीतिसे सम्मान नहीं करते; मर्य्यादा अतिक्रम करके स्वामीकी आज्ञा उल्लङ्घन करते हैं; कार्य्योंके विचारके समय सम्पूर्ण कार्य्योंमें संशय उत्पन्न करते, गोपन करने योग्य छिद्रोंको प्रकाशित कर देते हैं; जो वस्तु मांगने योग्य नहीं है, उन्हें भी मांगते हैं; राजाके सम्मुखमें ही उसके भोजनकी वस्तुओंको खाते और उसके ऊपर क्रोध कर राजाकी शुद्धिसे भी अपनी बुद्धिकी श्रेष्ठता प्रकाशित करते हैं। महाराज! अधिक क्या कहा जावे, वे लोग राजशासन अतिक्रम करके लोगोंसे घूस लेकर राजाके समीप उनके मिथ्या गुण दोषोंको वर्णन करके सम्पूर्ण कार्य्योंको नष्ट कर देते हैं; कृत्रिम आज्ञापत्र बनाके राज अधिकृत देशोंको निःसार करते हैं; राजा जैसा वस्त्र पहिनता है, वे लोग भी वैसे ही वस्त्रोंको पहनके राजाकी समानता करते और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके ऊपर आसक्त होकर क्रमसे अन्तःपुरके बीच प्रवेश करने की भी इच्छा करते हैं। हे राजशार्दूल! वैसे सेवक लोग ऐसे निर्लज्ज होजाते हैं, कि राजाके सम्मुखमें ही वायु करने योग्य वस्तुओंको ग्रहण करके अपने शरीरपर वायु करते और राजाके अत्यन्त गुप्त विषयोंको भी दूसरेके निकट प्रकाशित कर देते हैं। राजाके मृदु स्वभाव और परिहास युक्त होनेसे उपजीवी सेवक लोग राजाका अनादर करके उनके समान ही घोड़े, हाथी और रथोंपर चढ़नेकी अभिलाषा करते हैं। वे लोग सुहृद पुरुषोंसे युक्त सभाके बीचमें ही राजाको कहा करते हैं, हे राजन्! आप इस कार्य्यको करनेमें समर्थ न होंगे और यह आपकी दुरभिसन्धि है। राजाके क्रोध करने पर वे लोग हंसी करते और यदि राजा सत्कार करें, तो उस समय वे लोग उसे गोपन करके अन्य कारणोंसे हर्षित होते हैं। वे लोग खिलवाड़की भांति राजाज्ञाकी अवज्ञा करके उसके दुष्कर्म्मोंको प्रकाशित करते और मन्त्रणा तथा विचारको भेदकर दूसरेके निकट प्रकाशित कर देते हैं।

५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राजाको सदा उद्यमशील होना उचित है; क्योंकि राजा स्त्रियोंकी भांति उद्यम रहित होनेसे प्रशंसा प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। हे धर्मो धर्मयुक्त महाराज! इस विषयमें भगवान भृगुनन्दनने जो श्लोक कहा है, उसे मैं कहता हूं। जैसे सर्प बिलमें रहनेवाले चूहे आदि जन्तुओंको ग्रास करता है, वैसे ही भूमि विरोध रहित राजाको और जो वेदाध्ययनके निमित्त देशान्तरोंमें गमन नहीं करते, वैसे ब्राह्मण वा यतीको ग्रास करती है, अर्थात् वैसे राजा और ब्राह्मण शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं। हे पुरुषसिंह! मेरा यह उपदेश तुम्हारे अन्तःकरणमें सदा विराजमान रहे, अर्थात् जिसके सङ्ग सन्धि करना उचित है, उसके सङ्ग सन्धि करे और जिसके साथ विरोध करना योग्य है, उससे विरोध करे। जो स्वामी, अनुयायी सेवक सुहृदमित्र कोष राष्ट्र, किला और बल इन सप्ताङ्ग युक्त राज्य अथवा इसमें किसी एक अङ्गके सङ्ग विरुद्ध आचरण करे, तो मित्र अथवा गुरु होने पर भी उसका प्राणनाश करना उचित है। हे राजेन्द्र! इस विषयमें बृहस्पतिमतके अनुसार मरुतराजने राजाओंके कर्त्तव्य कर्ममें एक श्लोक कहा था, उसे सुनो। गुरु कार्य्याकार्य्य विवेकसे हीन, गर्वित और कुमार्गी हो, तो उसे राज्यसे निकाल देना चाहिये। महाराज! पहिले समयमें सगर पुत्र असमञ्जा पुरवासियोंके बालकोंको बल पूर्व्वक सरयू नदीमें डुबा देता था, इसी कारण बाहुपुत्र बुद्धिमान सगरने पुरवासियोंके हितकी अभिलाषासे अपने जेष्ट पुत्र असमञ्जाको निन्दा करके उसे राज्यसे निकाल दिया था। महातपस्वी श्वेतकेतु अतिथि सत्कार करूंगा कहके वृथा निमन्त्रण कर आता था, इस ही कारण पिताके प्रियपात्र होनेपर भी उसके पिता उद्दालक मुनिने उसे परित्याग किया था। इससे सदा प्रजा रञ्जनमें प्रवृत्त रहना, सत्यकी रक्षा और प्रजापालन ही राजाओंका सनातन धर्म है। पराये धनके वास्ते लोभ करना राजाको योग्य नहीं, सेवकोंको यथा समय पर वेतन प्रदान करना उचित है। महाराज! राजा लोग सत्यवादी क्षमाशील और पराक्रम युक्त होनेसे ही निर्द्दिष्टमार्गसे विचलित नहीं होते। जिसने क्रोध और मनकी वृत्तियोंको वशीभूत किया है, शास्त्रमें कहे हुए वचनोंमें जिसे अविश्वास नहीं है; जो सदा धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुवर्गोंमें रत रहते हैं, जिनके विचारको दूसरे पुरुष नहीं जान सकते; ऐसी विविध शक्तिसे युक्त पुरुष ही राजा होने योग्य हैं। हे राजन्! साधारण पुरुषोंके निकट मन्त्रणा प्रकाशित होनेकी अपेक्षा राजाओंको इससे बढ़के और दूसरा कोई भी सङ्कट नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके धर्म्मको रक्षा करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है; क्योंकि धर्म्म शङ्कर होनेसे प्रजाको बचाना ही राजाओंका सनातन धर्म्म है। यद्यपि किसीका विश्वास न करके स्वजनोंका विश्वास करना ही राजाओंको उचित है, तथापि उन लोगोंके विषयमें भी पूर्ण रीतिसे विश्वास करना अनुचित है। राजा निज बुद्धिसे बलवानके सङ्ग सन्धि करे, अपने समान पुरुषके साथ विग्रह, अपनेसे निर्व्वल राजाओंके दुर्ग आदिको आक्रमण करना और स्वयं निर्व्वल होनेसे निज दुर्गके आसरे निवास करना इत्यादि राजनीतिके परिणाम रूपी फल जय और पराजयका विचार करके कार्य्य करे, जो राजा अपने छिद्रोंको गोपन करके शत्रुओंके छिद्रोंको देखता है, वह धर्म्म, अर्थ और काम इन त्रिवर्गोंके यथार्थ तत्वको जानता है। जो यथा योग्य स्थानोंमें जासूसोंको नियुक्त करके शत्रुपक्षीय सेवकोंके बीच धन देकर भी उन लोगोंके बीच भेद उत्पन्न करा

सकता है; वह सबके निकट प्रशंसा प्राप्तके योग्य है। यमराजके समान प्रभावशाली, और सद्विचारक, कुवेरके तुल्य कोष सञ्चयमें रत नाश और वृद्धिजनक कार्य्योंके अवस्था विशेषके गुण दोषोंको मालूम करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है। राजा भूखोंको भोजन देनेवाला, सखी पुरुषोंके तत्वोंको जाननेवाला, वृद्धोंका उपासक, आलसरहित, लोभहीन और प्रसन्न चित्तवाला होवे। महाराज! सदा प्रसन्न रहना साधु पुरुषोंके गमन करने योग्य मार्गसे विचरण करना और प्रजासमूहके संग हंसके प्रसन्नता सहित उन्हें आनन्दित करना राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है। साधु पुरुषोंसे कर लेना उचित नहीं है, वरन दुष्ट पुरुषोंके धनको छीनके साधुओंको दान करना उचित है। राजाको युद्धविद्यामें निपुण, यथा समयमें दान देनेवाला, शुद्धाचारी जितेन्द्रिय, यथा समयपर भोजन करनेवाला तथा मनोहर भूषणोंको धारण करनेवाला होना चाहिये, जो सब मनुष्य शूरवीर, स्वामी-भक्त, रोगहीन उत्तम शिष्टाचार और परिवार-युक्त, विद्वान, धार्म्मिक, साधु और स्थिरस्वभाव-वाले हैं; जो दूसरेसे प्रतारित नहीं होते, किसीकी अवमानना नहीं करते, सब लोगोंके चरित्रोंको जानते परलोकको मानते और ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा करते हैं; राजा वैसे ही पुरुषोंको अपना सहायक बनाकर उनके संग समान भावसे विषयादिकोंको भोगे; केवल मात्र छत्रधारण और राजाज्ञाप्रचार करनेमें ही राजाकी उन लोगोंसे अधिकता रहती है। महाराज! प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकारकी वृत्तिको समभावसे परीक्षा करके कार्य्यमें प्रवृत्त होनेसे राजाको दुखभागी नहीं होना पड़ता। राजा यदि किसीका भी विश्वास न करे, अथवा लोभके वशमें होकर दूसरकी वृत्तिमें व्यर्थ दोष लगाके उसके धनको हरण करे, तो उसके स्वजन पुरुष थोड़े ही समयमें उसका नाश कर देते हैं, जो शुद्धचरित्रवाले राजा सदासर्व्वदा प्रजा-समूहको आनन्दित करनेमें प्रवृत्त रहते हैं, वह कभी भी शत्रुओंसे पराजित होके स्थान-भ्रष्ट नहीं होते; यदि शत्रुओंसे पराजित भी होवें; तौभी वह शीघ्र ही निज पदपर फिर प्रतिष्ठित होते हैं। राजा यदि क्रोधहीन मृदु दण्ड देनेवाला, जितेन्द्रिय होके मृगयादिक व्यसनोंमें आसक्त न होवे, तो वह हिमालयके समान स्थिर होकर सम्पूर्ण प्रजाका विश्वास पात्र होता है। जो राजा बुद्धिमान, दानशील, धर्म्मात्मा, पराये छिद्रोंका अनुसन्धान करनेवाला प्रसन्नमुख, चारों वर्णोंको यथा नियमोंमें स्थित करनेवाला, क्रोधरहित, मनस्वी, क्रियावान, आत्मश्लाघा रहित होकर योगाभ्यासमें रत रहता है; और जिसके सेवक लोग भी क्रोधरहित चित्तसे राजकार्य्योंमें तत्पर रहते तथा जिसके अनुष्ठित कार्य्य निर्व्विघ्नताके सहित समाप्त होते हैं; वह राजसत्तम कहाता है। जैसे पुत्र पिताके गृहमें निर्भयचित्तसे निवास करते हैं, वैसे ही जिसके राज्य में सम्पूर्ण मनुष्य निर्भयताके सहित सब स्थानोंमें भ्रमण करते हैं; वह भी राजसत्तम कहा जाता है। जिसके पुरवासी प्रजा ऐश्वर्य्यशाली और निज धर्म्मोंमें तत्पर रहती है, उसे ही राजाओंमें अत्यन्त श्रेष्ठ कहा जाता है। और जिसके राज्यभरकी सब प्रजा राजाके वशमें स्थिर, नीतिनिपुण राजाज्ञाकी पालन करनेवाली ऐश्वर्य्ययुक्त और दान धर्म्ममें रत रहके यथा रीतिसे पालित और शासित होकर आपसमें विरोध न करके निज निज कर्त्तव्य कर्म्मोंमें तत्पर रहती है; वही राजा श्रेष्ठ गिना जाता है। जिस राजाके राज्यमें चोरी, डकैती, माया, मत्सर और अधर्म्म आदि नहीं होते, वह सनातन धर्म्मको पालन करनेवाला राजा उत्तम फलोंको प्राप्त करता है। जो ज्ञानवान पण्डितोंका आदर करते, शास्त्रोंको पढ़ते और पुरवासी तथा

सम्पूर्ण प्रजाके हितमें तत्पर रहते हैं, वैसे श्रेष्ठ मार्गसे गमन करनेवाले दानशील पुरुष ही राजा होनेके योग्य हैं शत्रुलोग जिसके दूतोंको मिलाके राजाके विचारोंको नहीं जान सकते, वह राजा ही राजत्व लाभ करनेके योग्य है। हे राजेन्द्र! महात्मा भृगुनन्दन शुक्राचार्य्यने पहिले समरमें रामचरित्रोंको वर्णन करते हुए एक श्लोक कहा था, "प्रजाको चाहिये कि राजाको ही सबसे श्रेष्ठ समझके उसकी रक्षा करें, तिसके अनन्तर भार्य्या और धनको रक्षामें यत्नवान होवे, क्यों कि राजाके न रहने पर उसकी भार्य्या कहां रहेगी, और धनकी रक्षा भी किस प्रकार हो सकती है; इससे सब लोगोंको सब भांतिसे राजाकी रक्षा करना ही कर्तव्य है, इसी प्रकार राज्यकी अभिलाषा करनेवाले राजाको भी प्रजाकी रक्षाके अतिरिक्त सनातन धर्म्म दूसरा नहीं है; क्योंकि उनकी रक्षा ही प्रजाको प्रसन्न करनका मूल कारण है।" हे राजेन्द्र! राजधर्म्मके विषयमें प्राचेतस मनुने जो दो श्लोक कहे हैं; मैं उन दोनों श्लोकोंको उदाहरण स्वरूपसे वर्णन करता हूं,— मनुष्योंको उचित है, कि उपदेश न करनेवाले गुरु, वेदपाठ तथा अध्ययन हीन पुरोहित, रक्षा न करनेवाले राजा, अप्रिय वचन बोलने वाली भार्य्या, ग्राममें अभिलाषा करनेवाले अहीर और बनवासकी इच्छावाले नाईको इस प्रकार त्याग देवे, जैसे नावपर चढ़नेवाले पुरुष टूटी नौकाको त्याग देते हैं।

५७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! दुग्धरक्षित की भांति प्रजाकी रक्षा करना ही राजधर्म्मका सार है, क्योंकि भगवान् बृहस्पतिने इसके अतिरिक्त दूसरे किसी धर्म्मकी प्रशंसा नहीं की है। हे धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रगणी युधिष्ठिर! भगवान् विशालाक्ष, महा तपस्वी शुक्राचार्य्य सहस्र नेत्रवाले इन्द्र, भगवान भरद्वाज और गौरशिरा मुनि आदि धार्म्मिक पुरुष लोक रक्षारूपी राजधर्म्म की ही प्रशंसा किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस समय लोकरक्षा विषयक सम्पूर्ण युक्तियोंको सुनो। यथा नियम पूर्व्वक जासूसोंको नियत करना, दूत भेजना समयानुसार दान और मत्सर रहित पुरुषोंसे उत्तम युक्ति ग्रहण करना, दुष्ट उपायके सहारे प्रजासे कर सग्रह न करना, सत्यवादी होना समयके अनुसार वीरता और कार्य्यदक्षता प्रकाशित करनी, प्रजाके हित साधनमें तत्पर रहना, सरल वा कुटिल उपायका अवलम्बन करके शत्रुपक्षके मनुष्योंके बीच मतभेद कराना, साधु पुरुषोंको संग्रह करना, पुराने और टूटने योग्य मकानोंका निरीक्षण करके उन्हें दृढ़ करनेका यत्न, शारीरिक और अर्थदण्डको यथासमय पर प्रयोग करना, साधु और उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुषोंका परित्याग न करके उन्हें यथा योग्य कार्य्योंपर नियुक्त करना, जिन्हें संग्रह करना, योग्य है उन पुरुषोंको संग्रह करना, बुद्धिमानोंकी सेवा, सेनाके पुरुषोंको उत्साहित करना, सदा प्रजाकी अवस्थाको देखते रहना, कोष बढ़ाना, कार्य्यमें ढीलापन न करना, प्रहरियोंका विश्वास न करके स्वयं निज राज्यकी प्रजाओंका अनुसन्धान लेते रहना, अन्य पुरुषोंसे पुरवासी प्रजा और राजसेवकोंके बीच भेद उत्पन्न करा देना, गुप्तरीतिसे शत्रुओंके निकटमें स्थित मित्रोंके यथार्थ तत्वको निश्चय करना स्वयं अन्तःपुरकी ओर दृष्टि रखना, भृत्योंका इकबारगी विश्वास न करना, शत्रुओंको धीरज देना और उनकी अवज्ञा न करनी, दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग न करना; और सदा उद्योगी होकर नीतिमार्गका अनुगामी होना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है। बृहस्पतिराजाओंके निमित्त उ[illegible]गको ही राजधर्म्मकामूल

कहा, है। हे युधिष्ठिर! इस विषयोंमें मैं एक प्राचीन श्लोक कहता हूं उसे सुनो, देवताओंने उद्योगसे अमृत लाभ करके असुरोंको मारा था; और इन्द्र अपने उद्योगसे ही तीनों लोकोंके बीच विख्यात होके स्वर्गलोकके राजा हुए हैं। उद्योगी पुरुष पण्डितोंके ऊपर भी आधिपत्य करते और पण्डित लोग स्तुति आदि वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए उनकी उपासना किया करते हैं। राजा बुद्धिमान होनेपर भी उद्योगरहित होनेके कारण विषरहित सर्पको भांति अपने शत्रुओंसे पराजित होता है। और निर्ब्बल शत्रुको भी अवज्ञा करनी बलवान पुरुषको कदापि उचित नहीं है, क्यों कि आग तनिक भी होनेसे भस्म करती और थोड़ा सा विष भी प्राण नाश कर सकता है। शत्रु हाथी घोड़ आदि सब अङ्गोंमेंसे एक अंग मात्र लेकर ही दुर्गमें आश्रय ग्रहण करनेपर और समृद्धिमान श्रेष्ठ राजाके सम्पूर्ण देशोंको पीड़ित कर सकता है। राजाको उचित है, कि अपने गोपनीय वचन, शत्रु विजयके निमित्त सेना संग्रह, शारीरिक और मानसिक कुटिलता तथा जो कुछ हीन कार्य्य करे, सम्पूर्ण मनुष्योंके निकट सरलता प्रकाशित करके उन कर्म्मोंको यत्नपूर्व्वक गोप न करे। मनुष्य संग्रह करनेवाला राजा सदा धर्म्माचरणमें प्रवृत्त रहे; क्योंकि दुष्टस्वभाववाले पुरुष कदापि विशाल राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते। हे युधिष्ठिर! इसी प्रकार अत्यन्त दयालु पुरुष भी राज्यकी रक्षा नहीं कर सक्ता और सरल प्रकृति अवलम्बन करनेसे भी राज्यकी रक्षा नहीं होसकती। इससे सरलता और कठोरता युक्त दोनों ही वृत्तियोंको अवलम्बन करना चाहिये। यदि इस नियमसे प्रजाकी रक्षा करनेमें राजाका विपत्ति भी उपस्थित होवे, तोभी इस ही नीतिसे गमन करना उसका सनातन मार्ग है, क्यों कि ऐसी वृत्ति अवलम्बन करना ही राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है। हे कुरुनन्दन! यह सामान्य रूपसे राजधर्म्मका कुछ अग्र वर्णित हुआ है; अब तुम्हें जिन विषयोंमें सन्देह होवे, उसे मेरे समीप प्रकाशित करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर भगवान व्यासदेव, देवस्थान, अश्व, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य्य, सात्यकि और सञ्जय धर्म्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी पुरुषसिंह भीष्मको धन्य धन्य कहके उनकी स्तुति करने लगे। महाराज! उस समय वे सब कोई इस प्रकार आनन्दित होकर प्रसन्न हुए थे, जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे कमलका पुष्प खिलता है। अनन्तर राजा युधिष्ठिर दुःखित चित्तसे आखोंमें आसू भरकर भीष्मके दोनों चरणोंको स्पर्श करके बोले, हे पितामह! मुझे जिन विषयोंमें सन्देह है उसे कल्ह आपके निकट प्रकाशित करूंगा; क्योंकि अब सूर्य्यदेव अस्त हुआ चाहते हैं। तिसके अनन्तर शत्रुनाशन यशस्वी कृष्ण, कृपाचार्य्य और राजा युधिष्ठिर आदि सब पुरुषोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम करके गङ्गानन्दन भीष्मको प्रदक्षिणा की; फिर दृषद्वती नदीमें यथारीतिसे माङ्गलिक जप, सन्ध्योपासन और तर्पण आदि कर्म्मोंको समाप्त करके पश्चात् हस्तिनापुरमें प्रवेश किया।

५८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पाण्डव और यादवोंने दूसरे दिन प्रातःकालके नित्यकर्म्मोंको समाप्त करके रथमें चढ़कर फिर भीष्मके समीप जानेके वास्ते हस्तिनापुरसे प्रस्थान किया, उस समय पाण्डव और यादवोंके रथ मार्गमें गमन करते हुए नगरके समान बोध होते थे। अनन्तर वे सब कोई कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर पापरहित गङ्गानन्दन भीष्मके

इस प्रकार कुशल प्रश्न करने लगे, कि "आपने सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत की है न ?" फिर व्यास आदि महर्षियोंको नमस्कार करके सब कोई पुरुषश्रेष्ठ भीष्मके चारों ओर बैठ गये। तिसके अनन्तर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर भीष्मको यथारीतिसे पूजा करके हाथ जोड़के कहने लगे।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भरतनन्दन! इस पृथ्वीपर "राजा" शब्द प्रचलित है, इसकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई है; आप इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये इस पृथ्वीपर हाथ, पांव, मुख, उदर, ग्रीवा, शुक्र, हड्डी मांस, मज्जा, रुधिर, बुद्धि, इन्द्रिय, आत्मा, सुख, इच्छा, विश्वास, प्राण, शरीर, जन्म, मृत्यु और अन्य गुण मनुष्योंमें समान होनेपर भी किस कारणसे एक ही पुरुष बुद्धिमान और शूरवीर पुरुषोंके ऊपर आधिपत्य करता है? एक पुरुष ही इस शूरवीर और श्रेष्ठ पुरुषोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीकी रक्षा करता है, और सब कोई उसके प्रसन्न करनेकी अभिलाषा करते हैं? हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भरतर्षभ! उस एक पुरुषके प्रसन्न होनेसे सब कोई प्रसन्न और उसके व्याकुल होनेसे सम्पूर्ण पुरुष व्याकुल होते हैं; यह रीति जो सदासे प्रचलित है, मैं उसके सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे आप विस्तार पूर्व्वक इस वृत्तान्तको वर्णन कीजिये। हे नरनाथ! सब मनुष्य जो एक ही पुरुषकी आज्ञामें चलते हैं; इसका कारण भी सामान्य न होगा।

भीष्म बोले, हे पुरुषसिंह युधिष्ठिर! पहिले सतयुगमें जिस प्रकार प्रथम राजत्व स्थापित हुआ था, उसे मैं कहता हूं, चित्त लगाके सुनो। पहिले राजा वा राज्य, तथा दण्डकर्त्ता और दण्ड कुछ भी नहीं था, प्रजा ही धर्मकी अनुगामिनी होकर आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करती थी। हे भारत! इसी भांति एक दूसरेकी रक्षा करते हुए वे सब कोई क्रमसे थक गये और उनका चित्त भ्रमित होने लगा। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसी भांति चित्त विभ्रम उपस्थित होनेपर ज्ञान लोप होनेसे उनके धर्म्म कार्य्य नष्ट होने लगे। हे भरतर्षभ क्रमसे मोह और लोभ उपस्थित होनेपर वे लोग अप्राप्त वस्तुओंकी भी इच्छा करने लगे; इससे विषयवासना और इन्द्रिय सुख आदि कामनाओंने उनके चित्तको आक्रमण किया। हे युधिष्ठिर! इसी भांति भोगाभिलाष उपस्थित होनेपर वे लोग उसमें इस प्रकार अनुरक्त हुए, कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञान और अनेक सद्वचनोंसे रहित होगये। हे राजेन्द्र! इसी कारण उन लोगोंमें अगम्य गमन, भक्ष्याभक्ष्य और दोष अदोषका कुछ भी विचार न रहा। हे राजन्! मनुष्य लोग इस प्रकार ज्ञानहीन होके विषयोंमें आसक्त हुए, तो वेद आदिक नष्टभ्रष्ट होने लगे और यज्ञादिक कर्म्म धर्म्म भी लुप्त होगये। हे पुरुषसिंह! इसी भांति जब वेदादिक धर्म्म लुप्त होगये, तब देवता लोग भयभीत होकर जगत् पितामह ब्रह्माकी शरणमें उपस्थित होकर उनकी स्तुति करने लगे; और दुःखित चित्तसे हाथ जोड़के यह वचन बोले, हे भगवन्! मनुष्योंमें लोभ और मोह आदिक भावोंके उदय होनेसे सनातन वेदधर्म्म लुप्त हुआ है, इस ही कारण हम लोगोंको भय उपस्थित हुआ है। हे त्रिलोकी नाथ! ब्राह्मण वेदोंके लुप्त होनेसे यज्ञ आदिक धर्म्म कर्म्म भी नष्ट हुए हैं; इससे हम लोग इस समय मर्त्यलोक वासी मनुष्योंकी समानताको प्राप्त हुए हैं। मनुष्य लोग हम लोगोंके निमित्त यज्ञमें आहुति प्रदान करते थे, और यज्ञसे तृप्त होकर हम लोग जलको वर्षा करके मनुष्योंको आनन्दित करते थे; परन्तु इस समय सम्पूर्ण कर्म्मोंके लुप्त होनेसे हम लोग भी नष्ट प्राय होगये हैं। हे पितामह! आपकी कृपासे हम लोगोंको जो कुछ ऐश्वर्य्य प्राप्त हुए थे, वह सब नष्ट हो रहे हैं; इससे इस समयमें जिस भांति हम लोगोंका

कल्याण होवे, आप अनुग्रहकर उसीका विधान करिये ।

तिसके अनन्तर स्वयम्भू भगवान ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, हे देवता लोगो ! तुम लोग भय मत करो, जिससे तुम लोगोंका मङ्गल होगा, मैं वही उपाय करूंगा । अनन्तर पिता मह ब्रह्माने निज बुद्धिके प्रभावसे एक सौ हजार अध्यायोंसे युक्त एक शास्त्र बनाके उसमें धर्म्म, अर्थ और कामका विस्तार पूर्व्वक वर्णन किया, ब्रह्माने धर्म्म अर्थ और कामको त्रिवर्ग कहके विख्यात किया, और त्रिवर्गसे विपरीत फलदायक पृथक् गुणविशिष्ट मोक्षनाम चतुर्थ पदका उस ही शास्त्रमें वर्णन किया । मोक्षको भी सकाम कर्म्म भेदसे सत्व, रज और तमरूपी त्रिवर्ग और निष्काम भेदसे उससे पृथक् अन्य एकवर्ग वर्णन किया । हे भरतश्रेष्ठ ! वणिकोंके धनकी रक्षा, तपस्वियोंकी बढ़ती और चारोंके नष्ट करनेके वास्ते त्रिवर्ग आत्मा, देश, काल, उपाय प्रयोजन और सहाय नीतिसे उत्पन्न हुए, ये षड्वर्ग कर्म्म-काण्ड, ज्ञान काण्ड, कृषि, वाणिज्य, जीविकाकाण्ड और विशाल दण्डनीति, ये सब विषय जगत् पितामह ब्रह्माके बनाये हुए एक लक्ष अध्यायोंमें पूर्ण रीतिसे वर्णित हैं । हे राजन् ! सेवकोंकी रक्षा ब्राह्मण और राजपुत्रोंके लक्षण, अनेक उपायके सहित जासूसोंको नियुक्त करना, ब्रह्मचारी आदि वेषधारी गुप्त चरोंका पृथक् पृथक् रूपसे नियत करना और साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा ये सब विषय उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं । मन्त्र, भेदार्थ, मन्त्रविभ्रम और सिद्ध असिद्धिके फल भी उसमें कहे गये है । भययुक्त सत्कार सहित और धन-ग्रहण रूपी उत्तम, मध्यम और अधम सन्धि भी उसमें वर्णित है । चतुर्व्विध यात्रा काल, त्रिवर्ग विस्ताव, धर्म्मयुक्त विजय, अर्थ विजय और अन्याय पूर्व्वक कर्म्मोंसे असुर-विजय पूर्ण रीतिसे उस शास्त्रोंमें वर्णित हैं । उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे सेवक, राष्ट्र, किला, बल और कोष इन पञ्चवर्गोंके सब लक्षण वर्णित हुए हैं । प्रकाश्य और गुप्त दोनों भांतिकी सेना उसमें कही गई हैं ; और दोनोंका अष्टविध विस्तार वर्णित हुआ है । हे पाण्डुनन्दन ! रथ, हाथी, घोड़े, पत्ति, विष्टि, नाविक, भार उठानेवाले दूत और उपदेष्टा ये आठ प्रकाश्य बलके अङ्ग हैं । वस्त्रादिक, अन्न आदि भोजनकी वस्तु और अभिचारिक कार्य्योंमें जङ्गम अजङ्गम अर्थात विषादिक चूर्ण योग रूप दण्ड वर्णित है । हे भरतर्षभ ! उस शास्त्रमें मित्र, शत्रु और उदासीन पुरुषोंके लक्षण भी वर्णित हुए हैं । ग्रह नक्षत्र आदिके मार्गगण, भूमिगुण, मन्त्र और यन्त्रोंसे आत्म-रक्षा, धैर्य्य और रथ निर्माण आदि कार्य्योंको अवलोकन करना, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके बलपुष्टिके अनेक भांतके यत्न, योग, नाना भांतिके व्यूह, विचित्र युद्ध कौशल, धूमकेतु प्रभृति उत्पात, उल्कापात, शस्त्रोंको तीक्ष्ण करनेकी विधि और उनके चलाने तथा निवारण करनेकी विधि पूर्ण रीतिसे वर्णित है । हे पाण्डुपुत्र सब बलोंकी बढ़ती क्षय, और पीड़ा ; आपत कालमें सेनाके गुण दोषोंका ज्ञान, नगारे आदि बाजोंके शब्द सहित यात्रा कालमें गमन करनेका विधान, ध्वजा पताकासे युक्त रथ आदि वाहन, मन्त्रादिकोंसे शत्रुओंको मोहित करनेकी विधि इत्यादि ये सब विषय उस शास्त्रमें वर्णित हुए हैं । चोर, डकैत, जङ्गली भील-किरात, अग्नि, विष और कृत्रिम पत्र बनानेवाले पुरुषोंसे बलवान शत्रुओंमें भेद कराना, खेती कटवाना मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे हाथी, घोड़ोंको दूषित करना, प्रजाको भय दिखाना, अनुयायियोंका आदर और सबके मनमें विश्वास उत्पन्न कराके शत्रुराज्यको पीड़ित करनेकी विधि उस

शास्त्रमें विशेष रूपसे वर्णनकी गई है। और सप्तांग राज्यकी बढ़ती ह्रास, शान्ति स्थापन, राज्यको बढ़ाना, बलवान पुरुषोंको संग्रह करना इत्यादि ये सब विषय उसमें वर्णित हैं। शत्रुके निकटमें रहनेवाले मित्रोंमें भेद, बलवान शत्रुको यत्नपूर्वक पीड़ित करना, सूक्ष्म विचारशक्तियोंका नाश, मल्लयुद्ध, शस्त्र चलाना, दान धन संग्रह, भूखोंको भोजन, सेवकोंके कार्य्योंका निश्चय, समयके अनुसार धनव्यय, मृगया आदि व्यसनोंमें अनिच्छा, सावधानता आदि राजगुण शूरता वीरता और धीरता आदि सेनापतिके गुण और त्रिवर्गके गुण दोष तथा कारण उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं। नाना भांति की दुरभिसन्धि, अनुयायी और सेवकोंकी यथा योग्य वृत्ति, सब भांतिके प्रमादोंकी शक्ति, तत्व, निवारण विधि, अप्राप्त अर्थका लाभ, प्राप्त अर्थ की बढ़ती, और बढ़ाये हुए धनको विधिपूर्व्वक सत्पात्रोंको दान करना, यज्ञादि धर्म्म कर्म्मोंमें दान, काम्यदान और विपद उपस्थित होनेपर धन दान करनेकी विधि भी उस लक्ष श्लोकवाले शास्त्रमें वर्णित है। हे कुरुश्रेष्ठ! लक्ष अध्यायवाले शास्त्रके बीच क्रोध और कामसे उत्पन्न हुए दश प्रकारके व्यसनोंका भी वर्णन है।

हे भरतर्षभ! तिसके बीच पितामह ब्रह्माने कहा है, जूआ, मृगया, सुरापान और स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति ये चारों व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं। कठोर वचन, क्रुद्धस्वभाव, कठोर दण्ड, निग्रह, क्रोधके वशमें होकर आत्महत्या करनी और अर्थ दूषण ये छःहो व्यसन क्रोधसे प्रकट होते हैं। उस शास्त्रमें यन्त्र बनानेके निमित्त नाना भांतिके कौशल और उसकी क्रियाका वर्णन है। शत्रुओंको पीड़ित करना युद्ध-मार्गोंको ठीक करना, काटोंसे युक्त लताओंका नाश, कृषिकर्म्मकी रक्षा, आवश्यकीय वस्तुओंका संग्रह, वर्म्म और वर्म्म निर्म्माणकी युक्तियोंका भी उस शास्त्रमें वर्णन हुआ है। हे युधिष्ठिर! उसमें ढोल, मृदङ्ग शङ्ख, भेरी आदि बाजोंके लक्षण और मणि, पशु, भूमि, वस्त्र, दासी और सुवर्ण आदि छः प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह, रक्षा, दान, साधुओंका पूजन, पण्डितोंका सत्कार, दान और होमके नियमोंका ज्ञान, सुवर्ण आदि माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श, शरीरको अलंकृत करना, भोजनके नियम और आस्तिकता आदि सम्पूर्ण विषय कहे गये हैं। हे भरतर्षभ! विषय उत्थापित करना, वचनकी सत्यता सभा और उत्सवोंके बीच वचनकी मधुरता, ध्वजारोहणादिक गृह-कार्य्य, साधारण पुरुष जिन स्थानोंमें बैठते हैं; उन स्थानोंमें प्रत्यक्ष और परोक्षमें जिन कार्य्योंके अनुष्ठान होते हैं उसका अनुसन्धान, ब्राह्मणोंको अदण्डित करना, युक्तिपूर्व्वक दण्ड विधि, अनुजीवी और स्वजातिके पुरुषोंके गुण अनुसार उनकी मर्य्यादा स्थापित करनी, पुरवासियोंकी रक्षा, और राज्य बढ़ानेकी विधि पूरी रीतिसे उस शास्त्रमें वर्णित है। हे राजेन्द्र! शत्रु, मित्र और उदासीन प्रत्येकमें चार चार भेदोंसे द्वादश राजमण्डल विषयक युक्ति, वेदशास्त्रोंमें कही हुई पवित्रता, बहत्तर प्रकारके शरीर संस्कार और देश, जाति तथा कुल भेदसे पृथक् पृथक् धर्म्म भी उसमें कहे गये हैं। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले! उसमें धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, अनेक भांतिके उपाय और अर्थलिप्साके विषय सम्पूर्ण रूपसे वर्णित हुए हैं। कोष बढ़ानेकी विधि कृषि आदि कार्य्य, मायायोग और बंधे हुए स्रोतके जलके समस्त दोष कहे गये हैं। हे राजशार्दूल! जिन जिन उपायोंको अवलम्बन करनेसे मनुष्य लोग आर्य्य पुरुषोंके अवलम्बित मार्गसे विचलित नहीं होते, वे सब विषय पितामहके बनाये हुए नीति शास्त्रमें वर्णित हैं। भगवान लोकनाथ पितामह इस मंगलजनक शास्त्र बनाके प्रसन्न चित्तसे

इन्द्रादिक देवताओंसे बोले, कि मैंने सम्पूर्ण लोकोंके उपकार और त्रिवर्ग संस्थापनके वास्ते दूधके नवनीत समान समस्त वाक्योंके साररूपी यह युक्ति प्रकाशकी है। लोकरक्षा करनेवाली इस युक्तिको दण्डके सहित प्रयोग करनेसे यह सम्पूर्ण प्राणियोंके निग्रहमें समर्थ होकर पृथ्वी-पर प्रचारित होगी। यह जगत्‌दण्डसे बना है, अथवा जगत्‌से ही दण्ड प्रकट हुआ है; इसीसे यह नीति तीनों लोकके बीच दण्डनीति कहके विख्यात होगी। समस्त षाड्‌गुण्यगुणोंका सार-भूत यह शास्त्र सदा महात्माओंके आगे स्थित रहेगा; क्यों कि धर्म्म, अर्थ काम और मोक्ष ये सब इसके बीच वर्णित हुए हैं। तिसके अनन्तर बहु रूप, विशालाक्ष, स्थाणु भगवान उमा-पति शङ्करने पहिले ही उस नीतिशास्त्रको ग्रहण किया। भगवान शिवने सब प्रजाके आयुका समय घटा हुआ जानके पितामह कृत उस महार्थ शास्त्रको संक्षिप्त किया। महात-पस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ इन्द्रने दस हजार अध्याय वाले उस वैशालाक्ष नाम नीतिशास्त्रको ग्रहण कर संक्षेप करके पांच हजार अध्याय किया और वह शास्त्र बाहुदन्तक नामसे विख्यात हुआ; हे तात! वह इस समय बार्हस्पत्य शास्त्र कहके पुकारा जाता है। अत्यन्त बुद्धिमान् योगाचार्य्य महायशस्वी शुक्रने उसे संक्षेप करके एक हजार अध्याय किया। इसी भांति सम्पूर्ण प्राणियोंके आयुष्काल की अल्पताके अनुसार महर्षियोंने अपनी अपनी बुद्धिके प्रभावसे उस शास्त्रको संक्षेप किया। अनन्तर देवताओंने प्रजापति विष्णुके निकट उपस्थित होके कहा,—"जो सम्पूर्ण मर्त्यलोकवासी प्राणियोंके ऊपर प्रभुता कर सके, आप वैसे किसी एक पुरुषको आज्ञा करिये।" अनन्तर देवोंके प्रभु भगवान नाराय-णने तैजस और बिरजा नाम दो मानसपुत्र उत्पन्न किये। हे पाण्डु-पुत्र! उनमें महाभाग बिरजाने भूमण्डल पर प्रभुता करनेकी इच्छा नहीं की; क्यों कि उनकी बुद्धि सन्न्यासवृत्तिमें अनुरक्त हुई। उनके कीर्त्तिमान नाम जो पुत्र उत्पन्न हुआ था; वह भी पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। कीर्त्तिमानके पुत्र कर्द्दमने भी अत्यन्त तपस्या की। प्रजापति कर्द्दमके दण्डनीति जाननेवाला अनंग नाम पुत्र हुआ था, वही प्रजाकी रक्षा करनेलगा, तिसके अनन्तर अनंग पुत्र नीतिमान् अतिबल राज्य पाके इन्द्रिय परायण हुए। तीनों लोकमें विख्यात सुनीथा नाम्नी मृत्युकी जो मानसी कन्या थी, उसीसे वेणुका जन्म हुआ। अतिबल-पुत्र वेणु राग, द्वेषके वशमें होकर प्रजाके ऊपर अधर्म्म आचरण करनेलगे; तब ब्रह्मवादी ऋषियोंने मन्त्र-पूरित कुशोंसे उन्हें मार डाला। तिसके अनन्तर उन ऋषि-योंने मन्त्र पढ़के वेणुकी दहिनी जङ्घाको मथा, उससे पृथ्वीपर कुरूप-वेष जलते हुए स्थूण समान लाल नेत्र, बिखरे केश और छोटे अङ्ग वाला एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे "निषीद" अर्थात् पतित हो,—ऐसा ही कहा, इससे उस पुरुषसे जो क्रूर मनुष्य उत्पन्न भये, उन सबोंने "निषाद" नामसे विख्यात होके पहाड़ तथा बनोंका आसरा ग्रहण किया। हे राजन्! इस समय जो सब विन्ध्याचल पर्व्वतपर वास करते हैं, और दूसरे जो अनगिनत म्लेच्छ हैं; ये सब उन्हीं निषा-दोंसे उत्पन्न हुए हैं। अनन्तर महर्षियोंने फिर वेणुका दहिना हाथ मथा, उससे कवचधारी, बद्धनिस्त्रिंश धनुष बाणसे युक्त, वेद वेदांग और धनुर्व्वेद जाननेवाला द्वितीय इन्द्रके समान एक दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ। महाराज! दण्डनीतिने मानो मूर्त्तिमयी होके उसका आसरा ग्रहण किया। तिसके अनन्तर वेणु-पुत्र हाथ जोड़के महर्षियोंसे बोले, मुझे जो अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि उत्पन्न हुई है, उससे मैं किन कार्य्योंका अनुष्ठान करूंगा, वह आप लोग मुझसे सत्य ही कहिये। आप लोग मुझसे जो

अर्थयुक्त कार्य्य करनेको कहेंगे, मैं शीघ्र ही उसे पूर्ण करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

अनन्तर देवताओं और परमर्षियोंने उससे कहा, "तुम नियमपूर्व्वक निर्भय-चित्तसे धर्मयुक्त कार्य्योंका आचरण करो। तुम काम, क्रोध, लोभ और अभिमान त्यागके और प्रिय अप्रियका विचार न करके सब जन्तुओंमें समभाव प्रकाशित करना। पृथ्वीपर जो कोई मनुष्य धर्ममार्गसे विचलित होगा, तुम धर्मकी ओर दृष्टि रखके अपने बाहुबलसे उसे दण्ड देना। हे शत्रुतापन! तुम मन, और वचनसे ऐसी प्रतिज्ञा करो, कि अखिल भौम पदार्थको ब्रह्म-स्वरूप जानके पालन करूंगा; स्वेच्छाचारी होकर, दण्डनीतिके नियम अनुसार जो सब धर्म कहे गये हैं, निर्भयचित्तसे उन्हींका आचरण करूंगा; द्विजातिगण मुझसे अदण्ड और मैं सब प्राणियोंको शङ्करसे रक्षा करूंगा। तिसके अनन्तर वेणुपुत्र उन ऋषियों तथा देवताओंसे बोले, पुरुषश्रेष्ठ महाभाग ब्राह्मण लोग मेरे नमस्य होवें। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने "ऐसा ही होगा" कहके अंगीकार किया, तब ब्रह्ममय निधिस्वरूप भगवान शुक्र उनके पुरोहित हुए। सारस्वत्थ और वालिखिल्य गण उनके मन्त्री और महर्षि गर्ग भगवान ज्योतिर्व्विद हुए। इसी भांति शरीर भेदसे विष्णुसे अष्टम पर्य्याय वेणुपुत्र पृथुने पृथ्वीपर राज्य स्थापित किया, ऐसी ही जनस्मृति है। इसके पहिले ही सूत और मागध नामक उनके दो बन्दी उत्पन्न हुए थे, प्रतापी वेणुपुत्र पृथुने उन दोनोंके ऊपर प्रसन्न होकर सूतको अनूपदेश और मागधको मगध देश प्रदान किया। महाराज! हमने सुना है, पहिले भूमिमें अत्यन्त ही वैषम्यदोष था, क्यों कि प्रति मन्वन्तरोंमें पृथ्वी सर्व्वत्र ही विषम हुई थी, उस ही कारण वेणुपुत्रने धनुषसे पत्थरोंकी शिला उठाके वर्द्धित करते हुए पृथ्वीको समतल सम्पादन किया। हे पाण्डुपुत्र! इसी भांति पृथु इन्द्र आदिक देवताओं, विष्णु प्रजापालक और ब्राह्मणोंसे अभिषिक्त हुए; रत्नपूरित वसुन्धरा मानो मूर्त्तिमयी होकर उनकी प्रणयिनी हुई। हे युधिष्ठिर! सरितापति समुद्र, पर्व्वतोंमें उत्तम हिमवान और देवराज इन्द्रने उन्हें अविनाशी धन प्रदान किया। कनकपर्व्वत सुमेरुने स्वयं आके सुवर्ण प्रदान किया। यक्ष और राक्षसोंके स्वामी नरवाहन भगवान कुवेरने धर्म, अर्थ काम इन त्रिवर्ग साधनमें समर्थ धन प्रदान किया। हे पाण्डुनन्दन! उस पृथुके चिन्तन करते ही अनगिनत रथ, हाथी और पुरुष उत्पन्न होने लगे। उनके राज्य शासनके समयमें जरा, दुर्भिक्ष, आधि अथवा व्याधि कुछ भी नहीं थी। उनके शासनके समयमें सर्प अथवा चोरोंसे भी इसरेको भय नहीं उपस्थित होता था, वह जब समुद्रमें गमन करते थे; उस समय तरङ्ग मालासे युक्त समुद्रका जल स्तम्भित होजाता; सम्पूर्ण पर्व्वत दो भागोंमें बंटके उन्हें मार्ग प्रदान करते थे। अधिक क्या कहें उनको कहीं भी गतिरोध वा ध्वजा-भङ्ग आदि अशकुन नहीं उपस्थित होते थे। उन्होंने शस्यके वास्ते इस पृथ्वीको सत्तरह बार दोहन किया था; उससे यक्ष, राक्षस और सर्पोंने अपनी समस्त अभिलषित वस्तुओंको पाया था। इसी भांति उस महात्मा पृथुने भूलोकमें धर्म स्थापित करके प्रजापुञ्जके मनको रञ्जन किया, उसी समयसे पृथ्वीमें "राजा" शब्द प्रचलित हुआ। ब्राह्मणोंको क्षतसे परित्राण करनेसे क्षत्रिय कहलाये; पृथुने धर्मपूर्व्वक मेदिनीको प्रथित किया था, उसी कारण यह धरा पृथिवी नामसे विख्यात हुई। हे भारत! सनातन विष्णुने स्वयं उनकी यह मर्य्यादा स्थापित की, कि "हे राजन्! तुम्हें कोई भी अतिक्रम न कर सकेगा।" भगवान विष्णुने तपके प्रभावसे भूपतिके शरीरमें प्रवेश किया। महाराज!

अखिल जगत् देव-सदृश उस नरदेवके समीप नत होता रहता है। हे नरनाथ! जिसमें चार-वृत्ति अवलोकन द्वारा कोई नष्ट करनेमें समर्थ न होसके; उसी भांतिकी दण्ड-नीतिसे नियमानुसार राज्य रक्षा करनी उचित है। हे राजेन्द्र! राजा की चित्तवृत्ति और कर्म्मोंके समतानुसार उसके किये हुए शुभ कार्य्यादिकोंके फल शुभरूपसे परिणत होते हैं। हे युधिष्ठिर! सब प्राणी जो एक ही पुरुषके वशीभूत होते हैं; यह दैव निर्ब्बन्ध ही उसका कारण है; दूसरा कोई भी कारण नहीं है।

हे पाण्डुनन्दन! उसी समय विष्णुके मस्तकसे एक सुनहला कमल प्रकट हुआ, उसीसे बुद्धिमान धर्म्मकी पत्नी अर्थात् पालयित्री स्त्री उत्पन्न हुई। धर्म्मतः श्रीसे ही सब अर्थ उत्पन्न हुए। तभी से राज्यमें श्री, अर्थ और धर्म्म ये तीनों ही प्रतिष्ठित हुए। मनुष्य पूर्व्व जन्मके किये हुए सुकृतके क्षय होनेपर स्वर्ग लोकसे पृथ्वीपर आगमन करके सतोगुणावलम्बी, बुद्धिमान, दण्डनीति जाननेवाले भूपति होकर जन्म ग्रहण करते और तिसके अनन्तर देवताओंसे अभिषित होकर असाम महात्म्यको प्राप्त होते है। महाराज! अखिल जगत् जो एक ही पुरुषके वशीभूत होता है और उसके शासनको अतिक्रम नहीं करता, उसका यही कारण है, परन्तु वह जगत्विधान कर्त्ता है,—ऐसा जानके नहीं। हे राजेन्द्र! शुभ कर्म्मोंके फल शुभ रूपसे ही परिणत होते हैं, देखिये हाथ पाव आदि अवयव सबके समान ही होते हैं, तोभी सब कोई एक ही की आज्ञामें चलते हैं। जो उसका मनोहर मुख देखता है, वही उसके वशमें होजाता है; मङ्गलमय रूपवान और धनवान ही उसका दमन करते हैं। हे युधिष्ठिर! उसका महा दण्ड ही पृथ्वीमें धर्म्म संस्थापनका मूल, स्पष्ट लक्षणवाली नीति और सुन्दर रीतिका प्रचार दीख पड़ता है। हे युधिष्ठिर! इसी भांति पितामहके बनाये हुए शास्त्रके बीच पुराणोंके आगम, महर्षियोंके सम्भव, तीर्थ और नक्षत्रों की उत्पत्ति गार्हस्थ्य आदि चारों आश्रमोंके नियम, चातुर्होत्र, चारोंवर्ण और चारों विद्या प्रभृति सब ही वर्णित हैं। इतिहास, वेद, न्याय, तपस्या, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, मिथ्या और उत्तम नीति सब विस्तारके सहित वर्णित हैं। वृद्धोंकी सेवा, दान, पवित्रता, उत्थान और सब प्राणियोंके ऊपर दया प्रकाश करना, ये सब उस शास्त्रमें वर्णित हैं। हे पाण्डुपुत्र! अधिक क्या कहूं, इस पृथ्वीपर जो कार्य्य हैं, वह सब पितामहके बनाये हुए उस शास्त्रमें निःसन्देह रूपसे वर्णित हुए हैं। हे राजेन्द्र! उस ही समयसे पण्डित लोग "देव और नरदेव समान है,"—ऐसा ही कहा करते हैं। हे भरत श्रेष्ठ महाराज! ये ही सब राजाओंके कर्त्तव्य विषय सब भांतिसे कहे गये, अब कहिये दूसरा कौनसा विषय कहूं?

५९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर नियमशील युधिष्ठिरने गंगानन्दन भीष्म पितामहको प्रणाम करके फिर पूंछा, हे कुरुश्रेष्ठ पितामह! अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म्म क्या हैं? ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके चारोंवर्णोंसे पृथक् धर्म्म और आश्रम क्या है? कौन धर्म्म राजधर्म्म कहके माना जाता है? किस भांति राज्य बढ़ता है और कौनसा उपाय अवलम्बन करनेसे राजा और पुरबासियोंकी उन्नत अवस्था हो सकती है? राजा कैसे कोष, दण्ड, किला, सहाय, मन्त्री, ऋत्विक, पुरोहित और गुरुको परित्याग करे? पितामह! किस भांतिकी आपद उपस्थित होनेपर कैसे मनुष्यका विश्वास करना उचित है? और किस विषयसे आत्माको सब

भांतिसे रक्षा करनी उचित है? आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म, पूर्णब्रह्म कृष्ण भगवानको, प्रणाम करके नित्य धर्म की व्याख्या करूंगा। हे युधिष्ठिर! क्रोध न करना, सत्यवचन सम्विभाग, क्षमा, निज स्त्रीमें सन्तोष, पवित्रता किसीसे वैर न करना, विनीतता और सेवकोंका पालन ये नव अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म्म हैं। और इसके अतिरिक्त जो सनातन धर्म्म केवल ब्राह्मणोंके ही आचरित हैं, उसे कहता हूं सुनो, महाराज! दम अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, तपके क्लेशोंमें सहनशीलता और जिससे दूसरे सब सांसारिक कार्य्योंको समाप्ति होती है, वैसे वेदको अध्ययन करना ही ब्राह्मणोंका सनातन धर्म्म है। इसी भांति शान्त प्रकृतिवाले बुद्धिमान ब्राह्मण दुष्कर्म्मोंमें रत न होके निज कर्म्मोंमें तत्पर रहने पर यदि अर्थ स्वयं ही उसके समीप उपस्थित होवे, तो सन्तान उत्पन्न होनेकी अभिलाषासे दार परिग्रह करके वह सदा ध्यान और यज्ञ आदि सत्कर्म्म करे। और भी पण्डितोंने कहा है, कि उस अर्थको स्वजनोंके सहित समभावसे भोग करे। वेदाध्ययनके सङ्ग ही ब्राह्मणोंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं, इसके अनन्तर और कोई कर्म्म करे, वा न करे, वह सब प्राणियोंका प्रियपात्र ब्राह्मण कहके विख्यात होता है।

हे भारत! क्षत्रियोंके जो पृथक् धर्म्म हैं, वह भी तुमसे कहता हूं, सुनो। महाराज! क्षत्रिय दान करे परन्तु किसीसे मांगे नहीं यज्ञ आदि करे, परन्तु याजकता न करे; अध्ययन करे, पर किसीको पढ़ावे नहीं; प्रजापुञ्जको सब भांतिसे पालन करे, सदा डाकुओंके वधमें नियुक्त रहे और रणभूमिमें पराक्रम प्रकाशित करे। जो राजा अश्वमेध आदि यज्ञोंको करके पृथ्वी मण्डलपर महत् कीर्त्ति स्थापित करते और जो युद्धक्षेत्रमें विजय प्राप्त करते हैं; वेही त्रिलोकवासी सब प्राणियोंको अपने वशमें कर सकते हैं। क्षत्रियोंको अक्षत शरीरसे युद्धसे निवृत्त होने पर दीर्घदर्शी पण्डित लोग उनके वैसे कर्म्मको प्रशंसा नहीं करते; इससे धर्म्मकी अभिलाष करने वाला राजा विशेष यत्नके सहित युद्ध करे। क्षत्रबन्धु अर्थात् अधम क्षत्रियोंको मुख्य करके यही मार्ग अवलम्बन करना उचित है; परन्तु डाकुओंको दमन करनेके अतिरिक्त दूसरे कोई भी कर्म्म उनके कर्त्तव्य कार्य्य कहके नहीं बोध होते। दान, अध्ययन और यज्ञ ही राजाओंके निमित्त मङ्गलकारी हैं; राजा प्रजा समूहको उनके निज धर्म्म स्थित करके धर्म्मपूर्व्वक समभावसे सब कार्य्योंको सिद्ध करे। इसी भांति प्रजापालन करनेसे राजाओंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं। इसके अनन्तर वे कोई कार्य्य करें, वा न करें; सब प्राणियोंके मुख्य राजा कहके प्रसिद्ध होते हैं।

हे युधिष्ठिर! वैश्योंका भी जो सब नित्यधर्म्म है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो। वैश्य दान, अध्ययन, यज्ञ उत्तम उपायके सहारे धन सञ्चय और अनुराग पूर्व्वक पिताकी भांति पशुओंका पालन करे, दूसरा कुछ भी कार्य्य न करे; क्यों कि इसके अतिरिक्त दूसरे सब कार्य्य ही उसके अकर्त्तव्य कहके वर्णित हुए हैं। प्रजापतिने सृष्टिके अनन्तर ब्राह्मणोंको बनाया है, राजाओंको सब जाति वाली प्रजा और वैश्योंको समस्त पशु प्रदान किया है; इससे वैश्य उस ही रीतिके अनुसार पशु रक्षामें नियुक्त रहनेसे महत् सुख प्राप्त करता है। इसके अनन्तर वह जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा तथा जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा, वह भी कहता हूं। जो वैश्य छः गऊ पालन करे, वह निज वेतन रूपी एक गऊका दूध पीवे। सौ गऊको रक्षा करनेवाला

निज वार्षिक वेतनरूप एक गो-मिथुन पावेगा। सींग और खुरके अतिरिक्त द्रव्यके वाणिज्यसे प्राप्त हुआ और सब भांतिके शस्य तथा बीजका सातवां भाग उसका अंश कहके वर्णित हुआ है; और यही उसका एक सौ वर्षका वेतन है। वैश्य पशुओंके पालनमें अनिच्छा प्रकाशित न करे, और उसके इच्छा करनेपर दूसरे किसी वर्णवालेको ही सब पशुओंको रक्षा करना कर्त्तव्य नहीं है।

हे भारत! शूद्रोंके भी जो सब पृथक् धर्म्म हैं, उसे कहता हूं, सुनो। प्रजापतिने शूद्रको अन्य सब वर्णोंका दास कहके वर्णन किया है, इससे सब वर्णवालोंकी सेवा करना ही शूद्रका कर्त्तव्य है, उनकी सेवा करनेसे ही शूद्रको महत् सुख प्राप्त होता है। शूद्र पर्य्याय क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहे, परन्तु कभी भी धन सञ्चय न करे, क्योंकि वह धनवान होनेसे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंको वशीभूत और कार्य्योंके करनेमे प्रवृत्त होगा; परन्तु राजाकी आज्ञानुसार लोभके वशमें न होकर धर्म्म प्रधान कार्य्योंको करनेके वास्ते थोड़ा धन सञ्चय कर सकेगा। शूद्र जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा और जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा; वह भी कहता हूं। शूद्र, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंका अवश्य ही पालनीय है, उशीर वेष्टन, पुराना छत्र, जूता और व्यजन आदि परिचारक शूद्रको प्रदान करना योग्य है। न पहरने योग्य पुराने वस्त्र शूद्रको देना उचित है, क्यों कि वह उसका ही धर्म्म-धन है। धर्म्मात्मा मनुष्य कहा करते हैं, कि शूद्र सेवा करनेकी इच्छासे द्विजातियोंके बीच यदि किसीके पास जाय, तो वह उसकी उपयुक्त वृत्तिको उसे प्रदान करे। प्रतिपालक द्विजातिके अपत्य हीन होने पर शूद्र उसे पिण्डदान करे और वृद्ध तथा दुर्व्वल होनेपर उसका पालन भी करे। अधिक कहां तक कहें चाहे कैसी ही विपत् क्यों न उपस्थित होवे, किसी अवस्थामें भी स्वामीको परित्याग करना शूद्रका कर्त्तव्य नहीं है। स्वामी की दीन दशा उपस्थित होनेपर अपने परिवारसे भी अधिक उसका पालन करना शूद्रका कर्त्तव्य है; क्योंकि शूद्रका जो कुछ धन आदि रहता है, वह सब उसके स्वामीका है, उसमें उसे कुछ अधिकार नहीं है।

हे भरतनन्दन! ब्राह्मण आदि तीनोंवर्णोंके वास्ते धर्म्म और यज्ञ आदि वर्णित हुए हैं, परन्तु शूद्रोंको स्वाहाकार वषट्कार और अन्य वैदिक मन्त्रोंमें अधिकार नहीं है; इससे वे लोग स्वयं श्रौतव्रतसे रहित होकर ग्रहशान्ति और वैश्वदेवादि छोटे यज्ञोंको करते हुए शास्त्रोक्त पूर्णपात्रमयी दक्षिणा प्रदान करें। महाराज! मैंने सुना है, पहिले पैजवन नाम शूद्रने ऐन्द्राग्न-विधानसे यज्ञ करके दक्षिणा स्वरूप एक लाख गऊ दान किया था। हे भारत! ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण जो कुछ यज्ञ आदि करते हैं, उनके सेवक शूद्र भी उसके फल भागी होते हैं। महाराज! सब यज्ञोंसे श्रद्धा यज्ञ ही श्रेष्ठ है और यजमानोंका पवित्र महत् देवता है। ब्राह्मण भी निज निज सेवक शूद्रोंके महत् देवता हैं, इससे वे लोग श्रद्धाके सहित उनकी आराधना करनेसे अवश्य ही स्वामीकृत यज्ञादिकोंके फलभागी होंगे। ब्राह्मणोंसे ही इतर तीनों वर्णोंकी सृष्टि हुई है, इससे वे लोग स्थिर होके कामनाके सहित यज्ञादि न करने पर भी अवश्य ही ब्राह्मणोंके किये हुए यज्ञादिकोंके फलभागी हुआ करते है। जो देवताओंके भी देवता हैं, वे ब्राह्मण लोग जो कुछ कहें, वही मङ्गलजनक है। इसही कारण शूद्र आदि वर्ण श्रौत वा स्मार्त्त यज्ञोंको न करें, ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य्योंमें प्रवृत्त होवें। ऋक्, यजु और साम वेद जाननेवाले ब्राह्मण शूद्रोंके निकट देवताके समान पूजनीय

होते हैं, और दासरूपसे परिगणित शूद्र त्रिवर्णातिरिक्त होकर भी प्रजापति-दैवत कहके गिना जाता है। हे तात भारत! सङ्कल्प करके देवताओंके निमित्त द्रव्यत्यागरूपी यज्ञमें सब वर्णवालोंको अधिकार है; अधम वर्ण शूद्र भी यदि वैसा यज्ञ करे, तो देवता लोग तथा उत्तम वर्णवाले भी उसके यज्ञभागको ग्रहण करते हैं। महाराज! इस ही कारण सब वर्णोंके वास्ते श्रद्धायज्ञकी विधि वर्णित हुई है। ब्राह्मण लोग क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके असाधारण देवता हैं, इससे वे आत्मीय ब्राह्मण उन लोगोंसे घिरके उनके फललाभकी अभिलाषसे यज्ञादि नहीं करते, यह अत्यन्त ही असम्भव है। परन्तु "मैं अमुक कामनासे अमुक पुरुषसे वृत होकर अमुक यज्ञ करता हूं" इसी उद्देश्यसे सदा यज्ञादि किया करते हैं इसी भांत वैश्य-वर्णसे लाया हुआ मन्त्र संसृष्ट यज्ञ नीच वर्णवालोंमें दीखता है। हे युधिष्ठिर! यह सब देखके निश्चय बोध होता है, ब्राह्मणोंसे ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई है जब कि ब्राह्मण ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञस्रष्टा हैं और उनके विकारसे ही क्षत्रिय आदिकी कन्याओंसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण साधु और ब्राह्मणोंके ज्ञातिवर्ण हैं; क्योंकि एक मात्र ब्रह्मसे ही पहिले ब्राह्मण जातिकी उत्पत्ति हुई, और उस ब्राह्मणसे ही क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीनों वर्ण उत्पन्न हुए हैं। जैसे एक मात्र अकारसे ही साम, ऋक् और यजु ये तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं, और वे वेद उससे भिन्न नहीं हैं; वैसे ही एक ब्रह्मसे ही ब्राह्मणादिक चारों वर्ण उत्पन्न होके भी परस्पर समान हैं। हे राजेन्द्र! पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस प्रस्तावके उदाहरण स्वरूप ययिवद्व वैखानस मुनियोंके यज्ञ समयमें विष्णु-गीत यज्ञ-स्तुति विषयक जो कई एक श्लोक कहा करते हैं, उसे सुनो। सवेरे, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय श्रद्धावान जितेन्द्रिय पुरुष जो अग्निमें होम किया करते हैं, श्रद्धा ही उसमें मुख्य कारण है। ब्राह्मणोंमें जो षोड़श प्रकारके अग्निहोत्र कहे गये हैं, उसमें जो अस्कन्न अर्थात् अहुत-दैवत है, वह निकृष्ट और अस्कन्न अर्थात् यथा विधिसे होम होता है, वही सबसे उत्तम है। जो उन षोड़श भांतिके अग्निहोत्र, अनेक भांतिके यज्ञोंके रूप तथा कई प्रकारके कर्म्म और उनके फलोंको जानते हैं, वेही ज्ञानी श्रद्धावान द्विजाति ही यज्ञ कर सकते हैं। जो यज्ञादिकोंसे यज्ञस्वरूप विष्णुके आराधनाकी इच्छा करता है, वह पुरुष यदि चोर पापी वा महापापी हो, तौभी पण्डित लोग उसे साधु ही कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! जब कि यही उत्तम है और महर्षि लोग इन्होंकी प्रशंसा किया करते हैं, तब सब वर्णोंको ही सर्व्वदा सब भांतिसे यज्ञ करना कर्त्तव्य है, यही निर्णय हुआ है। तीनों लोकमें यज्ञके समान दूसरा कोई भी कर्म्म नहीं है, इससे सबको ही असूया-रहित और श्रद्धावान होकर शक्ति तथा इच्छानुसार यज्ञ करना उचित है।

६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाबाहो सत्यपराक्रमी युधिष्ठिर! अब चारों आश्रमोंके नाम और कर्म्मोंको सुनो। शास्त्रकारोंने वानप्रस्थ, भैक्षचर्य्य, महत् गार्हस्थ्य और चौथा ब्राह्मणोंसे परिवृत्त ब्रह्मचर्य्य,—यही चार प्रकारके आश्रमोंका वर्णन किया है। द्विजकुलमें जन्म लेकर जटाधारण संस्कार और अग्न्याधान आदि कार्य्योंको समाप्त करके वेद पढ़ते हुए आत्मवान और जितेन्द्रिय होकर सस्त्रीक हो, चाहे स्त्रीरहित होकर ही गृहस्थाश्रममें कृत-कृत्य

होकर फिर वानप्रस्थ आश्रममें गमन करे। इसी भांति वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करके वहीं पर वनवासी वानप्रस्थ पुरुषोंके अनुष्ठानकी यथारीतिसे अनुष्ठान कर ऊर्द्धरेता होकर प्रव्रज्या करते हुए मोक्षपद प्रहण पाते हैं। हे राजन्! यही सब ऊर्द्धरेता मुनियोंके मोक्षका कारण है, इससे विद्वान ब्राह्मणोंको पहिले यही सब कार्य्य करना उचित है। हे महाराज! मोक्षकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंको इस ब्रह्मचर्य्य आश्रमके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आचरण करनेके अनन्तर उन्हें भैक्षचर्य्यरूप चौथे आश्रममें अधिकार होता है। ब्राह्मण इस आश्रममें प्रवेश करके अस्तमितशायी अर्थात् दिनमें निद्रारहित, आत्म-शुभ इच्छासे हीन, गृहरहित, मननशील, धार्म्मिक और जितेन्द्रिय होकर जो कुछ भोजनकी वस्तु प्राप्त होवे, उससेही जीविका निर्व्वाह करे। आशारहित, सबमें समभावसे युक्त, निर्भोग और निर्व्विकार अर्थात् काम सङ्कल्प आदिसे रहित ब्राह्मण इस मङ्गलमय आश्रममें निवास करके मोक्षपद प्राप्त करते हैं। हे युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण वेदाध्ययनके अनन्तर सब कर्त्तव्य कार्य्योंको समाप्त कर पुत्र उत्पन्न और अनेक भांतिके सुख भोग करते हुए योगयुक्त होकर मुनियोंसे सेवित दुष्करगार्हस्थ्य धर्म्मका आचरण करते हैं, वे भी मोक्षपद पाते हैं। गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंको सदा निज स्त्रीमें सन्तुष्ट; ऋतुकालमें गमन करना, नियोगसेवी, धूर्त्ततारहित, कुटिलताहीन, मिताहारी, देवतोंमें रत, कृतज्ञ, सत्यवादी, सरलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान, धर्म्म करनेवाले, हव्य-कव्यमें आलस रहित, द्विजोंको सदा—सर्व्वदा अन्नदान करनेवाले, मत्सरता हीन, लिङ्गयुक्त, सब आश्रमोंके अन्नदाता और वेदविहित कर्म्मोंमें निष्ठावान होना उचित है। हे तात युधिष्ठिर! इस प्रस्तावमें महात्मा महर्षिलोग जो महा अर्थ, तपयुक्त और सारभूत नारायणगीत श्लोकका प्रमाण देते हैं, उसे कहता हूं, सुनो। "हमारे मतमें इस लोक और परलोकमें सत्य, कोमलता, अतिथिपूजा, धर्म्म, अर्थ, निज स्त्रीसे रति और दूसरे अनेक भांतिके सुखोंको भोगना कर्त्तव्य है।" परमर्षि लोग गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंके वास्ते स्त्री-पुत्रोंका पालन और वेदोंको धारण अर्थात् पढ़ना और पढ़ाना रूप कार्य्यको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं। इसी भांति जो यत्नशील ब्राह्मण गृहस्थवृत्तिको सब भांतिसे परिशोधित करके न्यायसे प्राप्त हुए धनसे जीविका निर्व्वाह करता हुआ गार्हस्थ्य आश्रममें वास करता है, वह स्वर्ग लोकमें शुद्ध फललाभ करता है। देह त्यागनेके अनन्तर उसकी सब इष्टकामना अक्षय होकर अनन्त काल पर्य्यन्त वेतन भोगी सेवककी भांति उसकी अनुगामिनी होती हैं। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मचारी लोग स्वयं मल-दिग्धाङ्ग होकर सदा गुरु सेवामें तत्पर होके कोई पढ़े हुए वेदोंको धारण करें, कोई निज मन्त्रोंका जप और कोई नित्य व्रतावलम्बी, सदा दीक्षामें तत्पर और जितेन्द्रिय होकर वेदान्त विचारके अनुसार ध्यान-योग आदि सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको समाप्त करके ब्रह्मचर्य्याश्रममें वास करें। यजन आदि षट् कर्म्मोंसे निवृत्त होके तथा दूसरे किसी कर्म्ममें प्रवृत्त न होकर सदा गुरुकी सेवा करे और उनके निकट विनीत भावसे स्थित रहे; शत्रुओंकी सेवा वा किसीके ऊपर निग्रह प्रकाश करना उचित नहीं है। हे तात युधिष्ठिर! ब्रह्मचारियोंके वास्ते यही आश्रम पद निश्चित हुआ है।

६१ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, उत्तर कालमें सुखदायक, मङ्गलमय, अहिंसासे युक्त, लोक-सम्मत, सुखके उपायका कारण और मेरे समान मनु-

र्थोंका सुख प्राप्त होनेके योग्य धर्मका वर्णन करिये!

भीष्म बोले, हे प्रभु भरत-सत्तम! ब्राह्मणोंको जो वाणप्रस्थ आदि चार आश्रम कहे गये हैं, हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण उसके अनुवर्त्ती नहीं होते। क्षत्रियोंको जो युद्धमें विजय लाभ प्रभृति स्वर्ग प्राप्त होने योग्य अनेक भांतिके कार्य्य वर्णित हुए हैं; वह तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नके उत्तरमें व्यवहृत नहीं होसकते; क्यों कि वे सब कर्म्म हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रियोंके पक्षमें ही कहे गये हैं। ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर यदि कोई पुरुष क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आचरण करे, तो वह मन्दबुद्धि इस लोकमें निन्दित और परलोकमें नरगामी होता है। हे पाण्डुनन्दन! पृथ्वीपर दास, कुत्ते, भेड़िये और अन्य पशुओंके विषयमें जो सब संज्ञा व्यवहृत होती है, ब्राह्मण यदि कुकर्म्मी हो तो उसके विषयमें भी वे ही सब संज्ञा व्यवहृत होती हैं। प्राणायाम आदि षट्कर्म्म और वाणप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंमें प्रवृत्त हिंसा रहित, चपलता हीन, स्थिरचित्त, पवित्र स्वभाववाले, तपस्यामें, रत, आत्म शुभ इच्छासे रहित और धार्म्मिक ब्राह्मण अक्षय लोकमें वास करते हैं। जो पुरुष जैसी अवस्थामें जिस स्थान पर जैसा कार्य्य करता है वह उस ही कर्म्मसे उसके अनुरूप फल पाता है। हे राजेन्द्र! महान् वेदव्यासको भी क्षत्रिय वृत्ति, कृषि कर्म्म, वाणिज्य और मृगयासे जीविका निर्व्वाहके समान ही समझना चाहिये। प्राग्भव वासना समूहही कालप्रेरित होकर उत्तम, मध्यम और अधम कार्य्योंको किया करती हैं, क्यों कि सब ही कालके वशमें हैं। शरीरके किये हुए प्राचीन पाप और पुण्यके फल सुख तथा दुःख आदि सब ही नाशमान हैं; परन्तु पर जन्ममें सुख आदि प्राप्त होनेके निमित्त जीव निज इच्छानुसार शुभ वा अशुभ निज कार्य्योंमें प्रवृत्त हुआ करता है।

६२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धनुष चढ़ाना, शत्रुओंको मारना, कृषि, वाणिज्य, पशुओंका पालन और धन पानेकी इच्छासे दूसरे की सेवा करनी, ये सब ब्राह्मणोंके वास्ते अकार्य्य कहके वर्णित हुए हैं। बुद्धिमान गृहस्थको ब्रह्मविषयक षट्कर्म्मोंका आचरण करते हुए कृत-कृत्य होकर वनमें प्रवेश करना ही उत्तम है ब्राह्मणको उचित है, कि राजाकी सेवकाई, कृषिसे प्राप्त हुए धन, वाणिज्यसे जीविका निर्व्वाह, कुटिलता, कौलटेय अर्थात् परायी स्त्रीसे व्यभिचार और कुषीद अर्थात् ऋण देना वा उसकी वृद्धि तथा ब्याज लेना, इन सब कार्य्योंको परित्याग करे। महाराज! ब्रह्मबन्धु अर्थात् अधम ब्राह्मण और दुश्चरित्री, निजधर्म्मको त्यागनेवाला, वृषलीपति, धूर्त्त, नाचनेवाला, ग्रामप्रेष्य, और कुकर्म्मोंमें रत रहनेवाला ब्राह्मण शूद्रके समान हैं; इससे वह चाहे देवताओंके कहे हुए मन्त्रोंको जपे वा न जपे, दासोंकी भांति शूद्रोंकी पंक्तिमें भोजन करनेके योग्य होजाता है। महाराज! राजसेवक सब ही शूद्रके समान हैं; इससे उन्हें देव कर्म्मोंसे रोकना उचित है। हे राजन्! ब्राह्मण मर्य्यादा-रहित, अपवित्र, क्रूरवृत्तिवाला हिंसक और निज धर्म्म तथा वृत्तिको त्याग करनेवाला हो, तो उसे हव्य कव्य आदि जो कुछ दिया जाता है, वह सब बिन दिये हुएके समान होजाता है, महाराज! इस ही कारण पितामहने ब्राह्मणोंके निमित्त पवित्रता, विनीतता और आश्रमोंका विधान किया है। जो धार्म्मिक सुशील, दयालु, सहनशील, ममतारहित, सरल कोमलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान पुरुष यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करके सोमपान करते हैं,

वेही ब्राह्मण हैं, इसके अतिरिक्त पाप कर्म्म करनेवाले ब्राह्मण कहके नहीं गिने जाते। हे महाराज पाण्डुपुत्र ! धर्म्मकी इच्छा करनेवाले पुरुष शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रियोंका आसरा ग्रहण करते हैं; इस ही कारण विष्णु सब वर्णोंको शान्ति-धर्म्ममें असमर्थ समझके उनके मंगलकी इच्छा नहीं करते। इससे स्वर्गलोकमें सुख आदि प्राप्त होनेकी लालसासे चारों वर्णोंके वेदवाद, सब भांतिके यज्ञ और सब लोगोंकी समस्त क्रिया नष्ट होती हैं; तथा आश्रमस्थ पुरुष भी निज धर्म्ममें स्थित नहीं रहते। हे पाण्डुनन्दन ! जिससे राजा निज राज्यमें ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंको यथा उचित आश्रमोंके धर्म्माचरण करानेकी इच्छा करेगा अब उस अवश्य आचरणीय चातुराश्रम इष्ट समस्त धर्म्मोंको सुनो। हे पृथ्वीनाथ ! वेदान्तमें अधिकार रहित परन्तु पुराणादिकोंसे आत्मशुभेच्छु जो शूद्रपुत्र उत्पन्न करके शरीरके सामर्थ्यके अनुसार त्रैवर्णिक कार्य्योंका आचरण करके राजाके समीप जाहिर होता है, वैसे योग्य-शास्त्रमें अनधिकारी त्रैवर्णिक समान शूद्रके विषयमें त्यागके अतिरिक्त सब आश्रम ही विहित हुआ है। हे राजेन्द्र ! इसी भांति स्वधर्म्माचारी शूद्रके वास्ते भैक्षचर्य्य रूप चौथा आश्रम भी कहा गया है। महाराज ! वैश्य और क्षत्रिय भी इस धर्म्मका आचरण करें। वैश्य लोग परिश्रमके सहित पशुपालन रूप धर्म्मोंका आचरण करते हुए गृहस्थाश्रममें कृतकृत्य होकर राजाकी आज्ञानुसार क्षत्रिय आश्रमका आसरा ग्रहण करे। हे बोलनेवालोंमें मुख्य युधिष्ठिर ! क्षत्रिय लोग धर्म्मपूर्व्वक राज-शास्त्र और वेद पढ़के पुत्र उत्पन्न आदि कर्म्म, सोमपान, धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन, रणभूमिमें विजय लाभ और राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको आह्वान कर यथा उचित दक्षिणा प्रदान करें। हे क्षत्रियर्षभ पाण्डुपुत्र ! तिसके अनन्तर प्रजापालनमें समर्थ पुत्रको अथवा शास्त्रमें कहे हुए लक्षणोंसे युक्त अन्य गोत्री क्षत्रियको निजसिंहासन पर बैठाके पितृयज्ञसे पितरों, यज्ञादिकोंसे देवताओं और वेदोंसे ऋषियोंको यत्नपूर्व्वक यथारीतिसे पूजा कर अन्त समयमें आश्रमान्तरमें गमन करनेकी इच्छा करें। हे राजन् ! इसी भांति यथा रीतिसे सब आश्रमोंके धर्म्माचरण करनेसे क्षत्रिय सिद्धिलाभ कर सकते हैं। हे राजेन्द्र ! क्षत्रिय लोग गृहस्थ धर्म्म त्याग कर अपनेको राजर्षि न समझके केवल मात्र जीवन रक्षाके निमित्त भिक्षावृत्ति अवलम्बन करें; परन्तु भोगकी अभिलाषासे वैसी वृत्तिको अवलम्बन न कर सकेंगे। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले ! आर्य्य लोग कहा करते हैं, कि यह भैक्षचर्य्य धर्म्म क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके निमित्त नित्य नहीं है, वे लोग इच्छानुसार इस धर्म्मको ग्रहण करते वा नहीं भी कर सकते हैं। हे राजन् ! लोकसमाजमें श्रेष्ठ धर्म्म आचरण करनेवाले क्षत्रियोंको बाहुबलसे सब प्राणियोंको वशमें करना उचित है; क्यों कि वेदमें ऐसा कहा गया है, कि ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनोंके धर्म्म तथा उपधर्म्म सब राजधर्म्मसे ही उत्पन्न हुए हैं। महाराज! जैसे क्षुद्र जन्तुओंके पांवके चिन्ह हाथीके पाव चिन्हमें लीन होजाते हैं, वैसे ही सब भांतिके धर्म्मको ही राजधर्म्ममें लीन समझना चाहिये। धर्म्मजाननेवाले पुरुष अन्य सब कर्म्मोंको अल्प आश्रय और स्वल्प फलदायक कहा करते हैं; क्यों कि आर्य्य लोग महाआश्रय, अनेक भांतिसे कल्याणदायक क्षात्रको ही धर्म्म कहते हैं, और इतर धर्म्मोंको धर्म्म नहीं कहते हैं। हे राजन् ! सब धर्म्मोंमें राजधर्म्म मुख्य है, राजधर्म्मसे ही सब वर्ण रक्षित होते हैं और राजधर्म्ममें ही सब भांतिके दान कहे गये हैं, इससे राजधर्म्म ही मुख्य है; क्यों कि आर्य्य लोग

दानको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। राजाओंके दण्डनीति रहित होनेपर खेवनेवालेसे हीन नौकाकी भांति लोगों डूबते हैं, इससे सब धर्म्म ही नष्ट होजाते हैं। प्राचीन क्षत्रियधर्म्मको त्यागने पर सब आश्रम-धर्म्म भी नष्ट होजाते हैं। राजधर्म्ममें ही सब भांतिका दान दीख पड़ता है, दीक्षाकी सब रीति राजधर्म्ममें ही कही गई हैं; सब विद्या राजधर्म्मसे युक्त और सब लोग ही राजधर्म्ममें प्रविष्ट हैं। हे महाराज! अधिक क्या कहूं, जैसे मृगोंका समूह नीचोंसे पीड़ित होकर उन मारनेवालोंके सुने तथा देखे हुए धर्म्मनाशका कारण होता है, वैसे ही यज्ञादि समस्त धर्म्म, कर्म्म राजधर्म्ममें नियुक्त होनेपर चोर लोग उन यज्ञादिकोंका नाश करते हैं, इससे लोग यज्ञादिकोंका अनादर करते हुए आत्मरक्षाके वास्ते निज धर्म्मको परित्याग करते हैं।

६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! लौकिक, वैदिक, चारों आश्रम और यतिधर्म्म राजधर्म्ममें ही स्थित हैं। हे भरतसत्तम सब धर्म्म ही क्षात्रधर्म्मके अधीन हैं, इससे क्षात्रधर्म्मके अस्थिर होनेसे सब प्राणी विषरहित सर्पकी भांति नष्ट होते हैं। महाराज! आश्रमवासियोंके धर्म्म अप्रत्यक्ष और बहुद्वार हैं, परन्तु पुण्य वचनोंसे लोक निश्चयवादी और धर्म्मतत्त्वको न जाननेवाले सब लोग परिणामफलको बिना बिचारे ही अन्य धर्म्मसे नष्टबुद्धि होकर विरुद्ध वचनोंसे उनके उस नित्यभावको प्रकाशित किया करते हैं। हे महाराज युधिष्ठिर! जैसे गार्हस्थ्य नामक धर्माश्रममें तीनों वर्णोंके धर्म्मका अन्तर्भाव प्रकट हुआ है, वैसे ही इस राजधर्म्मके बीच नैष्टिक वाणप्रस्थ, यति और ब्राह्मण आदि सब धर्म्म तथा उत्तम चरित युक्त इतर धर्म्मोंके सहित सब प्राणी ही अन्तर्हित हुए हैं। हे राजेन्द्र! जिस प्रकार शूर और राजाओंको दण्डनीति और आश्रम विहित सब धर्म्मश्रेष्ठ हैं, इस विषयको दृष्टान्तके सहित मालूम करनेके वास्ते सब प्राणियोंके ईश्वर देवताओंने प्रभु, नारायण विष्णुके निकट गमन करके उनकी उपासनाकी थी; वह उदाहरण मैंने तुमसे पहिले ही कहा है। अब जिस प्रकार साध्य, देवता, वसु, रुद्र, विश्व और मरुत आदि तथा दोनों अश्विनीकुमार आदि देव नारायणसे उत्पन्न होके क्षात्रधर्म्ममें प्रवृत्त हुए थे; उस धर्म्म पूरित अर्थ युक्त इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। सुनो? हे राजेन्द्र! पहिले जब दानव रूपी समुद्र निज मर्य्यादा अतिक्रम करके देवताओंको पीड़ा देनेवाला हुआ था; उस समय पृथ्वी पर मान्धता नाम एक बलवान राजा थे। हे राजशार्द्दूल! राजाने आदि, मध्य और अन्तहीन देवोंके देव परमेश्वर नारायणके दर्शनकी इच्छासे यज्ञ किया; तब विष्णु इन्द्रका रूप धरके उनके दृष्टि-गोचर हुए। अनन्तर राजा मान्धाताने सभामें स्थित राजाओंके सहित उस प्रभु इन्द्रके चरण पर गिरके उनको यथारीतिसे पूजाकी। हे युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर महात्मा इन्द्रके सङ्ग राजसिंह मान्धाताका महातेजस्वी विष्णुके विषयमें यह महत् सम्वाद हुआ था।

इन्द्र बोले, हे धार्म्मिक श्रेष्ठ! तुम्हारा क्या अभिप्राय है? तुम किस कारणसे उस अप्रमेय, अनन्त मायासे युक्त, अमित सत्त्ववीर्य्य आदिदेव पुरुष पुराण नारायणको देखनेकी इच्छा करते हो? हे राजन्! दूसरेकी बात तो दूर रहे, ब्रह्मा अथवा मैं भी उस विश्वरूप परम देव विष्णुका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकता; इससे इसके अतिरिक्त तुम्हारे मनमें दूसरी जो अभिलाष, हो, वह सब पूरी करूंगा; क्योंकि

तुम मर्त्य-लोकवासी प्राणियोंके मुख्य महाराज हो। तुम शान्त, धर्म्ममें तत्पर, जितेन्द्रिय और शूर हो; तुम्हारी बुद्धि, भक्ति तथा महत् श्रद्धासे देवताओंको परमप्रीति प्राप्त हुई है, इससे मैं तुम्हें अभिलषित वरदान करूंगा।"

मान्धाता बोले, हे भगवन्! मैं निज मस्तकसे आपको प्रसन्न करके निश्चय ही उस आदिदेव विष्णुके दर्शनकी इच्छासे अन्य सब कामना परित्याग करके साधुओंसे अवलम्बित और लोक दृढ़ वनके बीच गमन करनेकी इच्छा करता हूं! मैंने विपुल, अप्रमेय चात्र धर्म्मसे सबको अपने वशमें करके पालन किया; परन्तु आदिदेव विष्णुसे जो धर्म्म प्रवृत्त हुआ है, किस प्रकार उस लोकश्रेष्ठ धर्म्मका आचरण किया जाता है; उसे नहीं जान सका।"

इन्द्र बोले, चत्रिय धर्म्मके बिना सब लोग धर्म्मको पराकाष्टाको नहीं प्राप्त होते, क्योंकि पहिले आदिदेव नारायणसे चात्र धर्म्म ही प्रवृत्त हुआ था, और उसके अनन्तर उस देहसे उसके अङ्गरूप इतर धर्म्म सब प्रवृत्त हुए हैं। हे राजन्! अनुभूत ये सब धर्म्म अचिरस्थायी हैं, परन्तु परिव्राजक धर्म्मके सहित यह चात्रधर्म्म ही अनन्त और सबसे श्रेष्ठ है। सब धर्म्म ही इस चात्र धर्म्ममें प्रविष्ट हैं, इस ही कारण आर्य्य लोग इसे श्रेष्ठ कहा करते हैं पहिले विष्णुने अत्यन्त तेजस्वी देवताओं और ऋषियोंके कर्म्मसे प्रसन्न होके चात्र धर्म्म अवलम्बन करके ही उन लोगोंको शत्रुओंके हाथसे बचाया था; यदि वह अप्रमेय भगवान विष्णु देवताओंके शत्रु असुरोंका नाश न करते, तो ब्राह्मण लोग, ब्रह्मा, चात्रधर्म्म अथवा ब्रह्मादि अन्य किसी धर्म्मकी भी रक्षा न होती। देवताओंमें श्रेष्ठ आदि देव विष्णुने पराक्रम प्रकाश करनेके वास्ते असुरोंके सहित इस पृथ्वीको नहीं जय किया, परन्तु उसमें ब्राह्मणोंकी रक्षा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। क्योंकि ब्राह्मणोंके नष्ट होनेसे चारों वर्ण अथवा चारों आश्रम आदि कोई धर्म्म ही न रहते। सैकड़ों प्रकारसे नष्ट हुआ वैष्णव धर्म्म चात्र धर्म्मके जरिये फिर वृद्धिको प्राप्त हुआ है; और प्रति युगोंमें प्रवृत्त ब्राह्मण धर्म्म भी चात्र धर्म्मसे रक्षित हुआ है, इस ही कारण आर्य्य लोग चात्रधर्म्म कोही श्रेष्ठ कहा करते हैं। रणभूमिमें शरीर त्यागना, सब प्राणियोंके ऊपर कृपा प्रकाशित करनी, सब लोगोंकी यथार्थ अवस्थाको मालूम करना, उन लोगोंका पालन तथा रक्षा और दुःखित तथा पीड़ित राजाओंका क्लेशोंसे मुक्त करना,— ये सब विषय चात्रधर्म्ममें विद्यमान हैं।

महाराज! राजाके भयसे ही सब लोग मर्य्यादा रहित, काम-क्रोधके वशीभूत और पाप कर्म्ममें प्रवृत्त नहीं होते, इस ही से अन्य सब धर्म्मोंके जाननेवाले बुद्धिमान् राजधर्म्मको ही धन्यवाद दिया करते हैं। सब प्राणी पुत्रकी भांति राजासे पालित होकर निर्भय चित्तसे पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। यह लोकश्रेष्ठ चात्रधर्म्म सब प्रकारसे समस्त धर्म्मोंका साररूप है, और इसके जरियेसेही मोक्ष पद प्राप्त होता है।

६४ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, हे राजन्! तुम्हारे समान प्रजा समूहके हितमें तत्पर राजाओंको इसी भांति सब धर्म्मोंसे युक्त और समस्त धर्म्मोंसे श्रेष्ठ चात्र धर्म्मका सब भांतिसे रक्षा करनी उचित है; क्योंकि उसमें अन्यथा होनेसे प्रजाका अभाव होगा। सब जीवोंके पर कृपा करनेवाला राजा सब भांतिसे प्रजा पालन, राजसूय आदि यज्ञों और जिस प्रकार प्रचुर परिमाणसे सब भांतिके शस्य उत्पन्न हों, उसीका अनुष्ठान करे; भैक्षचर्य्यके अतिरिक्त अन्य सब आश्रमोंमें निवास और रणभूमिमें देहत्यागरूपी श्रेष्ठ

धर्म्माचरण करे। मुनि लोग दानको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं, उसमें शरीर दान ही सबसे श्रेष्ठ है। हे राजन्! जिस भांति राजा लोग सदा राजधर्ममें अनुरक्त होकर बहुश्रुत गुरुकी सेवा और आपसमें युद्ध करके रणभूमिमें निज शरीर दान किये हैं, उसे तुमने प्रत्यक्ष मालूम किया है। इसके अतिरिक्त धर्म्मकी इच्छावाले क्षत्रिय केवल मात्र सनातन धर्म्म रूप ब्रह्मचर्य्य नाम आश्रममें विचरें, और साधारणके विचार कार्य्योंमें प्रवृत्त होकर किसीको प्रिय अथवा अप्रिय न समझें। चारों वर्णोंका स्थापन, प्रजा-पालन और पहिले कहा हुआ योग, नियम, पुरुषार्थ तथा सब भांतिके उद्योग विद्यमान रहनेसे ही पण्डित लोग सब धर्म्मोंसे युक्त क्षात्रधर्म्मको ही श्रेष्ठ धर्म्म कहा करते हैं। "जो पुरुष निज आचरणीय धर्म्मको असत्य कहके निज धर्म्माचरण नहीं करते, आर्य्य लोग उन मनुष्योंको सदा अर्थलोपक, मर्य्यादा-हीन और पशु तुल्य कहा करते हैं। हे राजन्! जब कि अर्थयोगसे ही सब नीति मालूम होती हैं, तब सब आश्रमोंसे राजधर्म ही कल्याण-कारी है। तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंके, यज्ञादि और अन्य ब्राह्मणोंके जो सब आश्रम धर्म्म कहे गये है, पण्डित लोग इन दोनों कर्म्मोंकोही अवश्य आचरणीय कहते हैं, और इसके अतिरिक्त वे अन्य कोई कर्म्म करने पर शूद्रकी भांति शस्त्रसे मारने योग्य होते हैं। हे राजन्! ब्राह्मण चारों आश्रमों तथा वेदमें कहे हुए धर्म्मका आचरण करे, परन्तु शूद्रादि वर्ण कभी भी उस धर्म्मका आचरण न करें और अन्य धर्म्ममें प्रवृत्त ब्राह्मणोंके विषयमें भी वैसी व्रत्ति नहीं कही गई है। महाराज! जो जैसा कर्म्म करता है, उसके अनुरूप ही धर्म्म होता है और वह उस धर्म्मका स्वरूप ही होता है। "ब्राह्मण यदि कुकर्म्ममें रत होके निज कर्त्तव्य कर्म्मोंको न करे, तो वह सम्मान-लाभके योग्य नहीं होता और सबका अविश्वासी होजाता है। हे राजन्! यह धर्म्म सब धर्म्मोंसे युक्त है, इस ही कारण क्षत्रियोंको इस धर्म्मके गौरवका उपाय करना उचित है महाराज! इन सब कारणोंसे मेरे मतमें जैसे वीर धर्म्मके बीच वीर पुरुष ही मुख्य हैं, वैसे ही सब धर्म्मोंके बीच राजधर्म्म ही मुख्य है।"

मान्धाता बोले, हे भगवान सुरनाथ! यवन, किरात, गान्धार, चीन, शवर, बर्व्वर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्र, पौण्ड, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज लोग तथा ब्राह्मण क्षत्रियोंसे उत्पन्न हुए सब इतर जाति, वैश्य और शूद्र लोग राज्यके बीच स्थित होके किस प्रकार धर्म्माचरण करेंगे और मेरे समान मनुष्य किस प्रकार दस्युओंको धर्म्ममें स्थापित करेंगे, ? मैं यह सब आपके निकटमें सुननेकी इच्छा करता हूं, क्योंकि आप हीमेरे समान क्षत्रियोंके परम बन्धु है।"

इन्द्र बोले, सब डाकुओंको माता पिता आचार्य्य गुरु आश्रमवासी और राजाओंकी सेवा करनी उचित है। वेदमें कहे हुए कर्म्म धर्म्म और श्राद्धादि पितृयज्ञ शूद्रका भी कर्त्तव्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है। वे लोग समयके अनुसार सदा ही द्विजोंको कूप, प्रपा शय्या और दूसरी सब वस्तु दान करें। दस्युओंको सदा अहिंसा, सत्य, क्षमा, पवित्रता, अद्रोह-वृत्ति, विभागका पालन, स्त्री-पुत्रोंका भरण पोषण इन सब धर्म्मोंका आचरण करना उचित है। उन ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले डाकुओंको सब भांतिके यज्ञ करके शास्त्रोंकी कही हुई दक्षिणा और महार्ह-पाकयज्ञमें प्राणियोंको अन्नदान करना उचित है। हे पापरहित महाराज! पहिलेसे ही दस्युवृत्तिवाले पुरुषोंके विषयमें यही सब धर्म्म कहे गये हैं, और सब लोगोंको ऐसा ही आचरण करना उचित है।

मान्धाता बोले, मनुष्य-लोकमें चारों आश्रमों

और वर्णोंके अन्तर्गत वर्त्तमान समस्त दस्यु लोग नष्ट हुआ करते हैं, इसका क्या कारण है?

इन्द्र बोले, हे पापरहित ! दण्डनीतिके नष्ट और राजधर्मकी अस्थिरता होनेपर सब कोई राजदौरात्म्यदोषसे मोहित होजाते हैं। महाराज ! इस सत्ययुगके निवृत्त होनेपर सब आश्रमोंमें विकल्प उपस्थित होगा, और पृथ्वीपर अर्न्तगनत जटा आदि चिन्हधारी भिक्षुक भ्रमण करेंगे। वे लोग काम क्रोधके वशमें होकर प्राचीन धर्म्मकी परम गतिमें अवज्ञा प्रकाशित करके असत् मार्गको अवलम्बन करेंगे। परन्तु दण्डनीतिसे पापबुद्धिवालोंके निवृत्त होनेपर वह मङ्गलमय परम नित्यधर्म्म कदापि विचलित नहीं होता, जो सब लोगोंके गुरु राजाकी अवमानना करता है, उसके दान होम वा श्राद्ध आदि कुछ भी फलदायक नहीं होते। महाराज ! अधिक क्या कहें देवता लोग भी सनातन देवरूपी मनुष्योंके स्वामी धर्म्मात्मा राजाकी अवमानना नहीं करते भगवान प्रजापति (ब्रह्मा) ने इस अखिल जगत्‌की सृष्टि की है, परन्तु वह भी इसके प्रवृत्ति और निवृत्तिके वास्ते सब धर्म्मोंके बीच क्षात्रधर्म्मकी ही इच्छा किया करते हैं। जो लोग प्रवृत्त धर्म्म गतिको स्मरण करके उसके अनुसार कार्य्य करते हैं, वह पुरुष ही हमारे मान्य और पूज्य है; क्यों कि वैसे धर्मसे ही क्षात्रधर्म्म प्रतिष्ठित है।"

भीष्म बोले, इतनी कथा कहके इन्द्ररूपधारी विष्णु भगवानने देवताओंसे घिरकर निज अच्युत नित्यपद स्थानके उद्देश्यसे गमन किया। हे पापरहित ! जब कि उत्तम चरित्रसे युक्त सब कर्म्म पहिलेसे ही इसी प्रकार होते चले आये हैं, तब कौन बहुश्रुत सचेतन जीव उस क्षात्रधर्म्मकी अवमानना करेगा? अन्याय रीतिसे प्रवृत्त और निवृत्त सब धर्म्म ही मार्गमें चलनेवाले अन्धेकी भांति नष्ट होते हैं। हे पापरहित पुरुषसिंह ! तुम सदा ही उस आदि कालसे प्रवर्त्तित और प्राचीन लोगोंके प्रत्यक्ष स्वरूप क्षात्र धर्म्मका आचरण करो; उससे ही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा।

६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! आपके कहे हुए वाणप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंके सब धर्म्म मैंने संक्षेप रूपसे सुना, परन्तु उससे मेरा मन विशेष परितृप्त नहीं हुआ; इससे आप विस्तार पूर्व्वक फिर उन सब कर्म्मोंको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाबाहो युधिष्ठिर ! जो सब साधु-सम्मत धर्म्म मुझे विदित है तुम्हें वह सब मालूम हुआ है; परन्तु हे धार्म्मिक श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर ! तुम जो मुझसे लिङ्गान्तर्गवत धर्म्मोंका विषय पूछते हो, उसे सुनो ! हे मनुष्य श्रेष्ठ कुन्ती पुत्र ! इन चारों आश्रमोंके कर्म्मोंके सब भांतिके लिंगही महा श्रेष्ठ राजाओंके आचरित राजधर्म्ममें वर्त्तमान हैं। हे युधिष्ठिर ! राजा लोग दण्डनीतिके नियमानुसार प्रजापालन करनेसे काम-क्रोधसे रहित समदर्शी यतियोंकी भांति सन्न्याससे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है, यथा स्थानमें दान निग्रह और अनुग्रह प्रयोग करते और शास्त्रमें कहे हुए सब कार्य्योंका आचरण किया करते हैं; वह गार्हस्थ्य पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य स्थानको अनेक युक्तिसे प्राप्त करते हैं। हे पाण्डुपुत्र ! जो यथा रीतिसे प्रजासमूहको पालन किया करते हैं, वह राजा सब भांतिसे सन्न्यासियोंके पाने योग्य ब्रह्म-लोकको प्राप्त करते हैं। जो विपत्में पड़े हुए ज्ञाति, मित्र और जिनके सङ्ग सम्बन्ध है, ऐसे लोगोंको सामर्थके अनुसार विपत्से बचाते हैं, वे वाणप्रस्थ पुरुषोंके भांति मोक्ष पद पाते हैं। हे पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र !

लोकसमाजमें मुख्य धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कार करनेवाले, नित्य ही बहुतसे पितृयज्ञ भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञोंके करनेवाले; देवयज्ञोंसे उपस्थित अतिथि और अन्य प्राणियोंके यथावत सत्कार करनेवाले, और धर्म्मात्माओंकी रक्षाके वास्ते शत्रुराज्यको दमन करनेवाले, वे सब ही वाणप्रस्थ पुरुषोंकी भांति मोक्षपद प्राप्त करते हैं, हे राजेन्द्र पृथापुत्र! जो सब प्राणियोंका पालन और निज राज्यकी रक्षा करते हैं वे राजा प्रजापालनकी संख्याके अनुसार उतनेही यज्ञोंके फललाभ करके सन्न्याससे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। सदा वेदाध्ययन, क्षमा, आचार्य्यकी पूजा और गुरुसेवासे भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। धर्म्मपूर्व्वक नियमित जप और देवपूजामें रत राजा लोग धार्म्मिक पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य पदको पाते हैं। प्राण संशय उपस्थित होनेपर भी जो राजा "विजय लाभ अथवा मृत्यु ही होगी," ऐसा ही निश्चय करके युद्धमें प्रवृत्त होते हैं, वे ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो शठतारहित होकर सब जीवोंके विषयमें सरल भाव प्रकाशित करते हैं; उन्हें भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो वाणप्रस्थ और तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धन दान करते हैं, वे वाणप्रस्थ पुरुषोंके पाने योग्य स्थानको प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो राजा सब जीवोंपर दया और अनृशंसता प्रकाशित करता है, वह इच्छानुसार सब प्रकारका स्थान लाभ कर सकता है। हे पार्थ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! बालक और बूढ़ोंके विषयमें कुछ निठुर व्यवहार न करनेसे इच्छानुसार स्थान प्राप्त होता है। हे कुरुश्रेष्ठ! दूसरेके बलसे पीड़ित शरणागत जीवोंका परित्राण करनेसे गृहस्थोंके पाने योग्य पद प्राप्त होता है। चराचर जीवोंकी सब भांतिसे रक्षा और यथा उचित पूजासे राजेश्वर पद प्राप्त होता है।

हे पार्थ! जेठे भाईकी स्त्री, भ्राता, पुत्र और पौत्रोंके समयानुसार निग्रह वा अनुग्रहके कार्य्य ही गृहस्थोंके कर्त्तव्य कर्म्म हैं। हे पुरुषसिंह! प्रसिद्धात्मा पूजनीय साधुओंकी पूजा आदि करना ही गृहस्थ कर्म्म है। जो पुरुष विधाताकी बनाई धर्म्मरीतिसे निवास करते हैं वह सब आश्रमोंके प्राप्त होने योग्य मङ्गलमय स्थान प्राप्त करते हैं। आश्रमस्थ प्राणियोंको निज गृहमें आवाहन करके उन्हें भोजन आदि दान करना ही गृहस्थोंके कर्म्म हैं। हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जिस पुरुषमें कोई गुण भी नष्ट नहीं होते, आर्य्य लोग उस पुरुषश्रेष्ठको आश्रमस्थ कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! सब आश्रममें ही स्थानमान, कुलमान और अवस्थामानकी रक्षा करते हुए निवास करना उचित है। हे पार्थ! राजा लोग देशधर्म्म और कुलधर्म्मोंका यथारीतिसे पालन करनेसे सब आश्रमोंमें प्राप्त होने योग्य फल लाभ करते हैं। यथा समय पर प्राणियोंको यथायोग्य विभूति और उपाय प्रदान करनेसे साधुओंके आश्रममें निवास करते हैं। हे कौन्तेय! भय उपस्थित होने पर धर्म्माधर्म्म और सेनासे रहित होकर भी जो धर्म्मकी ओर विशेष दृष्टि रखते हैं, वे सब आश्रमोंसे प्राप्त होने योग्य फल लाभ कर सकते हैं। धर्म्म करनेवाले पुरुष जिसके राजमें यथारीतिसे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करते हैं, वह राजा भी उन लोगोंके आचरित धर्म्मका अंशभागी होता है। हे पुरुषसिंह! परन्तु जो राजा धर्म्माराम और धर्म्ममें तत्पर मनुष्योंकी रक्षा नहीं करते, वे उन लोगोंके किये हुये पापकर्म्मोंके फलभागी होते हैं। हे पापरहित युधिष्ठिर! जो लोग राजाओंकी सहायता करते हैं, वे दूसरेके किये हुए धर्म्मके अंशभागी होते हैं। हे पुरुषसिंह! हम लोग जिस धर्म्मकी उपासना करते हैं वह प्रकाशमान गृहस्थ धर्म्म ही सब धर्म्मोंसे पवित्र है। जो

दम्भ रहित और क्रोधहीन होकर सब प्राणि-योंको अपने ही प्राण समान समझते हैं, वे इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी सुख लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर! सत्वरूप मल्लाहसे युक्त, शास्त्ररूपी बन्धन-रस्सीसे पूरित दान-रूपी वायुसे चलनेवाले तथा शीघ्रगामी राज-धर्म्म रूपी नौका पर चढ़के संसार रूपी समुद्रके पार होते हैं। जब उनके हृदयकी सब वासना विषयोंसे निवृत्त होती है, तभी वह सतोगुणी होकर ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। हे पुरुष शार्द्दूल नरनाथ! प्रजा पालनमें रत रहनेवाले राजा ध्यान और चित्त-निरोधसे प्रसन्न होकर महत धर्म्म लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर। तुम सदा वेदाध्ययनमें तत्पर और सत्कर्मोंमें रत रहनेवाले ब्राह्मणोंके पालनमें यत्नवान रहो। वाणप्रस्थ और दूसरे आश्रमवाले जो कुछ धर्म्मका आचरण करते हैं, राजा लोग प्रजा पालन रूपी धर्म्मसे ही उससे सौगुणा फल लाभ किया करते हैं। हे पाण्डव श्रेष्ठ! यही सब अनेक भांतिके धर्म्म तुम्हारे समीप कहे गये, तुम इस ही परम्परासे चले आये अनादि धर्म्मका अनुष्ठान करो। हे पुरुष-शार्द्दूल पाण्डुपुत्र! तुम सदा एकाग्र चित्तसे प्रजा पालनमें अनुरक्त रहो; ऐसा होनेसे ही चारों आश्रमों और चारों वर्णोंके फलको प्राप्त करोगे।

६६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके धर्म्म कहे, अब राज्यके सब कर्त्तव्य कार्य्योंको कहिये।

भीष्म बोले, राजाका अभिषेचन करना ही राज्यवासी सब लोगोंका कर्त्तव्य है, क्यों कि डाकू लोग राजाहीन और बल-रहित राज्यको आक्रमण किया करते हैं। अराजक राज्यमें एक दूसरे की रक्षाके निमित्त यत्नवान नहीं होते अधिक क्या कहें, आपसमें एक दूसरे की अनिष्टचिन्तामें ही तत्पर रहते हैं; इससे ऐसे राजा रहित राज्यको धिक्कार है। हे युधिष्ठिर! ऐसा ही सुना जाता है, कि राजाको आवाहन करनेसे इन्द्रका आवाहन समझा जाता है, इससे ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुषोंका इन्द्र की भांति राजा की भी पूजा करनी उचित है। मेरे मतमें राजाहीन राज्यमें वास करना उचित नहीं; क्यों कि वैसे राज्यमें अग्निदेव भी देवताओंके निकट हव्य नहीं पहुंचाते। परन्तु पराक्रमहीन अराजक राज्यके बीच राज्य की अभिलाषा करनेवाले दूसरे बलवान राजाके आगमन करने पर उठके उसका सम्मान करना ही उत्तम नीतिका कार्य्य है; क्यों कि पापमय राजाहीन राज्यसे अधिक दोष उत्पन्न होनेवाला और कोई भी कार्य्य नहीं है। उस बलवान राजाके प्रसन्न होनेसे ही सब मङ्गल है, अन्यथा वह कुपित होके सब देशोंको ही नष्ट कर सकता है।

महाराज! जो गऊ दूध दुहनेके समय विघ्न करती है, उसे बहुत ही क्लेश भोगना पड़ता है; परन्तु जो गऊ सहजमें दूध देती है, उसे कोई भी दुःख नहीं देता, और जो लकड़ी सहज होमें नत होती है, उसे अग्निमें जलानेकी आवश्यकता नहीं होता। हे वीर! इन दोनों उपमा पर दृष्टि रखके बलवानके निकट नत होना ही उचित है, क्यों कि बलवानके निकट नत होनेसे इन्द्रके समीप नत होना समझा जाता है। इससे राजरहित प्रजा-समूहको निज कल्याणके वास्ते राजा की रक्षा करनी उचित है, धन वा स्त्री आदिकोंके वास्ते नहीं। राजा रहित राज्यमें पापी पुरुष परधनको हरके अत्यन्त प्रसन्न होते हैं; परन्तु जब दूसरे पुरुष उनके धनको हरण करते हैं; तब वेही लोग राजाके वास्ते इच्छा प्रकाशित करते हैं,

क्यों कि राजाके होनेसे पापाचारी पुरुष किसी भांति कल्याण लाभ नहीं कर सकते। हे युधिष्ठिर! अराजक होनेपर दो पुरुष एकके धनको और कई पुरुष मिलके दो जनोंके धनको हरण करते हैं; दासवृत्तिके अयोग्य पुरुषोंको बल पूर्व्वक दास बनाते और बलपूर्व्वक पराई स्त्रियोंको हरण करते हैं; इस ही कारण देवताओंने प्रजापालक राजाका नियम किया है। अधिक क्या कहें, यदि दण्ड धारण करनेवाले राजा सब लोकोंके सहित पृथ्वी की रक्षा न करते, तो बलवान लोग इस प्रकार निर्बल पुरुषोंको नष्ट करते, जैसे जलमें बड़े शरीरवाली मछली छोटी मछलियोंको भक्षण करती हैं। मैंने सुना है, जैसे बड़ी मछली जलमें छोटी मछलियोंको खाजाती हैं, वैसे ही अराजक राज्यकी प्रजा नष्ट हुई थीं; इसी भांति जब आपसमें उन सब लोगोंका कुल नष्ट होने लगा, तब उन लोगोंने परस्पर मिलके शपथपूर्व्वक यह नियम स्थापित किया था, कि "हम लोगोंके बीच जो कोई निठुर वचन कहनेवाला, कठोर दण्डयुक्त और पराया धन हरनेवाला होगा, वह हम लोगोंसे त्याज्य समझा जायगा।" वे लोग सामान्य रूपसे सब वर्णवालोंके विश्वासके वास्ते आपसमें ऐसी ही प्रतिज्ञा करके विरोधरहित होके निवास करने लगे। तिसके अनन्तर वे सब कोई मिलकर पितामह ब्रह्माके निकट जाके उनसे बोले, हे भगवन्! हम लोगोंमें कोई राजा न रहनेसे हमारा दुःख बढ़ रहा है, और हम सब नष्टप्राय होगये हैं; इससे आप हम लोगोंके वास्ते एक राजा नियुक्त करिये, जो हम सब लोगोंकी प्रतिपालन करे और हम सब कोई मिलके जिसकी पूजा करें। तिसके अनन्तर पितामहने मनुको उन लोगोंका राजा होनेके निमित्त आज्ञा दिया, मनुने उनके उस वचनको स्वीकार नहीं किया, मनु बोले, पापपूरित कर्म्म आचरण करते मुझे अत्यन्त भय होता है, विशेष करके मिथ्यायुक्त मनुष्योंके बीच राज्य करना अत्यन्त ही कठिन है।

भीष्म बोले, प्रजा समूहने मनुका ऐसा वचन सुनके उनसे कहा, "आप न डरिये, पापसे आपको कुछ भय नहीं है, जो लोग पाप करेंगे वेही उसके फलको भोग करेंगे। हम लोग आपके कोष वृद्धिके वास्ते अपने प्राप्त हुए पशु, और सुवर्णके पचासवें भागका एक भाग और धान्यके दसवें भागमें एक भाग प्रदान करेंगे, विवाह उपस्थित होनेपर जिस कन्याका सबसे अधिक दाय गा निरूपित होगा, आपको ही वह सुन्दरी कन्या प्रदान करेंगे। देवता जैसे इन्द्रके अनुगामी होते हैं, वैसे ही उत्तम वाहनोंपर चढ़े हुए शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुरुष आपके पीछे गमन करेंगे। आप इसी भांति बलशाली, प्रतापवान तथा दूसरेसे दुराधर्ष होकर इस प्रकार हम लोगों को रक्षा करिये, जैसे कुवेर यक्षोंको रक्षा करते हैं। प्रजा लोग राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करेंगे आप उसके चतुर्थांश फलभागी होंगे; और उस ही धर्म्मसे बलवान होकर इस प्रकार हम लोगोंको रक्षा करियेगा, जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते है। आप मरीचिमाली सूर्य्यकी भांति शत्रुओंको सन्तापित करते हुए विजयके वास्ते यात्रा करिये और शत्रुओंका अभिमान नष्ट कीजिये; ऐसा होनेसे हम लोग सुख पूर्व्वक धर्म्माचरण कर सकेंगे।" महायशसे युक्त महातेजस्वी मनु प्रजापुञ्जसे इसी भांति पूजित होके निज तेज प्रभावसे दशों दिशाको प्रकाशित करते हुए बाहर हुए। उस समय अनगिनत श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष उनका अनुगमन करने लगे। देवता लोग उनका इन्द्रके समान महत्व देखके अत्यन्त ही भयभीत हुए और सबने निज धर्म्ममें चित्त लगाया। तिसके अनन्तर जैसे बादल जलकी वर्षासे

धूलिकणको निवारण करते हैं, वैसेही मनुने सबको पाप कर्म्मोंसे निवृत्त और निज धर्म्ममें प्रवृत्त करके पृथ्वीपर गमन किया। युधिष्ठिर! इसी भांति पृथ्वीपर जो मनुष्य मङ्गल कामना की इच्छा करें, वे प्रजासमूहके अनुग्रहके वास्ते राजको ही सबसे श्रेष्ठ समझें। जैसे शिष्य गुरुके समीप और देवता लोग इन्द्रके समीप नत हुआ करते हैं; वैसे ही राजाके समीप सदा विनीत भावसे रहा करें; क्यों कि स्वजनोंसे सत्कृत होनेपर शत्रुलोग भी सत्कार किया करते हैं, परन्तु स्वजनोंसे तिरस्कृत होनेपर शत्रु लोग भी अवज्ञा करते हैं। विशेष करके शत्रुओंके निकट राजा की पराभव होनी सबके क्लेशोंका मूल है।

तिसके अनन्तर प्रजासमूहने राजा मनुको छत्र, सवारी, शस्त्र आभूषण, खाने पीनेकी वस्तु गृह, आसन शय्या और दूसरी सब भांति की सामग्री प्रदान की। हे युधिष्ठिर! राजा दूसरेके वास्ते प्रबल होवे, और अन्य मनुष्यके प्रश्न करनेपर हंसके मधुर वचनसे उत्तर देवे। उपकार करनेवालेके निकट कृतज्ञ, गुरु जनोंमें दृढ़भक्त, सबके सङ्ग संविभागी और जितेन्द्रिय होवे। दूसरेसे दृष्टित होनेपर सरलस्वभावसे सुन्दर तथा मनोहर दृष्टि उसकी ओर करे।

६७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ पितामह! ब्राह्मण लोग भी किस कारणसे मनुष्योंके प्रभु राजाको देवरूपी कहा करते हैं?

भीष्म बोले, हे भारत! पहिले वसुमनाने बृहस्पतिसे इस विषयमें जो कुछ पूछा था, पण्डित लोग इस प्रस्तावके उदाहरणमें उस ही प्राचीन इतिहासका प्रमाण देते हैं। सब लोगोंके हितमें रत, विनययुक्त वसुमनाने प्रजाओंके सुख की इच्छासे धर्म्मात्मा बृहस्पतिको सब भांतिसे शिष्टाचार प्रदक्षिणा तथा विधिपूर्व्वक प्रणाम करके राजाके समस्त कर्त्तव्य विषयोंको पूछा।

वसुमना बोले, हे महाबुद्धिमान! जीव लोग किस प्रकार उन्नत अवस्थाको प्राप्त होते, और किन कार्य्योंसे नष्ट होते हैं; और किसकी उपासनासे अनन्त सुख लाभ करते हैं? महाबुद्धिमान बृहस्पति कल्याण चाहनेवाले वसुमनाके प्रश्नको सुनके आनन्दके सहित राज संस्कार विषयक सब वचन कहने लगे।

बृहस्पति बोले, हे महाबुद्धिमान! प्रजा जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा ही उसका मूल है; क्यों कि वे लोग राजभयसे ही आपसमें हिंसा नहीं कर सकते। राजा ही धर्म्मपूर्व्वक मर्य्यादा रहित और पराई स्त्रियों तथा कुकर्म्मोंमें रत अखिल जगत्की प्रसन्नता सिद्ध करते हुए स्वयं प्रसन्नभावसे निवास करता है। महाराज! जैसे सूर्य्य चन्द्रमाके उदय न होनेपर जीव लोग घोर अन्धकारमें फंसते और आपसमें एक दूसरेको नहीं देख सकते; जैसे थोड़े जलसे युक्त तालाबके बीच मछलियें और हिंसा भयसे रहित पक्षी लोग बार बार हिंसा करते हुए विचरते हैं; तथा काल क्रमसे आपसमें किसीके भी वचन न सहके सबका वचन अतिक्रम और सबको पीड़ित करते हुए थोड़े ही समयमें नष्ट होजाते है, वैसे ही राजाके न रहनेपर प्रजा भी पालकहीन पशुकी भांति घोर अन्धकारमें पड़के नष्ट होजाती है। यदि राजा रक्षा न करता, तो बलवान पुरुष बलपूर्व्वक निर्व्वलोंका धन हरलेते, वे लोग अपनी अपनी सामर्थ्यके अनुसार परम आग्रह करके भी उसकी रक्षा करनेमें समर्थ न होते। कोई भी "यह वस्तु मेरी है,"—ऐसा न समझ सकते; स्त्री, पुत्र, अन्न आदि खानेकी चीज अथवा दूसरी किसी वस्तुओंमें भी किसीका कुछ भी वश न रहता; राजाके रक्षा न करनेसे समस्त धन सब तरहसे नष्ट होजाता।

यदि राजा पालन न करता, तो पापी चोर लोग सबके वस्त्र, आभूषण, सवारी, तथा दूसरे अनेक भांतिके रत्नोंको हर लेते। यदि राजा पालन न करता, तो धर्म्म-चारियोंके ऊपर बहुधा-शस्त्र चलते, और सब कोई अधर्म्मका आसरा ग्रहण करते। रक्षा न करनेसे सब कोई वृद्ध माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंको क्लेश देते अथवा उनका नाश करनेमें भी संकुचित न होते। यदि राजा पालन न करता, तो धनवान पुरुषोंको सदा ही वध बन्धन अथवा बहुत ही क्लेश प्राप्त होते; कोई भी किसी वस्तुको अपनी न समझ सकते। राजा रक्षा न करता, तो सब ही असमयमें ही मृत्यु-मुखमें पतित होते; सब लोग ही डाकुओंके वशमें होजाते तथा सब कोई घोर नरकमें पड़ते। यदि राजा रक्षा न करता, तो योनि दोष, कृषि और वाणिज्य कुछ भी न रहते; धर्म्म डूबता और वेदादि लुप्त होजाते। राजाके रक्षा न करनेसे सात प्रकारके दक्षिणायुक्त यज्ञ, विवाह अथवा समाज कुछ भी विधिपूर्व्वक न निर्व्वाहित होते। राजाका शासन न रहता, तो वृषभ भी गौवोंमें वीर्य्य-सिञ्चन न करते; गगरी भी न मथी जाती; इससे अहीर लोग भी नष्ट होजाते। राजा रक्षा न करता, तो सब लोग ही भयभीत और व्याकुल होके हाहाकार करके चेतरहितकी भांति क्षणभरमें नष्ट होजाते। यदि राजा रक्षा न करता, तो कोई भी निर्भयचित्त होकर यथारीतिसे दक्षिणायुक्त सत्वत्सरिक यज्ञोंका अनुष्ठान न करते, राज्य शासन न रहता, तो विद्यास्नात, व्रतचारी, तपस्वी और ब्राह्मण लोग चारोंवेदोंको अध्ययन न करते। यदि राजा पालन न करता, तो जिस पुरुषने ब्रह्महत्यारोंका नाश किया है, वह धर्म्मपूरित कार्य्यकी प्रशंसा प्राप्त न कर सकता, परन्तु ब्रह्मघाती तथा आलसी होकर भ्रमण करता। राजाका शासन न होता, तो चोर लोग हाथमें स्थित धनको भी हरण करते, पुल टूटते और प्रजा भी भयसे विकल होकर चारों ओर भागने लगती। राजा यदि रक्षा न करता, तो चारों ओर अनीति फैल जाती, वर्णसङ्कर जातिकी बढ़ती होती और राज्यमें सदा दुर्भिक्ष उपस्थित होता। जैसे घरके दरवाजेको बन्द करके इच्छानुसार घरके भीतर शयन करते हैं, वैसे ही राजासे रक्षित होकर मनुष्य लोग निर्भयताके सहित सर्व्वत्र भ्रमण किया करते हैं। जब कि बलवानके प्रहार करनेपर भी निर्ब्बल लोग सह लेते हैं, तब यदि धर्म्मात्मा राजा सब भांतिसे पृथ्वीकी रक्षा न करते, तो दूसरे पुरुष जो अन्य पुरुषोंके कठोर वचनको सहते इसमें कौनसी विचित्रता है? राजा यदि यथारीतिसे रक्षा करे, तो सब आभूषणोंसे भूषित स्त्रिया भी निर्भयताके सहित राजमार्गोंमें भ्रमण कर सकती हैं। यदि राजा रक्षा करे तो आपसमें सब कोई सबके ऊपर कृपा करते हैं, और एक दूसरेको हिंसा न करके धर्म्म मार्गसे ही गमन करते हैं। जब राजा प्रजाकी यथारीतिसे रक्षा करता है, उस समय ब्राह्मणादिक तीनों वर्ण अलग अलग यज्ञोंको करके देवताओं को पूजा और चित्त स्थिर करके वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हैं। वर्त्ता-मूल यह जगत् तीनों वेदोंसे ही रक्षित होता है; परन्तु राजाके उत्तम शासनसे ही वे सब भली भांति रक्षित होते हैं। जब राजा कठिन भार ग्रहण करके महत् बलके सहारे प्रजाओंकी रक्षा करता है, तब सब कोई प्रसन्नभावसे निवास करते हैं। जिसके स्थित रहनेसे सब ही स्वच्छन्दताके सहित निवास करते हैं और जिसके अभावसे ही सबका अभाव होता है; कौन पुरुष उसकी पूजा न करेगा? जो राजाका प्रिय और हितकारी होकर सब लोगोंको भय देनेवाला गुरु भारको उठाता है,

वह दोनों लोकोंको जय करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष मनमें भी राजाके अनिष्टकी अभिलाषा करेगा, वह निश्चय ही इस लोकमें क्लेश भोग करके परलोकमें नरकमें पड़ेगा। राजाको मनुष्य समझके कभी भी अवमानना करनी उचित नहीं है ; क्यों कि वह महत् देवता नररूप धारण करके पृथ्वीपर निवास करता है। जो राजा समयानुसार पञ्चरूपके कार्य्योंको किया करते हैं, वे उस समय अग्नि, सूर्य्य, मृत्यु वैश्रवण और यम इन पांच भांतिकी पदवीको अन्यतम पदवीको प्राप्त करते हैं। जिस समय राजा वञ्चित होकर भी समीपस्थ पापोंको भस्म करता है ; उस समय उसकी "पावक" संज्ञा होती है। जब दूतोंके जरिये सबके कार्य्योंका अनुसन्धान करते और प्रजा पुञ्जके मङ्गल जनक कार्य्योंका आचरण करते हैं, उस समय 'भास्कर' कहके माने जाते हैं। जब क्रुद्ध होकर पापी लोगोंका पुत्र पौत्र और सेवकोंके सहित सौ प्रकारसे नाश करते हैं उस समय उनको "मृत्यु" संज्ञा होती है। महाराज ! जब राजा धनसे उपकारियोंको तृप्त, और अपकारियोंके अनेक भांतिके रत्नोंको हरके किसीको श्रीयुक्त और किसीको नष्ट श्री करते हैं ; उस समय वे "वैश्रवण" नामसे विख्यात होते हैं। जब तीक्ष्ण दण्डसे अधर्म्मियोंको निग्रह और धर्म्मात्माओंके ऊपर कृपा प्रकाशित करते हैं ; उस समय उनको 'यम' संज्ञा होती है। महाराज ! जिसमें राजाका अपवाद होवे, ईश्वरके बनायेहुए द्वेष रहित, धर्म्मकी अभिलाषा करनेवाले दक्ष और अक्लिष्ट कर्म्मवाले मनुष्योंको वैसा कार्य्य करना उचित नहीं है ; क्यों कि राजाकी प्रतिकूलता करनेसे कभी भी सुख नहीं मिल सकता। जो राजाके अपवाद जनक कार्य्योंको करता है, अग्नि आदि जलती हुई अग्निमें भक्त करती है। परन्तु राजा जिसकी रक्षा करे, उसका किसी प्रकार नाश नहीं हो सकता, इससे राजाकी रक्षित वस्तुओंको दूरसे ही त्यागना उचित है। जैसे मृत्युसे अपनी रक्षा की जाती है, वैसेही राजस्व हरण होने पर भी आत्मरक्षा करनी उचित है ; क्योंकि उसे स्पर्श करनेसे ही जैसे यन्त्र स्पर्शसे मृग नष्ट होते हैं, वैसे ही पुरुषोंका नाश होता है। बुद्धिमान मनुष्यको उचित है, अपने समान राजा को भी रक्षा करे। जो राजधन हरता है, वह सदाके वास्ते अचेतन, अप्रतिष्ठित, भयङ्कर और महत् नरकमें पतित होता है। महाराज ! जिस को राजा, भोज, विराट्, सम्राट, क्षत्रिय, भूपति और नृपति आदि शब्दोंसे स्तुति की जाती है, कौन पुरुष उसको पूजा न करेगा ? इन्हीं सब कारणोंसे ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाला, जितात्मा जितेन्द्रिय, मेधावी, स्मृतिमान और दक्ष पुरुष राजाका आसरा ग्रहण करे। राजा भी कृतज्ञ, बुद्धिमान, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए दृढ़भक्तिवाले, जितेन्द्रिय, धर्म्मनिष्ठ और नीतिज्ञ मन्त्रीका सत्कार करे। दृढ़भक्तियुक्त, बुद्धिमान, धर्म्म जानने वाले, जितेन्द्रिय, और शूर, बड़े कार्य्योंके करनेवाले और जो कहा करते हैं मैं अकेले ही इस कर्म्मको सिद्ध करूंगा, दूसरे सहायक की आवश्यकता नहीं है ; वैसे ही लोगोंका आसरा ग्रहण करे। बुद्धि मनुष्यको प्रगल्भ करती है, परन्तु राजा सब भांतिसे सब लोगोंको प्रसंशा लाभ नहीं करने देता। राजा जिसे आक्रमण करे, उसे सुख कहां ? परन्तु उसके अनुगत रहनेसे सब भांतिसे सुख मिलता है। हे नरेन्द्र ! राजा ही प्रजासमूहके मानसिक उत्कर्ष, सत्गति, प्रतिष्ठा और परम सुख लाभका कारण है। जो लोग राजाका आसरा ग्रहण करते हैं, वे लोग इस लोक और मरनेके अनन्तर परलोकको भी जय करनेमें समर्थ होते हैं ; महायशस्वी राजा लोग भी दम, सत्य और सुहृदताके सहित पृथ्वी

शासन करते हुए महत् यश करके अमर तथा नित्य पद प्राप्त करते हैं। राज सत्तम कौशल्य वसुमना बृहस्पतिके ऐसे वचन सुनके यत्नपूर्व्वक प्रजापालन करने लगे।

६८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! राजाके कर्त्तव्य कर्म्मके बीच और क्या शेष है? और वह दूत, सेवक, स्त्री, पुत्र तथा इतरवर्णके लोगोंमेंसे किसका किस भांति विश्वास करे तथा किसे किस भांतिके कार्य्योंमें नियुक्त करे; आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, महाराज! राजाको दूसरे जो सब कार्य्य करने उचित है, तुम एकाग्रचित्तसे उस समस्त राजनीतिको सुनो। राजा पहिले अपने चित्तको जीतकर तब शत्रुओंके जीतने की इच्छा करे? जिसने श्रोत्र आदि पञ्च इन्द्रियों और अपने चित्तको वशमें किया है, वैसा जितेन्द्रिय राजा ही शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ होता है। हे पुरुषसिंह कुरुनन्दन! राजाको उचित है, "किला, राज्य-सीमाका वर्ज्य भाग, नगर, उपवन, अन्तःपुरके बगीचे, चतुष्पथ, पुर, अन्तःपुर और सब स्थानोंमें पैदल सेना स्थापित करे। जड़, अन्धे और बधिर रूपवाले, भूखप्यास आदि क्लेशोंको सहनेवाले, बुद्धिमान और परीक्षामें निपुण पुरुषोंको दूत-रूपसे नियुक्त करे। गुप्त चरोंको नियुक्त करके सब भांतिके सेवकों अनेक प्रकारके मित्रों और पुत्रोंके कार्य्योंकी परीक्षा करे। पुरजनपद और सामन्त राजाओंके समीप इस प्रकार गुप्त चरोंको नियत करे कि वे लोग आपसमें एक दूसरेको न जान सकें। हे भरतर्षभ! राजा अपने मल्लक्रीड़ा स्थान, समाज, भिक्षुक, पुष्पवाटिका, बाहिरी बगीचे, पण्डितोंकी सभा स्थान, अधिकारियोंके निवास स्थान, राजसभा और प्रधान पुरुषोंके गृह इन सब स्थानोंमें अनुसन्धान करनेसे ही शत्रुओंके भेजे हुए दूतोंको जान सकते हैं। हे पाण्डुपुत्र! बुद्धिमान राजा इसी भांति शत्रु-प्रेरित दूतोंको मालूम करे; क्योंकि पहिले दूतोंको मालूम करनेसे मङ्गल होता है। जब राजा स्वयं अपनेको बलहीन समझे, तब सेवकोंके सङ्ग विचार करके बलवानके साथ सन्धि करे यदि शत्रुसे अपनी हीनता न समझे, तौभी बुद्धिमान राजा थोड़े स्वार्थ लाभकी आशा रहनेपर भी शत्रुके साथ शीघ्र सन्धि करे जो लोग गुणवान, महा उत्साहयुक्त धर्म्म जानने वाले और साधु हैं, राजा वैसे पुरुषोंके सङ्ग सन्धि करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन करे। बुद्धिमान राजा अपनेको उच्छिद्यमान समझके लोकद्वेषी पूर्व्व अपकारी लोगोंका नाश करे। जो राजा किसी भांति उपकार और अपकार करनेमें समर्थ न हो तथा अपना भी उद्धार करनेमें असमर्थ हो; उसके विषयमें उपेक्षा प्रकाशित कर सकते हैं! युद्धके वास्ते प्रस्थान करनेकी इच्छा होने पर पहिले नगर रक्षाका उपाय, यात्राकालकी सब वस्तुओंका संग्रह करके कल्याणजनक वचनोंसे अभिनन्दित और महत् बलसे युक्त होकर स्वच्छन्दताके सहित मूर्ख विचारहीन, बन्धुओंसे रहित दूसरेके साथ युद्धमें आसक्त असावधान और निर्ब्बल राजाकी ओर चढ़ाई करे। यदि वह राजाबल और पराक्रमहीन होनेपर भी निज सामर्थ्य प्रकाशित करनेकी इच्छासे स्वयं वशमें न होवे, तो उसके राज्यमें निवास करके उसे सब भांतिसे पीड़ित करे। शस्त्र, अग्नि और विष आदिसे प्रजासमूहको मोहित करके उसके राज्यको पीड़ित करे; अपने सेवकोंके जरिये उसके मित्रों तथा सेवकोंमें भेद करा देवे। बृहस्पतिने कहा है, कि बुद्धिमान राजा राज्यकी अभिलाषासे युद्धमें बिना प्रवृत्त हुए ही सन्धि आदि तीनों उपायसे अर्थ संग्रह

करे। पण्डित राजा साम, दान और भेद इन तीनों उपायसे जो कुछ धन प्राप्त कर सके, उसीमें सन्तुष्ट होवे।

हे कुरुनन्दन ! प्रजासमूहको रक्षाके वास्ते उनको प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे छठवां अंश कर लेवे पुरवासियोंकी रक्षाके वास्ते मतवाले, उन्मत्त आदि दश धर्म्मगत लोगोंको दण्ड देकर उनसे बहुत वा थोड़ा हो हो, धन ग्रहण करे, क्योंकि उन लोगोंको दण्ड न देनेसे वे सब पुरवासियोंको क्लेश देते हैं। पुरवासियोंको पुत्र समान पालन करे, परन्तु विचार कार्य्यमें प्रवृत्त होकर स्वजन समझके उनके ऊपर स्नेह न करे। राजा वादी प्रतिवादियोंके वचनका विचार कार्य्य सुननेके वास्ते सदा सब अर्थोंके जाननेवाले पण्डितोंको नियुक्त करे, क्यों कि उनसे ही राज्य प्रतिष्ठित होता है। राजाको उचित है, सुवर्ण आदिकोंकी खान, लवण उत्पत्तिके स्थान धान्य आदि बिकनेके स्थान, नदी और हाथियोंके विचारके वास्ते निज हितकारी आत्मीय पुरुषको नियुक्त करे. सदा यथा रीतिसे दण्ड धारण करनेवाले राजा धर्म्मजनित फल प्राप्त करते हैं; क्यों कि समयके अनुसार दण्ड-विधान ही राजाओंका परम धर्म्म कहके वर्णित हुआ है। हे भारत ! राजाओंको वेद वेदाङ्ग आदि सब विद्याओंको कायिक्लेश कर पढ़ना और बुद्धिमान, तपस्यामें रत, सदा दानशील तथा यज्ञशील होना उचित है; क्यों कि व्यवहार लुप्त होनेसे उसे स्वर्गलाभ ही कहां और यश ही कहां है ? दूसरे बलवान राजासे पीड़ित होनेपर बुद्धिमान राजा किलेके भीतर आश्रय ग्रहण करे, और समयके अनुसार मित्रका आवाहन करके उनके सङ्ग साम, भेद, वा विग्रह विषयक युक्तिको निर्णय करे। वनके मार्गोंमें अहीरोंको स्थित करे; आवश्यकता होनेपर गावोंको एक स्थानसे उठाके उन लोगोंको उपनगरमें प्रवेश करावे। राज्यमें जो सब गुप्त और कठिनतासे आनने योग्य स्थान हैं, युद्ध उपस्थित होनेपर धनवानों और बलवान पुरुषोंको मोटे बचनसे धीरज देके उन्हीं स्थानोंमें भेजे। राजा स्वयं उपस्थित होके निज राज्यके शस्योंको पृथक् करके मार्ग बनावे, और उसमें यदि प्रवेश न कर सके, तो चारों ओरसे आग लगाके वह सब भस्म कर देवे। शत्रुके मित्रोंमें भेद कराके अथवा निज बलसे ही शत्रुके खेतमें स्थित शस्योंको नष्ट करे। नदी पथमें स्थित बांधोंको तोड़ देवे; दीर्घिकाका जल सब बाहर कर देवे और जिस जलको बाहर करनेको उपाय न होवे, उसे जलको विषादिकोंसे दूषित कर देवे। विशेष मित्रकार्य्य उपस्थित होनेपर भी उसे परित्याग कर वर्त्तमान और भविष्यकार्य्योंकी चिन्ता करते हुए रणभूमिमें शत्रुको पराजित करनेमें समर्थ शत्रुके शत्रुओंके साथ मित्रता करके उनकी सेनासे ही शत्रुको निज देशसे दूर करे। जिसमें शत्रु लोग आश्रय ले सकें, वैसे छोटे छोटे किलोंको तोड़ देवे चैत्यवृक्षके अतिरिक्त अन्य सब क्षुद्र वृक्षोंको जड़ काट दे; परन्तु चैत्यवृक्षका पत्ता पर्य्यन्त भी न तोड़े, किलेकी दीवार, शूरवीरोंके निवासस्थान सब तैय्यार करे; वायुका निकास, किलेसे बाहरी शत्रुओंको देखना और उनके ऊपर अग्नेयास्त्र और गोली चलानेके वास्ते किलेकी दिवारोंमें छोटे छोटे छेदोंको तैय्यार करावे। किलेकी खांई घड़ियाल और बड़ी शरीरवाली मछलियोंसे परिपूरित करे। नगरसे बाहर जानेके वास्ते छोटे द्वार बनाके अन्य दरवाजोंकी भांति उसकी भी रक्षाको उपाय करे। सब दरवाजोंपर बड़े यत्न और आवश्यकता होनेपर चलाई जा सकें, ऐसी शतघ्नी स्थापित करे। बहुत सा काष्ठ संग्रह कर रखे, जगह जगह कूए खुदवावे और जो सब कूए जलकी इच्छाबाले दूसरे पुरुषोंने पहिलेसे खोद रखे हैं, उसके जलको शुद्ध करावे। बैत महीनेमें तृण आदिसे छाये

हुए गृहोंमें गोली मट्टी लेपन करावे और अन्य स्थानोंके अवस्थित तृणोंको उठवा लावे। उस समय राजा रात्रिमें ही भक्ष्य आदि वस्तुओंको पाक करावे और अग्निहोत्रके अतिरिक्त दूसरे किसी कार्य्यमें भी दिनके समय अग्नि न जलने देवे। लुहसार और सूतिका गृहको भली भांति रचित करके अग्नि प्रज्वलित करावे और उस अग्निको गृहके भीतर प्रविष्ट करके पत्ते आदिकोंसे छिपा रखे। पुरीकी रक्षा करनेके वास्ते जो दिनमें अग्नि जलावेगा, उसे प्राण दण्ड होगा" ऐसा ही ढिंढोरा दिला देवे। हे नरश्रेष्ठ! उस ही समय भिक्षुक, शंकटवाले, क्लीव, उन्मत्त और कुशीलक पुरुषोंको राज्यसे बाहर करे; क्यों कि उस समय उन लोगोंके राज्यमें रहनेसे अनेक दोष उपस्थित होता है। चौराहे, मन्त्रादि अठारह भांतिके तीर्थ सभा और साधारण पुरुषोंके गृहोंके निमित्त उचित रीतिसे प्रहरी नियुक्त करे। राजाको उचित है, बहुत बड़ा राजमार्ग तैय्यार करावे, और जलका स्थान तथा बेचने खरीदनेकी जगह निर्दिष्ट कर दे। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! भण्डार, शस्त्रागार, योधागार, घुड़शाल, गजशाला सेनाका निवास स्थान, परिघा, भीतरी मार्ग और अन्तःपुरके बगीचे सब इस प्रकार गोपनीय स्थानमें तैय्यार करावे, कि दूसरा कोई किसी प्रकार भी देख न सके। पराये बलसे पीड़ित राजा तेल, चर्बी, मधु, घृत, अनेक भांतिकी औषधी और अन्न आदि सञ्चय करे। अङ्गार, कुश, मूञ्ज, पत्ता, शर, लेखक, घास, काठ और विषमें बुझे हुए बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि अस्त्रों और वर्म्म आदि आवश्यकीय वस्तुओंको संग्रह कर रखे। सब भांतिकी औषधी, मूल, फल और विष, भक्ष्य, रोग और कृत्या इन चार भांतिके उत्पातोंको शान्त करनेवाले, चार भांतिके वैद्योंका संग्रह करे। नट, नाचनेवाले, मल्ल और मायावियोंसे राजनगरीको शोभित और दूसरे सब पुरुषोंको आनन्दित कर रखे। सेवक, मन्त्री और पुरवासियोंमेंसे जिससे शङ्का हो, उसे अपने वशमें कर रखे। हे राजेन्द्र! यदि राजा क्रोधके वशमें होकर अकारण ही दूसरेकी अवमानना वा ताड़ना करे, तो शास्त्रमें कहे हुए यथा उचित बहुत सा धन-दान, और अनेक भांतिके शान्त वचनसे उसका सम्मान करनेसे उससे उऋण होगा। जो सात विषय राजाको अवश्य रक्षा करनेके योग्य हैं, उसे सुनो;—हे कुरुनन्दन! राजाको उचित है, कि आत्मा, सेवक, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद और पुर इस सप्तात्मक राज्य सब भांति यत्नपूर्व्वक प्रतिपालन करे।

हे पुरुषसिंह! जिन राजाओंने षाड्गुण्य त्रिवर्ग और परम त्रिवर्ग मालूम किये हैं, वेही इस पृथ्वीको भोग करनेमें समर्थ होते हैं। हे युधिष्ठिर! मैंने जो षाड्गुण्यकी कथा कही, उसे सुनो,—शत्रुके साथ सन्धि करके निःशङ्क चित्तसे निवास; शत्रुके ऊपर चढ़ाई, शत्रुको भय दिखानेके वास्ते यात्राका छल दिखाके निवास करना, द्वैधी भाव और अन्य किला तथा दूसरे प्रबल राजाका आसरा ग्रहण करना, येही छः राजाके षाड्गुण्य कहाते हैं। त्रिवर्गकी कथा जो मैंने कही है, उसे भी एकाग्रचित्तसे सुनो;—क्षय, स्थान और वृद्धि येही त्रिवर्ग हैं, धर्म्म, अर्थ और काम ये परम त्रिवर्ग हैं; समयके अनुसार इनका आचरण करना उचित है। इसी भांति राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा पृथ्वी पालन किया करते है। हे यादवीनन्दन! तुम्हारा मङ्गल हो, इस ही अर्थमें बृहस्पतिने जो दो श्लोक कहे थे, उन दोनोंको तुम्हें सुनना उचित है। "पृथ्वी और पुरवासियोंको यथारीतिसे पालन और दूसरे सब भांतिके कार्य्य करके राजा लोग परकालमें सुख प्राप्त करते हैं। जो प्रजापुञ्जको यथार्थ रीतिसे

पालन करते हैं, वैसे राजाकी तपस्यादि क्या फल है ? और उन्हें यज्ञकी ही क्या आवश्यकता है ? क्यों कि वे स्वयं सब धर्म्मोंके जाननेवाले हैं ।

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! दण्डनीति और समस्त राजा तथा सब ही इस उभय प्रकारसे व्यस्त हुआ करते हैं, तिसमेंसे किसे किस भांतिके कार्य्योंसे कैसो सिद्धि प्राप्त होती है, आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये ।

भीष्म बोले, हे भरत नन्दन महाराज ! दण्डनीतिसे जो राजा और प्रजाका महासौभाग्य होता है ; मैं युक्तियुक्त सिद्ध वाक्यसे वह सब वर्णन करता हूं, सुनो । राजाके यथा उचितसे चलानेपर दण्डनीति चारों वर्णोंकी प्रजाको अधर्म्मसे निवृत्त करके स्वधर्म्ममें स्थापित करती है ! चारों वर्णोंकी प्रजा स्वधर्म्ममें रत, सब मर्य्यादासे युक्त और दण्डनीति कृत मंगलके जरिये निर्भय होकर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके वास्ते सामर्थ्यके अनुसार यत्नवान होती है, और उससे ही मनुष्योंको परम सुख प्राप्त होता है । हे युधिष्ठिर ! काल ही राजाका कारण है, अथवा राजा ही कालका कारण है, तुम्हें जिसमें ऐसी शङ्का न उपस्थित होवे और इसे ही निश्चय जान रखो, कि राजा ही महा कालका कारण है । जब राजा पूरी रीतिसे दण्डनीति प्रयोग करता है, तभी कालक्रमसे सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ करता है, तिसके अनन्तर उस कृत युगमें केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है ; अधर्म्म एकबारगी लुप्त होजाता और प्रजा पुरुषका मन नसमें रत नहीं होता । प्रजा संशयरहित होकर योगका आचरण करती है और उन लोगोंमें सब वैदिक गुण उत्पन्न होते हैं । सब ऋतु आपद रहित और सुखदायक होती हैं, मनुष्योंका स्वर, वर्ण और मन प्रसन्न रहता है, कोई रोगसे पीड़ित नहीं होता और किसीकी अल्पायु नहीं दीख पड़ती । युधिष्ठिर ! इस सतयुगमें कोई स्त्री विधवा तथा कोई कृपण नहीं होते बिना जोते ही पृथ्वीमें औषध और सब भांतिके अन्न उत्पन्न होते रहते हैं ; छाल, पत्ते, फल और मूल दृढ़ होते हैं । उस कृत-युगमें अधर्म्म लुप्त होजाता है और केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है, हे युधिष्ठिर ! ऐसे ही सतयुगके धर्म्म समझ रखो !

जब राजा पूर्ण रीतिसे प्रवृत्त न होकर दण्डनीतिके चौथे अंशको परित्याग करके उसके तीन भागके ही अनुयायी होता है, तब ही त्रेतायुग प्रवर्त्तित होता है । उस त्रेतायुगमें तीन हिस्से धर्म्म और एक भाग अधर्म्म प्रचलित होता है ; जोतनेसे पृथ्वीमें अन्न और औषध उत्पन्न होती हैं ।

जब राजा दण्डनीतिका आधा भाग परित्यागके आधे भागके ही अनुवर्त्ती होके कार्य्य करता है, तब द्वापर नाम युग उत्पन्न होता है । उस समय लोग दो हिस्से अधर्म्म और दो भाग धर्म्मके अनुयायी होते हैं ; पृथ्वी जोतनेपर भी आधा ही फल देती है ।

जब राजा दण्डनीतिको त्यागके केवल मात्र असत् उपायसे ही प्रजा समूहको पीड़ित किया करता है, तभी कलियुग प्रवर्त्तित होता है, कलियुगमें कहीं भी धर्म्म नहीं दीख पड़ता, सब ही अधर्म्मसे परिपूरित और सब वर्ण ही निज कर्म्मोंसे विचलित हुआ करते हैं, शूद्र लोग भिक्षा वृत्ति और ब्राह्मण लोग दूसरेकी सेवासे जीविका निर्व्वाह करते हैं ; योग क्षेम पुरुष नष्ट होते और वर्णसङ्करोंकी बढ़ती होती है । वैदिक कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे उसमें कुछ फल न होकर उलटा विगुण ही हुआ करता है, कोई ऋतु भी सुखदायक नहीं होती बल्कि सब ऋतुओंमें ही प्रजा रोगोंसे पीड़ित होती है । मनुष्योंके स्वर, वर्ण और मनका ह्रास होता ; है, और वे लोग रोग-पीड़ित

तथा अल्पायु होकर अकालमें ही मृत्युको प्राप्त होते हैं। हे युधिष्ठिर! कलियुगमें स्त्रियें विधवा, और प्रजा कुरूप हुआ करती हैं; बादल सब स्थानोंमें जलकी वर्षा नहीं करते; धान्य आदिक भी कभी कभी उत्पन्न होते हैं। जब राजा दण्डनीतिमें स्थित न होकर प्रजाके रक्षाकी इच्छा नहीं करता, उस समय सब रसोंका भी नाश होजाता है। राजा ही सतयुग, त्रेता, द्वापर और चौथे कलियुग,—इन चारों युगोंके परिवर्त्तनका कारण है। राजा सतयुगके आचरित हुए सब कार्य्योंसे अनन्त, त्रेतायुगके आचरणसे कुछ न्यून और द्वापर युगके आचरित धर्म्म और अधर्मकी संख्याके अनुसार अधिक वा अल्प स्वर्ग-सुख लाभ करता है। परन्तु कलियुगके आचरित कार्य्योंसे केवल पापयुक्त कष्ट ही भोग किया करता है। तिसके अनन्तर प्रजा समूहके आचरित पाप-पङ्कमें डूबके वह पापी नीचकर्म्म करनेवाला राजा अनेक वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास करता है।

युधिष्ठिर! क्षत्रिय निखिल दण्डनीतिमें तत्पर तथा उसे ही सम्मुखवर्त्तिनी करके सदा अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्तिके वास्ते यत्न और प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षाका उपाय करे। लोगोंकी यथा उचित व्यवस्थापित करनेवाली मर्य्यादा और लोकभाविनी यह दण्डनीति पूर्ण रीतिसे चलाई जाने पर इस प्रकार सब लोगोंकी रक्षा करती है, जैसे माता पिता बालककी रक्षा करते हैं। हे नरनाथ! राजाका दण्डनीति विशारद होना ही राज्यका परम धर्म्म है; क्यों कि यह निश्चय जान रखो, कि दण्डनीतिसे ही सब लोग भली भांति स्थापित हुए हैं। हे कुरुनन्दन! मैं इस ही कारण कहता हूं, कि तुम नीति निपुण होके धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करो; क्यों कि इसी भांति प्रजाकी रक्षा करनेसे दुर्ज्जय स्वर्गको भी जीतनेमें समर्थ होंगे।

६९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नृनाथ! राजा कैसे कार्य्योंसे इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें अविनाश सुखदायक सब अर्थोंको अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं?

भीष्म बोले, गुणवान मनुष्य जो सब धर्म्मका आचरण करके कल्याण प्राप्त किया करते हैं; अकटुक आदि छत्तीस गुणोंसे युक्त वह धर्म्म छत्तीस प्रकारका है। राग द्वेषसे रहित होके धर्म्म कार्य्योंका आचरण, लोभके वशमें न होकर परलोककी ओर दृष्टि रखके स्नेह प्रकाशित करना; किसी भांतिका निठुर आचरण करके धन उपार्ज्जन न करना, और जिसमें धर्म्म तथा अर्थ नष्ट न होवे, उस ही भांति यथा उचित इन्द्रियोंकी प्रीतिका साधन करना उचित है। दीनता रहित होके प्रिय वचन कहे, शूर होके भी अपनी बड़ाई न करे, प्रगल्भ होकर भी दयावान होवे और दाता होके भी अपात्रको दान न देवे। अनार्य्योंके साथ सन्धि, बन्धुजनोंके सङ्ग विग्रह, अभक्त पुरुषको दूत कार्य्योंमें नियत और दूसरेको पीड़ित न करके कार्य्य करना उचित है। झूठेके निकट प्रयोजन कहना, अपने मुखसे निजगुण वर्णन करना, साधुओंके निकटसे धन हरण करना कर्त्तव्य नहीं है। बिना परीक्षा किये ही महा दण्ड प्रयोग, दूसरेके निकट विचार प्रकाश, लोभियोंको धन दान और अपकारियोंका विश्वास करना उचित नहीं है। राजा सदा ईर्षारहित, गुप्तदार; शुद्ध और घृणा रहित होवे; जिससे हानि हो, वैसे अन्नको त्यागके शुद्ध अन्न भोजन करे और इकबारगी स्त्रियोंमें आसक्त न होवे। शान्तभावसे माननीय पुरुषोंका आदर, माया रहित होकर गुरुजनोंकी सेवा, दम्भ रहित होकर देवताओंकी पूजा करे और जिस धनको लेना निषेध नहीं है उसे ही ग्रहण करे। प्रणय परित्याग करके सेवा करे और दक्ष होकर समयकी प्रतीक्षा

करे। धन देके सन्धि करना और आश्रयदान करके परित्याग करना उचित नहीं है। विशेष रीतिसे बिना मालूम किये प्रहार, शत्रुको नाश करके शोक, अकस्मात् क्रोध और अपकारियोंके निकट कोमलता प्रकाश करनी उचित नहीं है। हे युधिष्ठिर! यदि तुम कल्याण प्राप्तिकी इच्छा करते हो, तो राज्य करते हुए ऐसा ही आचरण करना; क्यों कि इसके विपरीत आचरणसे राजाओंका मङ्गल नहीं हो सकता। जो यथार्थ रीतिसे इन सब गुणोंके अनुसार कार्य्य करते हैं, उनका इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी मङ्गल होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र भीमादिकोंसे रक्षित बुद्धिमान महाराज युधिष्ठिर शान्तनु-नन्दन भीष्मके ऐसे वचन सुनके उस समय उन पितामहको बन्दना करके उसही भांति आचरण करने लगे।

७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार प्रजापालन करने पर आधिरूपी बन्धनमें नहीं फंसते और व्यवहार निर्णय आदि कार्य्योंमें भी अन्यथा नहीं होता; आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं वह सम्पूर्ण नित्य धर्म्म संक्षेप रूपसे तुम्हारे निकट वर्णन करूंगा, क्यों कि वह समस्त धर्म्म विस्तारके सहित वर्णित होने पर कदापि शेष न होगा। तुम धर्म्ममें निष्ठावान, वेदज्ञ, देवपूजामें रत व्रत करनेवाले और गृहमें आये हुये गुणवान ब्राह्मणोंको सदा पूजा करना। ब्राह्मणोंके उपस्थित होने पर पहिले उठके सम्मान दिखाकर उनके दोनों चरणोंको बन्दना करे; तिसके अनन्तर पुरोहितके साथ दूसरे सब कार्य्योंको करे। इसी भांति धर्म्म कार्य्योंको अन्य मङ्गल जनक कार्य्योंमें नियुक्त करके उनसे अर्थ सिद्धि-सूचक जय आशीर्व्वाद पाठ करावे। हे भारत! राजा काम क्रोध त्यागके सदा निजबुद्धिसे और और सरल भाव अवलम्बन करके यथार्थ प्राप्त वस्तुओंको ग्रहण करे। जो मूढ़ राजा काम क्रोधके वशमें होकर धन संग्रह करते हैं, वे धन वा धर्म्म कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते। लोभी और मूर्खोंको लोभ युक्त धन सम्बन्धीय कार्य्योंमें नियुक्त न करके लोभरहित बुद्धिमान पुरुषोंको वैसे कार्य्योंमें नियत करना उचित है; क्योंकि कार्य्याकार्य्य विवेकसे रहित मूर्ख पुरुष धनाधिकारी होनेपर काम क्रोधके वशमें होकर प्रजासमूहको पीड़ित किया करता है। राजाको उचित है, कि गिनतीमें अधिक न हो, उस ही भांति उत्पन्न वस्तुओंमेंसे छठवां भाग बलि, शास्त्रके अनुसार अपराधियोंको दण्ड और मार्गमें बनियोंकी रक्षा करके जो वेतन प्राप्त होवे, उसीसे धन सञ्चय करे। राजा इसी भांति धान्य आदि वस्तुओंमें छठवां भाग कर ग्रहण करके राज्यको रक्षा करे, परन्तु यदि उन लोगोंके वार्षिक अहारके योग्य अन्न आदि न बचे, तो उन लोगोंके अहारके निमित्त उचित उपाय कर देवे। राजा यदि रक्षा करनेवाला, दाता, सदा धर्म्ममें रत, आलसरहित और काम क्रोधसे हीन हो, तो मनुष्य लोग उसमें अनुरक्त होते हैं। हे युधिष्ठिर! तुम कभी भी लोभके वशमें होकर अधर्म्म आचरणसे धन उपार्ज्जन न करना; क्यों कि जो शास्त्रके अनुकूल कार्य्योंको नहीं करते; उनका धर्म्म अर्थ सब मिथ्या होजाता है। राजा केवल अर्थ शास्त्रके वशमें होनेसे कभी धर्म्म और अर्थ प्राप्त नहीं कर सकते, वरन उनका वह अर्थ कुस्थानमें विनष्ट होता है। राजा जो मोहके वशमें होकर अशास्त्रीय कर ग्रहण करके प्रजापुञ्जको पीड़ित करते हुए स्वयं ही अपना नाश करता है; धन ही उसका मूल है। जैसे दूध चाहने-

वाला पुरुष गऊका स्तन काटनेसे दूध नहीं प्राप्त कर सकता, वैसे ही असत् उपाय अवलम्बन करके राज्यको पीड़ित करनेसे उसको कदापि बढ़ती नहीं होती। जैसे जो पुरुष सदा दूध देनेवाली गऊकी सेवा करता है, वही दूध पाता है, वैसे ही राजा भी उपाय आदिकोंसे राज्य पालन करनेसे ही सुख लाभ कर सकता है। जैसे माता बालकको स्तन दान करके दूध पिलाती है, वैसे ही पृथ्वी राजासे भली भांति रक्षित होनेपर दूध देनेवालीकी भांति अन्न तथा सुवर्ण आदि वस्तु प्रदान किया करती है, महाराज! तुम वृक्षकी जड़ काटनेवालेकी भांति न होकर पुष्प सञ्चय करनेवाले मालीकी वृत्ति अवलम्बन करके राज्यकी रक्षा करना ऐसा होनेसे बहुत दिनोंतक पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ होगे। पर चक्रसे यद्यपि तुम्हारा धन क्षय हो, तो सामरूप उपाय अवलम्बन करके अब्राह्मणोंका धन ग्रहण करना। हे युधिष्ठिर! उन्नत अवस्थाकी तो कुछ बात ही नहीं है, अवनतिकी दशा उपस्थित होनेपर भी जिसमें ब्राह्मणको धनवान देखके तुम्हारा मन विचलित न होवे; तुम सदा उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और निज शक्तिके अनुसार यथायोग्य धन दान करके उन लोगोंको सन्तुष्ट करना; ऐसा होनेसे दुर्जय स्वर्ग लाभ कर सकोगे। हे कुरुनन्दन! तुम इसी भांति धर्म-वृत्ति अवलम्बन करके प्रजा-पालन करनेसे परिणाममें शुभजनक पुण्य और नित्य यश प्राप्त करोगे। हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! तुम धर्म और व्यवहारके अनुसार यथा नियमसे प्रजा पालन करो, ऐसा होनेसे कभी भी आधि-रूपी बन्धनमें नहीं फंसोगे। जब कि चराचर जीवोंकी रक्षा करना ही परम धर्म और परम दया कहके वर्णित हुआ है; तब राजा प्रजा समूहकी रक्षा करे, यही उसका सबसे श्रेष्ठधर्म है। राजा जो राज्यरक्षामें नियुक्त होकर जीवोंके ऊपर दया प्रकाशित करता है, धर्म जाननेवाले पण्डित लोग उसे ही उसका परम धर्म कहा करते हैं। राजा यदि एक दिन भी भयके कारण प्रजाके रक्षाकी उपाय न करके जो पाप सञ्चय करता है, सहस्र वर्षके अनन्तर उससे मुक्त होता है; परन्तु प्रजासमूहकी धर्मपूर्व्वक एकदिन मात्र रक्षा करनेसे दश हजार वर्ष पर्य्यन्त स्वर्गमें उसका फल भोग करते रहते हैं, योगी लोग पर्य्याय क्रमसे गृहस्थ, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारियोंके धर्म आचरण करके जिन लोकोंको जय करते हैं, राजा क्षण मात्र धर्म पूर्व्वक प्रजा-पालन करनेसे ही उन लोकोंको पाते हैं। हे कुन्तीनन्दन! तुम इस ही भांति यत्नपूर्व्वक धर्मको पालन करो, ऐसा होनेसे तुम उस ही पुण्यफलसे कभी भी आधिरूपी बन्धनमें नहीं बंधोगे; बल्कि परलोकमें महत् सम्पत्ति प्राप्त करोगे। राजा राजरहित होनेपर इस प्रकार धर्म सब कभी भी आचरित नहीं होते; इससे राजा ही उस सम्पूर्ण धर्मका फल भोग करता है. युधिष्ठिर! तुम भी इस बृहत् राजको पाके धीरज धरके धर्मपूर्व्वक प्रजासमूहको प्रतिपालन करो और सोमरस आदिसे इन्द्रकी भी अभिलाष पूरी करते हुए सुहृद मित्रोंको सन्तुष्ट करो।

७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महाराज! जो साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंको राजसे दूर करते हैं, उन्हें ही राज पुरोहित बनाना राजाका कर्त्तव्य है। इस विषयमें पुरूरवाके पुत्र ऐलके सङ्ग वायुका जो वार्त्तालाप हुआ था; पण्डित लोग इस प्रसङ्गमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं।

पुरूरवा बोले, "किससे ब्राह्मण लोग उत्पन्न हुए हैं? क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंकी भी

किससे उत्पत्ति हुई है और किस कारणसे ब्राह्मण लोग सबसे श्रेष्ठ हुए, आप यह सब मेरे निकट वर्णन कीजिये।

वायु बोले, 'हे भरतर्षभ राजसत्तम! ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, दोनों भुजासे क्षत्रिय और ऊरुसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, और इन तीनों वर्णोंकी सेवाके वास्ते चौथे वर्ण शूद्रको उत्पन्न किया। ब्राह्मण उत्पन्न होते ही धर्म्मरूप कोषकी रक्षाके निमित्त सब भूतोंके ईश्वर होके पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया; उसे देखके पितामहने प्रजासमूहको रक्षाके वास्ते द्वितीय वर्ण क्षत्रियका दण्ड धारण करनेके निमित्त उत्पन्न करके पृथ्वीके शासन कार्य्यमें नियुक्त किया; वैश्य धन्य धान्यसे तीनों वर्णोंका भरण करे और शूद्र ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करे; ऐसी ही आज्ञा की।'

पुरूरवा बोले, हे वायु! यह पृथ्वी और इसका समस्त धन धर्म्मके अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनोंके बीच किसीका हो सकता है? आप कृपाकर यह विषय मेरे निकट वर्णन करिये।

वायु बोले, 'धर्म्म जाननेवाले सब लोग कहा करते हैं, कि पृथिवी और इसका जितना धन है, वह सब ज्येष्ठत्व और आभिजात्यके कारण ब्राह्मणका ही होसकता है। ब्राह्मण सब वर्णोंके गुरु ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, इससे वे जो कुछ दान करते, पहरते और भोजन करते हैं, वह सब अपने धनसे ही किया करते हैं। जैसे स्त्रियें पतिके न रहनेपर देवरको पति करती हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंके रक्षा न करनेसे पृथ्वी आनन्तर्य्यके कारण क्षत्रियोंको ही अपना पति किया करती है। महाराज! यही प्रथम कल्प है, परन्तु आपत्कालमें इसका विपरीत भाव भी हो सकता है। यदि तुम्हें वह उत्तम स्थान स्वर्ग और स्वधर्म्म उपार्जनकी अभिलाषा हो, तब तुम जो कुछ भूमि जय करो, वह सब वैदिक कर्म्ममें रत, धर्म्म जाननेवाले, तपस्वी, निज धर्म्ममें अनुरक्त लोभ रहित ब्राह्मणोंको दान करना। जो बुद्धिमान विनीत और सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग निज श्रेष्ठ बुद्धिके प्रभावसे विचित्र वाक्योंसे राजाको सन्मार्गमें लाते हैं, वेही राज पुरोहित हैं, वे उपदेश युक्त अभिमान रहित और क्षत्रिय धर्म्म रत राजाके आचरित धर्म्मके अंशभागी होते हैं; और वह बुद्धिमान राजा भी प्रजा-पुञ्जके समीप निजकर्म्मके अनुसार सत्कार और महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। इसी भांति प्रजा राजाका आसरा ग्रहण करके और उससे भली भांति रक्षित होके निज धर्म्ममें निवास करती हुई स्वच्छन्दता और निर्भयताके सहित जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा उस धर्म्मका चतुर्थांश फलभागी होता है। देवता, मनुष्य, पितर गन्धर्व्व, सर्प और राक्षस लोग यज्ञका ही आसरा किया करते हैं, परन्तु राजा रहित होनेसे यज्ञादिक सब कर्म्म लुप्त होते हैं। देवता और पितर लोग यज्ञादिकोंमें होम किये हुए घृतादिकसे ही जीवन धारण करते हैं, परन्तु वे यज्ञादि सब कर्म्म राजाके अधीन है। राजशासन रहनेसे ही प्रजा धूपके समय छाया, जल और शीतल वायुसे, और शीत ऋतुमें वस्त्र, अग्नि तथा सूर्य्यके उत्तापसे सुख अनुभव किया करती है और उन लोगोंका मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें रमण करता है; परन्तु जब राजासे रहित होंगे, तब वे लोग भयसे युक्त होकर किसी प्रकार भी वैसा सुख अनुभव नहीं कर सकेंगे, तब वैसे समयमें जो पुरुष अभय दान करते हैं, उन्हें ही महत् फल प्राप्त होता है, अधिक क्या कहूं, उस समय प्राण पर्य्यन्तदान करनेमें भी संकुचित न होवे; क्यों कि कोई दान भी प्राण दानके समान नहीं है। राजा ही सबका आधार है और वही समयके अनुसार इन्द्र, यम

तथा धर्म्म इत्यादि विविध रूप धारण किया करता है।

७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा राज्य शासनमें प्रतिष्ठित होकर अर्थकी गहन गतिको विचारके शीघ्र ही विद्वान और बहुश्रुत ब्राह्मणको पुरोहित कार्य्यमें नियुक्त करे। महाराज! जिसका राज पुरोहित धर्म्मात्मा और मन्त्र जाननेवाला तथा राजा भी वैसे ही गुणोंसे युक्त होता है, उन प्रजासमूहका सब भांतिसे कल्याण हुआ करता है। राजा और राजपुरोहित आपसमें आलस रहित और सावधान होकर सुहृदता अवलम्बन करके तपस्वियोंकी भांति धर्म्ममें रत और श्रद्धावान होनेसे देवता, पितर, पुत्र और सबकी उन्नति साधन करते हैं। प्रजा ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सम्मान करनेसे सुख पाती है, परन्तु उनकी अवमानना करनेसे नष्ट होती है; क्यों कि पण्डित लोग ब्राह्मण और क्षत्रियको ही सब वर्णोंका मूल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस प्रस्तावमें ऐल और कश्यपके सम्वाद रूपी जिस इतिहासका उदाहरण देते हैं, उसे सुनो।

ऐल बोले, ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनों तेजसे राज्य रक्षित हुआ करता है, परन्तु इन दोनोंमें यदि कोई किसीको परित्याग करे, तो सब वर्ण किसका आसरा ग्रहण करते हैं, और किसके जरिये रक्षित होते हैं?

कश्यप बोले, ब्राह्मण यदि क्षत्रियको परित्याग करें, तो उसका वह राज्य नष्ट होता है, डाकू लोग राज्यमें उपद्रव किया करते और पण्डित लोग वैसे क्षत्रियको म्लेच्छजाति करके अनुमान किया करते हैं। क्षत्रिय लोग भी यदि ब्राह्मणको परित्याग करें, तो उनके दृव्योंकी बढ़ती, गमेर-सहित तथा धर्म्म कार्य्य आवरित नहीं होते और उनके पुत्र भी यथा रीतिसे रक्षित होके वेदाध्ययन करके यज्ञादि कर्म्मोंका आचरण नहीं करते, बल्कि संकर जाति तथा डाकुओंकी भांति-वृत्ति अवलम्बन करते हैं। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंके आश्रय है, इससे वे लोग भक्तिके सहित आपस मिलके एक दूसरे की रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। ये दोनों आपसमें परस्परकी रक्षा करते हुए महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, परन्तु यदि किसी प्रकारसे उनकी वह प्राचीन सन्धि भङ्ग होवे, तो दोनोंही नष्ट होते हैं। जैसे अगाध जलमें विपद्ग्रस्त नौका किसी प्रकार भी किनारे नहीं लग सकती, वैसे ही वह भी किसी विषयके पारदर्शी नहीं होसकते; वर्णविचार लोप होता और सब प्रजाका नाश होता है। ब्रह्मरूपी वृक्ष यथा उचित रीतिसे रक्षित होने पर सुख और सुवर्णमय फलको वर्षा करता है; परन्तु उसकी रक्षा न करनेसे दुःख और नरकरूपी फल उत्पन्न होता है। जब ब्रह्मचारी लोग डाकुओंसे निवारित होकर निज अधीत शाखा परित्याग करते और ब्राह्मण लोग अपने पाठनीय वेदका आसरा त्याग करते हैं, उस समय इन्द्र अल्प जलकी वर्षा करते और वहांपर सदा अनेक भांतिके उत्पात उपस्थित होते हैं। जब कोई पापी पुरुष स्त्री अथवा ब्राह्मणहत्या करके भी सभाके बीच प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, और राजाके निकट भी भयभीत नहीं होता, तब वैसे पुरुषसे राजाको महत् भय उपस्थित होता है। हे ऐल! जब पापी लोग पाप कर्म्मसे कालके उत्पत्तिकी वृद्धि करते रहते हैं, तब राजा अत्यन्त ही रुद्र और हिंसक होकर साधु और दुष्ट सबको ही विनष्ट किया करता है।

ऐल बोले, हे कश्यप! जीव लोग जो जीवोंके जरियेसे ही मारे जाते हैं, वह रुद्र कैसा है और किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा राजा ही किस कारण रुद्ररूप हुआ करता है, आप यह

सब विस्तार पूर्व्वक मेरे निकट वर्णन करिये ?— कश्यप बोले, जैसे आकाशमें उठे हुये उत्पात के विषयमें वायु ही आकाश देवताका इधर उधर सञ्चलित करता है, उससे ही बिजली, वज्र और अशनि आदि सब उत्पात उत्पन्न हुआ करते हैं ; वैसे ही मनुष्यके हृदयमें स्थित आत्मा ही काम क्रोध आदि रूपसे प्रगट होके अपने वा दूसरेके शरीरको नष्ट किया करता है ।

ऐल बोले, वायुके सङ्ग इस रुद्ररूपी आत्मा की उपमा नहीं होसकती, क्योंकि वायु बाहरी सब पदार्थों को वेष्टन करता है, बादल जलकी वर्षा करते हैं ; इससे उसके सङ्ग भी तुलना नहीं हो सकती, और जब मनुष्योंके बीच कितनोंका सदा काम क्रोधके वशमें होके मरते और मोहित होते देखा जाता है, तब ईश्वररूपसे भी उपमा नहीं हो सकता ।

कश्यप बोले, जैसे अग्नि एक गृहमें प्रज्वलित होके समस्त ग्राम वा चौतरोंको भस्म कर देती है, वैसे ही रुद्रदेव भी सबको मोहित करते हैं ; इससे सब कोई पुण्य-पाप जनक शङ्कर कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ करते हैं ।

ऐल बोले, जब पापियोंके विशेष रूपसे पाप कर्म्म करने पर भी दण्डनीति पुण्य पापरूप दोनों भांतिके कर्म्म करनेवालोंके ऊपर प्रयोग हुआ करती है, तब क्यों मनुष्य सत्कर्मों का अनुष्ठान करेंगे और असत् कर्म्म न करेंगे ।

कश्यप बोले, पापाचारियोंके सङ्ग किसी प्रकारका सम्बन्ध न रहनेसे मनुष्य पापरहित होता है, इससे उसे दण्डनीतिके अधीन नहीं होना पड़ता ; परन्तु जैसे सूखे काठके साथ गीला काठ भी भस्म होजाता है, वैसे ही पापाचारियोंके साथ निवासके कारण मिश्रितभाव होनेसे पापियोंकी भांति दण्डनीय होना पड़ता है ; इससे पापियोंके सङ्ग सब भांतिसे संसर्ग त्यागना उचित है ।

ऐल बोले, किस कारण पृथ्वी साधु और दुष्ट दोनों भांतिसे लोगोंको धारण किया करती है ? सूर्य्य क्यों दोनोंको उत्ताप प्रदान करता है ? वायु किस कारणसे दोनोंके समीप समान रूपसे बहता है और किस कारण जल साधु और दुष्ट दोनोंको पवित्र करता है ?

कश्यप बोले, हे राजपुत्र ! इस संसारमें ही ऐसा हुआ करता है । परन्तु परलोकमें ऐसा नहीं होता ; मनुष्य जो कुछ पुण्य सञ्चय वा पापाचरण करते हैं, परलोकमें गमन करके उसका इतर-विशेष देखते हैं । जो लोग संसारमें सदा पुण्य कर्म्म करते हैं, वे ब्रह्मचारी पुरुष परलोकमें मधुमान् घृतार्चि, सुवर्णकी भांति ज्योतिसे युक्त और अमृत की नाभि स्वरूप परम रमणीय स्थानमें निवास करते हुए दुःख और जरा मरण-रहित होकर अनेक सुख प्राप्त करते हैं । परन्तु वहां पर पापियोंके वास्ते जो स्थान निर्दिष्ट है, वह नरक और सदा दुखसे पूर्ण शोकपूरित तथा प्रकाश रहित है ; निन्दनीय पापी लोग वहां पर जाके बहुत समय पर्य्यन्त सन्तापित होकर अपने किये हुए कर्म्मके निमित्त शोक प्रकाश किया करते हैं । इसी भांति ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें भेद उपस्थित होने पर प्रजाको असह्य दुःख प्राप्त होता है, इससे राजा को यह सब जानके अनेक भांतिकी विद्या जाननेवाले ब्राह्मणको पुरोहितके कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है । राजा पहिले पुरोहितको अभिषिक्त करे, ऐसा होनेसे ही उसका धर्म्म भली भांति रक्षित होगा ; क्योंकि ब्रह्मवित् पुरुष कहा करते हैं, कि ब्राह्मण लोग पहिले उत्पन्न हुए हैं और वे लोग ही सब वस्तुओंके अग्रभुक् कहके माने जाते हैं । प्रथम उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग जो जेठस और आभिजात्यके कारण क्षत्रियोंके मान्य और पूज्य हैं, उस विषयमें मैंने पहिले ही तुम्हें उत्तर दिया है । बलवान् राजाको उचित है, कि ब्राह्मणको सबसे

श्रेष्ठ और उत्तम वस्तु प्रदान करे। हे युधिष्ठिर! क्षत्रिय लोग ब्रह्मतेजसे रक्षित होकर ही ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हैं; इससे ब्राह्मणोंकी विशेष रूपसे पूजा करना ही राजाका कर्त्तव्य है।

७३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राज्यका उपाय और मङ्गल समूह राजाके वशमें है, परन्तु राजाका उपाय और मङ्गल समूह सब पुरोहितके अधिकारमे है। जिस राज्यमें पुरोहित ब्रह्मतेजसे प्रजाके अदृष्ट और राजा बाहुबलसे दृष्टभय निवारण करता है, उस ही राज्यमें सुख प्राप्त होता है, इस विषयमें कुवेरके साथ राजा मुचकुन्दका जो कुछ बार्त्तालाप हुआ था, पण्डित लोग इस प्रस्तावमें उस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पृथ्वीनाथ मुचकुन्दने समस्त पृथ्वी जीतके निज बल मालूम करनेके वास्ते अलकानाथ कुवेरके समीप गमन किया। उसे देखकर यक्षराज वैश्रवणने राक्षसोंको आज्ञा दी, वे लोग मुचकुन्दकी सेनाका नाश करने लगे। हे शत्रुनाशसन! नरनाथ मुचकुन्द अपनी सेनाका नाश होता देखकर विद्वान् पुरोहितकी निन्दा करने लगे। उसे सुनकर धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रणी वशिष्ठने उग्र तपस्यासे राक्षसोंका नाश किया और उसके जरियेसे मुचकुन्दकी भी गति मालूम की। तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण निज सेनाका नाश देखकर मुचकुन्दके सम्मुख उपस्थित होकर बोले।

कुवेर बोले, पहिले समयमें अनेक राजा पुरोहितके प्रभाव और बलसे तुमसे भी अधिक बलवान हुए थे, परन्तु तुमने जैसी वृत्ति अवलम्बन की है, किसीको भी मैंने वैसी वृत्ति अवलम्बन करते नहीं देखा। वे राजा लोग कृतास्त्र और बलवान होके भी मेरे निकट आके सुख दुःखका स्वामी समझके मेरी उपासना करते थे, तुम किस कारण ब्राह्मण बलसे गर्व्वित होकर नीतिमार्ग अतिक्रम करते हो? यदि तुम्हारी भुजामें बल हो, तो उसे दिखाओ।

तिसके अनन्तर मुचकुन्दने क्रुद्ध होके क्रोध-रहित सावधान कुवेरका इस नीतियुक्त वचनसे उत्तर दिया। 'ब्रह्म और क्षत्रिय दोनों ही प्रजापतिके जरिये एक योनिरूपसे उत्पन्न हुए हैं; इससे उनका बलविधान परस्पर पृथक् रीतिसे रहनेपर वे लोग कदापि सब लोगोंको प्रतिपालन करनेमें समर्थ नहीं होते। ब्राह्मणोंमें तपस्या और मन्त्रबल तथा क्षत्रियोंमें अस्त्र और बाहुबल सदा प्रतिष्ठित रहता है; इन दोनोंका मिलके राज्यपालन करना ही उचित है। हे यक्षनाथ! मैं इस ही नीतिके अनुसार कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ हूं, तब तुम क्यों मेरी निन्दा करते हो।

तिसके अनन्तर विश्रवानन्दनने पुरोहित सहायसे युक्त मुचकुन्दसे कहा, हे राजन्! तुम निश्चय जान रखो, मैं ईश्वरकी बिना आज्ञाके किसीको राज्य प्रदान नहीं करता, और बिना ईश्वरकी अनुमतिके किसीका राज्य भी नहीं हरता, इससे मैंने तुम्हें जो राज्य प्रदान किया है, तुम उस समस्त पृथ्वीका शासन करो।" राजा मुचकुन्दने ऐसा सुनकर नीचे कहा हुआ उन्हें यह उत्तर दिया।

मुचकुन्द बोले, "राजन्! मैं आपका दिया हुआ राज्य भोगनेकी इच्छा नहीं करता, निज बाहुबलसे जो कुछ राज्य प्राप्त किया है, उसे ही भोग करूंगा, यही मेरा एकमात्र अभिप्राय है।"

भीष्म बोले, तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण मुचकुन्दकी निर्भयताके सहित क्षात्र-धर्म्ममें स्थित देखके अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर पृथ्वीनाथ मुचकुन्द सब भांतिसे क्षात्र-धर्म्मके अनुगामी होकर निज बाहुबलसे प्राप्त हुई पृथ्वीको शासन करने लगे। हे युधिष्ठिर! जो

राजा इसी भांति ब्राह्मणको अगाड़ी करके राज्य शासन करता है, वह विजय न करने योग्य पृथ्वीको जय करके महत् यश प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सदा पवित्र होना और क्षत्रियको सदा शस्त्रधारी होना उचित है; क्यों कि जगत्‌में जो कुछ है; वह सब उन दोनोंके अधीन है।

७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा लोग जिस वृत्तिको अवलम्बन करके प्रजासमूहकी उन्नति और सब पुण्यलोकोंको जय करते हैं। आप वह सब मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा प्रजापालनमें प्रवृत्त होके दानी, उपवासी, तपस्यामें रत और यज्ञशील होवे। राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा प्रजाको पालन करते हुए नित्य ही उद्योग और विविध दानसे धर्म्मात्माओंकी पूजा करे। राजा यदि धार्म्मिक पुरुषोंकी पूजा करे, तो वे लोग सब जगह पूजित होते हैं। क्यों कि राजा जैसा आचरण करता है, वही प्रजासमूहको प्रमाण हुआ करता है। राजा यमराज की भांति सदा शत्रुओंके विषयमें दण्डग्रहण करके तैयार रहे और सब भांतिसे डाकुओंका नाश करे; कभी भी इच्छानुसार किसीको क्षमा न करे। हे भारत! प्रजा राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करती है; राजा उसमें चतुर्थांश फलभागी होता है। वे लोग जो कुछ दान, अध्ययन, होम और पूजा करते हैं, राजा धर्म्म-पूर्व्वक प्रजापालन करके उसमेंसे चौथा अंश फल भोग किया करता है। हे भरत-नन्दन! राजा यदि प्रजाकी रक्षा न करे, तो राज्यके बीच जो कुछ अधर्म्म उपस्थित होता है, राजा उस पापमें भी चतुर्थांश भागी होता है। राज्यमें दुष्ट और मिथ्यावादी पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं। राजा अवश्य ही उसमें अर्द्धांश भागी होता है। हे पृथ्वीनाथ! कोई कोई कहते हैं राजा लोग वैसे पापके सम्पूर्ण तथा उससे भी अधिक फल-भागी हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! राजा वैसे पापसे जिस प्रकार मुक्त होता है, उसे सुनो, जिस धनको चोरोंने चुराया है, उसे यदि फिरा न सके, तो वैसे असक्त राजाको उचित है, कि निज कोषसे उतना ही धन प्रदान करें। सब वर्णोंको ही ब्राह्मणोंकी भांति ब्रह्मस्वकी रक्षा करनी उचित है; और जो ब्राह्मणोंका अप-कार करे, उसे राज्यमें रहने देना उचित नहीं है। ब्रह्मस्व रक्षित होनेसे सब ही भांति रक्षित होता है; इससे उनकी कृपासे ही राजा कृत कृत्य होसकता है। जैसे सब प्राणी जलको और पक्षी महावृक्षका आसरा ग्रहण करते हैं, वैसे ही मनुष्य लोग सब अर्थ-सिद्ध करनेवाले राजाका आसरा ग्रहण किया करते हैं। परन्तु कामात्मा, सदा कामबुद्धि, नृशंस और अत्यन्त लोभी राजा प्रजा पालन नहीं कर सकते!

युधिष्ठिर बोले, मैं सुखकी अभिलाषासे राज्य प्राप्ति की इच्छा नहीं करता हूं। मैंने जिस धर्म्मके वास्ते राजाकी अभिलाष की थी, जब राज्यके बीच वह धर्म्म ही नहीं है; तब वैसे धर्म्म-रहित राज्यसे मुझे क्या प्रयोजन है? मैं धर्म्म-साधनके वास्ते फिर बनमें गमन करूंगा और दम्भरहित तथा जितेन्द्रिय होकर उस पवित्र बनके बीच फल मूल खानेवाले मुनियोंके धर्म्मकी आराधना करूंगा।

भीष्म बोले, तुम्हारी बुद्धि दूसरेको दुःख देनेवाली नहीं है इसे मैं जानता हूं, परन्तु राजधर्म्मके विषयमें वैसी बुद्धिको अत्यन्त निर्गुण ही कहनी होगी; क्यों कि शान्त और अनृशंस बुद्धिसे कभी राज्य रक्षित नहीं होता। युधि-ष्ठिर! यदि तुम इकबारगी कोमल, कृपालु और अत्यन्त धार्म्मिक होकर आर्य्यपुरुषोंके प्रदर्शित मार्गको अतिक्रम करोगे, तो सब कोई तुम्हें असमर्थ समझेंगे और तुम किसीके प्रशं-

साभाजन नहीं होगे। हे तात! तुम जिस रीतिसे निवास करनेकी इच्छा करते हो, वह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, इससे तुम्हारे पितर पितामहने जिस वृत्तिको अवलम्बन किया था, तुम भी उसहीका अनुगमन करो। तुम लोभके वशमें होकर केवल अनृशंस वृत्ति त्याग करनेसे ही प्रजापालनसे प्रकट हुए धर्म-फलको नहीं प्राप्त कर सकोगे। हे तात! तुम जिस बुद्धि-वृत्तिके अनुगामी हुए हो, तुम्हारे जन्मके समय कुन्ती अथवा पाण्डु किसीने भी ऐसी प्रार्थना नहीं की थी। तुम्हारे पिता नित्य ही तुम्हारे पराक्रम, बल और सत्यके वास्ते और कुन्ती महात्म और उदारताके निमित्त प्रार्थना करती थी। पत्र जो मनोहर यज्ञादिकोंसे देवताओं और श्राद्धादिकोंसे पितरोंको तृप्त करते हैं; देवता और पितर लोग भी पुत्रसे ऐसी ही कामना किया करते हैं। दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजापालन करनेसे चाहे धर्म्म हो, चाहे अधर्म्म ही होवे, इन कई एक कर्म्मोंको करनेके ही वास्ते तुम्हारा जन्म हुआ है। जो ध्रुव कार्य्योंमें नियुक्त होकर यथा समयमें नियत भार उठाते हैं, उनके स्वय अवसन्न होनेपर भी उनकी कीर्त्ति नहीं अवसन्न होती। हे युधिष्ठिर! सुशिक्षित मनुष्यकी तो बात दूर रहे, जब भली भांति शिक्षित घोड़े भी सावधानीके सहित निज भारको उठाया करते हैं; तब तुम कर्म्म और वचनसे सबके निकट निर्दोषी होके ही निज आचरित कर्म्मसे ही सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। हे तात! धार्म्मिक, गृहस्थ, राजा अथवा ब्रह्मचारी कोई कभी भी एकबारगी अभिनिवेशके सहित शुद्ध धर्म्माचरण नहीं कर सकते; इससे निज आचरित अल्प कर्म्म भी यदि सारगर्भ हो, तो वह कर्म्म न करनेकी अपेक्षा उत्तम है, क्यों कि कर्म्म न करनेसे अत्यन्त ही पापभागी होना होता है।

जब सहायशाली धर्म्मात्मा मनुष्यलोग राजमन्त्री आदि श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य लाभ करते हैं, तब ही राजा अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्ति और प्राप्त वस्तुओंकी प्रतिपालन रूप योगक्षेम कुशलदायक हुआ करता है। धर्म्मात्मा राजा राज्य पाके किसीको दान, किसीको बल और किसीको मीठे वचनसे सब भांति अपने वशमें करे। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए पण्डित लोग जिसके आश्रय लाभसे परितृप्त होकर निर्भय और स्वच्छन्दताके सहित वास करते हैं, स्वयं धर्म्मको भी उससे श्रेष्ठ नहीं समझा जाता।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! स्वर्ग प्राप्तिका उत्तम उपाय क्या है? उससे उत्तम प्रीति कौनसी है और उससे श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य ही कौनसा है? यदि यह सब आपको मालूम हो, तो मेरे निकट यथावत वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! जो राजा भयपीड़ित मनुष्योंको क्षणभरके बीच उस भयसे छुड़ाके उन लोगोंका मङ्गल विधान करता है, वह राजा ही इस लोगोंके बीच स्वर्गजित् है, यह मैं तुम्हारे निकट सत्य ही कहता हूं। हे कुरुसत्तम! कुरुकुलमें तुम ही प्रीतिमान हो; इससे तुम राजा होकर स्वर्गजय, साधुओंका पालन और दुष्टोंका शासन करो। हे तात! जैसे सब प्राणी जल और पक्षी सुस्वादु फलसे युक्त वृक्षके आसरेसे जीवन धारण करते हैं; वैसे ही साधुओंके सहित सुहृद लोग तुम्हें उपजीव्य करके जीवन धारण करें। जो राजा शूर, दुष्टोंको नाश करनेवाले, अनृशंस, जितेन्द्रिय प्रजावत्सल, अतिथि और अपने अधीनमें रहनेवाले परिवार समूहको भोजन कराके आप भोजन करता है, मनुष्य लोग उस ही राजाका आसरा करके जीवन यात्रा निर्व्वाह करते हैं।

७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! जो स्वकर्म्ममें रत और जो निषिद्ध कर्म्मोंमें रत हैं, उन सब ब्राह्मणोंमें कौनसी विशेषता है ? वह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! जो लोग विद्या और शम, दम आदि लक्षणोंसे युक्त और सबमें समदर्शी हैं, वे ब्राह्मण लोग ही ब्रह्मतुल्य कहे जाते हैं। ब्राह्मणोंके बीच जो लोग स्वकर्म्ममें रत होके ऋक् यजु और साम इन तीनों वेदोंको जानते हैं, वे लोग देवता समान माने जाते हैं। हे राजन्! श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके बीच जो अयोचित कर्म्महीन महा नीच कर्म्म करने वाले और ब्रह्मबन्धु हैं, वे शूद्रके समान होते हैं। जो सब ब्राह्मण वेदाध्ययन रहित और निरग्निक हैं, धर्म्मात्मा राजा उनसे कर ग्रहण करे और बिना वेतन ही उनसे राज्यकी सेवकाई करावे। हे राजन्! जो धर्म्माधिकारमें नियुक्त रहते और वेतन लेकर देवपूजा, नक्षत्र गणना ग्राम याजन और महापथ अर्थात् नौका पर चढ़के समुद्रमें गमन करते हैं, शास्त्रमें ये पांचों ही ब्राह्मण चाण्डाल कहाते हैं। और भी ब्राह्मणोंके बीच जो लोग ऋत्विक्, पुरोहित, मन्त्री, दूत और वार्त्तावहका कार्य्य करते हैं; वे क्षत्रिय तुल्य समझे जाते हैं। जो लोग घुड़सवार गजसवार रथी और पदातिका कार्य्य करते हैं, वे वैश्य तुल्य कहाते हैं। हे पृथ्वीनाथ! राजा कोष रहित होने पर पहिले कहे हुए ब्रह्म समान और वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त इन सब ब्राह्मणोंसे कर ग्रहण करे, उससे उसे अधर्म्म नहीं होता; क्यों कि इस प्रकार वैदिक शासन है, कि ब्राह्मणोंके बीच जो लोग निषिद्धकर्म्म करते हैं, उनके और अब्राह्मणोंके धनका राजा ही स्वामी हुआ करता है। राजा दूसरेके कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंके विषयमें किसी प्रकार भी उपेक्षा न करे, बल्कि धर्म्मानुग्रह निबन्धनसे उन लोगोंको राजनियममें नियमित और पूर्व्व रीतिसे पृथक् कर रखे। हे राजन्! जिस राजाके राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष वह अपराध राजाके ही ऊपर आरोपित किया करते हैं। हे नरनाथ! इसमें पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जीविका रहित वेद जाननेवाले स्नातक ब्राह्मण राज्यके बीच चोर होंगे; राजाको ही उनका भरण पोषण करना होगा। यद्यपि वह ब्राह्मण राजाके निकट वृत्ति प्राप्त होने पर भी चोरी कर्म्मसे निवृत्त न होवे, तो ऐसा होनेसे राजा उसे बन्धु-बान्धवोंके सहित निज देशसे निकाल देवे।

७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! राजा जिसके धनाधिकारके प्रभु होंगे और कैसी वृत्ति अवलम्बन करके रहेंगे; वह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! ऐसी जनश्रुति है, कि ब्राह्मणोंमें जो लोग कुकर्म्मी हैं, उनका और अब्राह्मणोंका राजा ही धन स्वामी होता है; और साधु पुरुष राजाके विषयमें ऐसा कहा करते हैं कि ब्राह्मण कुकर्म्मी होनेपर राजा कभी भी उसके विषयमें उपेक्षा न करे। जिस राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, पण्डित लोग वह दोष राजाके ही ऊपर आरोपित करते हैं; इससे राजऋषि लोग ब्राह्मणोंके वैसे कर्म्मसे अपनेको ही दोषी समझके उनका पालन किया करते हैं। हे राजन् केकयराजने राक्षससे बनमें हरे जाने पर जो कुछ वचन कहे थे, पण्डित लोग इस स्थलमें उसकी प्राचीन इतिहासको प्रमाण रूपसे वर्णन किया करते हैं। किसी राक्षसने बनके बीच स्वाध्यायरत, व्रतमें तत्पर, पराक्रमी केकयराजको ग्रहण किया, तब केकयराजने उससे कहा, कि मेरे राज्यमें चोर, कायर, मद पीनेवाले, निरग्निक और यज्ञहीन कोई भी नहीं है; इससे तुम

मुझे स्पर्श मत करो, मेरे निकटसे दूर रहो। मेरे राज्यमें दक्षिणाहीन यज्ञ नहीं होते, कोई व्रतहीन पुरुष वेद नहीं पढ़ते, अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये छःहों कर्म सदा विद्यमान हैं और निज कर्ममें तत्पर, सत्यवादी, शान्त ब्राह्मण लोग मेरे राज्यमें सदा सम्मानित और पूजित हुआ करते हैं। इससे तुम मुझे स्पर्श न करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें सत्य-धर्म जाननेवाले क्षत्रिय लोग किसीके समीप याचना नहीं करते, सब ही दान किया करते हैं, पढ़ते हैं, पढ़ाते नहीं; यज्ञ करते हैं, कराते नहीं; और वे सब ब्राह्मणोंके प्रतिपाल करनेवाले, युद्धमें पीछे न हटनेवाले तथा निज कर्ममें रत हैं; इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें वैश्य लोग कपट रहित होके कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करते हैं, वे सब ही सावधान, क्रिया-वान, उत्तम व्रत करनेवाले, सत्यवादी निज कर्ममें रत और परस्पर सन्विभाग युक्त दम, पवित्रता और सुहृदताका आसरा किया करते हैं। इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें शूद्र-लोग असूया-रहित, निज कर्ममें स्थित और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंके अवल-म्बसे यथा उचित जीविका निर्व्वाह किया करते हैं; इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर होजाओ, मैं कृपण, अनाथ वृद्ध, निर्व्बल, आतुर, और स्त्रियोंको यथा उचि-तसे सेवा किया करता हूं, कुलधर्म और देश-धर्म यथारीतिसे स्थापित करता हूं, किसीको नष्ट नहीं करता मेरे समीप तपस्वी लोग आद-रके सहित पूजित प्रतिपालित और संविभक्त हुआ करते हैं, मैं सबको बिना भोजन कराये भोजन नहीं करता, पराई स्त्री स्पर्श नहीं करता और कभी स्वतन्त्र क्रीड़ा नहीं करता; इससे तुम्हें मुझे ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है; तुम मेरे समीपसे दूर होजाओ। मेरे राज्यमें अब्रह्मचारी भिक्षा-वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, भिक्षुक ही ब्रह्मचर्य्य करते हैं, और ऋत्विकके अतिरिक्त दूसरे पुरुषके जरिये देव-ताओंको आहुति नहीं दी जाती इससे तुम मेरे निकटसे दूर रहो। मैं वैद्य, वृद्ध और तपस्वि-योंकी अवज्ञा नहीं करता और समस्त जनपद वासियोंके सोनेपर मैं जागता रहता हूं, मेरा पुरोहित आत्मज्ञान और विज्ञानसे युक्त, तप-स्वी सब धर्म्म जाननेवाला बुद्धिमान और सब राज्यका स्वामी है। मैं दानसे विद्या ब्राह्मणोंकी रक्षा और सत्यसे स्वर्गादि लोक प्राप्तिकी इच्छा किया करता हूं और शुश्रुषासे गुरुजनोंके अनुकूल हूं; इससे राक्षससे मुझे भय नहीं है। मेरे राज्यमें विधवा, ब्रह्मबन्धु, अब्राह्मण, शठ, चोर, मांगनेके अयोग्य वस्तुओंके मांगनेवाले, और पाप कर्म्म करनेवाले कोई भी नहीं है, इससे राक्षससे मैं नहीं डरता। मैं धर्म्मार्थ ही युद्ध किया करता हूं, इससे मेरा शरीर दो अंगुल मात्र भी शस्त्रसे विद्ध नहीं होता; और मेरे राज्यमें सब प्रजा गऊ, ब्राह्मणकी रक्षा तथा यज्ञके वास्ते मेरी मङ्गल कामना किया करती है, इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे निक-टसे दूर हो जाओ।

राक्षस बोला, हे केकयराज! आप सब समय धर्म्मकी पर्य्यालोचना करते हैं, इससे मैंने आपको परित्याग किया; अब आपका मङ्गल होवे, आप अपने घर जाइये; मैं अपने स्थान-पर जाता हूं। हे केकय! जो गऊ, ब्राह्मण और प्रजाको आपदसे बचाते हैं, उन्हें राक्षस वा पातकसे भय नहीं होता; और ब्राह्मण लोग उसके अग्रगामी हैं, जिसका बल ब्रह्मपर और जो अतिथि प्रिय हैं, वे राजा समस्त स्वर्ग लोक को जय किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन् ! इस ही कारण ब्राह्मणोंका पालन करना राजाको अवश्य उचित है। क्योंकि वे लोग राजासे रक्षित होकर उसे ऐसी आपदसे बचाते हैं और राज्यादिके निमित्त सब भांतिसे वृद्धिसूचक आशीर्व्वाद दिया करते हैं। इस ही वास्ते दूसरे कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंको राजा कृपापूर्व्वक नियमित और यथारीतिसे विभक्त कर रखे। जो राजा पुरवासी प्रजासमूहके साथ इसी भांति आचरण करता है, वह इस लोकमें सब सुख भोगके परलोकमें इन्द्रके समान स्थान प्राप्त करता है।

७७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत ! आपने कहा है, आपदकालमें ब्राह्मण लोग राजधर्म्म अर्थात् शस्त्रधारण आदि कार्य्योंसे जीविका निर्व्वाह कर सकते हैं, परन्तु वे लोग वैश्यधर्म्म अर्थात् व्यवसायसे जीविकाका उपाय कर सकते हैं वा नहीं ?

भीष्म बोले, क्षत्रधर्म्ममें असमर्थ ब्राह्मण लोग वृत्तिक्षय रूपी व्यसन उपस्थित होनेपर कृषि और गोरक्षा व्यवसाय अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करें।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ ! वैश्य धर्म्म अवलम्बन करनेवाले ब्राह्मण लोग किन वस्तुओंके बेचनेसे स्वर्गच्युत नहीं होते।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर ! ब्राह्मण लोग सब समयमें ही सुरा, लवण, तिल, घोड़े गज, भैंस आदि पशु, ऋषभ, मधु और पक्वान्न आदि सब वस्तु न बेचें ; क्यों कि इन वस्तुओंके बेचनेसे ब्राह्मण नरकगामी होंगे। अज, अग्नि, वरुण, बादल, सूर्य, घोड़े, पृथ्वी, अन्न, गऊ यज्ञ और सोम ये सब वस्तु कदापि ब्राह्मणोंको बेचने योग्य नहीं हैं। हे भारत ! साधुपुरुष पक्वान्नके सङ्ग आमान्नके बदलनेको निन्दा किया करते हैं; परन्तु भोजनके वास्ते आमान्नके सङ्ग पक्वान्नको बदलनेसे उसकी निन्दा नहीं करते; यदि कोई किसीको "मैं सिद्धान्न भोजन करूंगा आप आमान्न ग्रहण कीजिये," ऐसा कहके आमान्नके साथ सिद्धान्नको बदल करे, तो इस प्रकारके अदलबदलमें किसी भांति भी अधर्म्म नहीं हो सकता। हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें व्यवहारमें प्रवृत्त पुरुषोंका जो सनातन धर्म्म है वह तुमसे कहता हूं सुनो। यदि कोई किसी पुरुषको "मैं तुम्हें यह वस्तु देता हूं, तुम मुझे अमुक वस्तु प्रदान करो," ऐसा कहके इच्छानुसार बदल करे, ऐसा होनेसे उसमें धर्म्म होता है, परन्तु बलपूर्व्वक बदलनेसे उसमें धर्म्म नहीं हो सकता। ऋषि और इतर लोगोंका इसी भांति प्राचीन व्यवहार प्रचलित हुआ करता है यही उत्तम है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

युधिष्ठिर बोले, हे तात ! जब वैश्य, शूद्र और अन्तज आदि प्रजासमूह निजधर्म्म परित्याग करके शस्त्र ग्रहण करेंगे ; उस समय क्षत्रिय बल क्षीण होगा। हे नरनाथ ! उस समय बलहीन राजा किस प्रकार लोकयात्रा और सब लोगोंका परम आश्रय होगा ? मुझे यह सन्देह हो रहा है, आप इस विषयको मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, ब्राह्मण आदि सब वर्ण दान, तपस्या यज्ञ, अहिंसा और इन्द्रियदमनसे अपने अपने कुशलकी अभिलाष करते हैं, परन्तु उन लोगोंके बीच जो ब्राह्मण वेद-बलशाली हैं, वे लोग सब भांतिसे बढ़के इन्द्रके बल बढ़ानेवाले देवताओंकी भांति राजाका बल बढ़ाते हैं। और पण्डित लोग ऐसे कहा करते हैं, कि ब्राह्मण ही बलहीन राजाके परम आश्रय हैं ; इससे बुद्धिमान राजा ब्रह्मबल अवलम्बन करके ही समुत्थित होते हैं। परन्तु जयशील राजा जब राज्यके बीच सबके क्षेमका अनुसन्धान करेंगे, तब सब वर्ण किस प्रकार निज निज

धर्म्मसे भ्रष्ट होंगे। हे युधिष्ठिर! जब डाकू लोग प्रजासमूहकी मर्य्यादा और जाति नाश करनेमें प्रवृत्त होंगे, उस समय सब वर्णोंको शस्त्र ग्रहण करनेसे दोष युक्त नहीं होंगे।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! यदि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके विषयमें दोषदर्शी होकर विरुद्ध आचरण करे, तो वह ब्राह्मण कौन धर्म्म अवलम्बन करेगा? और उसका आश्रय तथा परित्राण करनेवाला कौन होगा?

भीष्म बोले, उस समय ब्राह्मण तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, शस्त्रबल, शठता वा सरलता आदि जिस उपायसे होसके, वही क्षत्रियको शासित करे। विशेष करके ब्राह्मणसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं, इससे यद्यपि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके सङ्ग विरुद्धाचरण करनेमें प्रवृत्त हो, तो ब्राह्मण ही उसके नियन्ता होंगे। जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है, इससे उनका सर्व्वत्रगामी तेज निज निज योनिमें शान्त हुआ करता है। जब लोहा पत्थरको भेदता, अग्नि जलको मथता और क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, तब वह लोह, अग्नि और क्षत्रिय स्वयं नष्ट होजाते हैं। हे युधिष्ठिर! इससे क्षत्रियोंका अत्यन्त अजेय तेज ब्राह्मणोंके समीप शान्त हुआ करता है। ब्रह्मबल कोमल तथा क्षात्रयबल निर्ब्बल और सब वर्ण ब्राह्मणोंके विरुद्ध होनेपर जो लोग ब्राह्मणधर्म्म और आत्मरक्षाके वास्ते उस समय जीवनकी आशा त्यागके शस्त्र ग्रहणकर युद्ध करनेके वास्ते उद्यत होते हैं, वे मनस्वी मननशील मनुष्य ही पुण्य-स्थान प्राप्त करते हैं; क्यों कि ब्राह्मणोंके वास्ते सबको ही शस्त्र ग्रहण करनेकी विधि है। हे युधिष्ठिर! ऐसा हो क्या, यज्ञ, वेदाध्ययन, तपस्या, अनशन और अग्नि प्रवेशकारी पुरुषोंसे ब्राह्मणोंके हितैषी पुरुष उत्तम गति प्राप्त करते हैं। इसी भांति ब्राह्मणोंके वास्ते क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंके वास्ते शस्त्र ग्रहण करनेसे ये दूषित नहीं होते, और सब लोग ऐसा समझते हैं, कि उनके वास्ते आत्मत्यागी होनेपर उससे बढ़के कोई भी धर्म्मश्रेष्ठ नहीं होसकता। मनुने कहा है कि जो लोग साधारणकी रक्षाके वास्ते युद्धरूपी आगमें निज शरीरको आहुति देते और ब्राह्मणद्वेषी लोगोंको दमन करते हैं, उन्हें नमस्कार है, क्यों कि वे लोग वैसे कार्य्योंसे निज मङ्गल और हम लोगोंको सलोकता प्राप्त तथा ब्रह्मलोक और स्वर्गलोकको जय करनेमें समर्थ होते हैं। और भी जैसे मनुष्य लोग अश्वमेध यज्ञके अवभृत स्नानसे पवित्र होते हैं और उनके सब पाप दूर होते हैं। वैसे ही युद्धमें मरा हुआ पुरुष भी पवित्र होता और उसका पाप दूर होता है। हे राजन्! देशकालके व्यतिक्रम होनेसे उस देशकालके अनुसार ही धर्म्माधर्म्मका भी व्यतिक्रम अर्थात् धर्म्म अधर्म्म और अधर्म्म धर्म्म हुआ करता है देखिये, उतङ्क और पराशर आदि महर्षि लोगोंने क्रूर कर्म्म करके भी उत्तम स्वर्गलोक जय किया है और धर्म्मात्मा क्षत्रिय लोग भी पाप कर्म्म करके परम-गतिको प्राप्त हुए हैं। ब्राह्मण लोग आत्मरक्षा वर्णदोष और दुष्ट डाकुओंको नाश करनेके वास्ते सब समयमें ही शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं; उसमें उन्हें दोष नहीं होता।

युधिष्ठिर बोले, हे राजसत्तम! डाकुओंके दल प्रजा पालनके निमित्त तैय्यार होके, वर्णसङ्कर अर्थात् परस्पर स्त्रीहरण आदि कार्य्योंमें प्रवृत्त होने और सब लोगोंके सब भांतिसे मूढ़ होनेपर यदि दूसरा कोई बलवान क्षत्रिय डाकुओंके दलको नष्ट करे; तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके बीच राजधर्म्मके अनुसार दण्ड धारण करके प्रजा समूहको रक्षा करे, तो वह पुरुष राजकार्य्य करनेके कारण सबका स्वामी हो सकता है, वा नहीं? और उस सम्बन्धमें क्षत्र-बन्धुके अतिरिक्त दूसरे शस्त्र ग्रहण कर सकेंगे, वा नहीं।

भीष्म बोले, जो अपार पारावारके पार अर्थात् तीर स्वरूप और नौकाहीन समुद्रमें नौका स्वरूप होते हैं, वे शूद्र अथवा चाहे कोई वर्ण क्यों न होवें, न समाजके बीच सब भांतिसे सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। हे राजन्! अनाथ-मनुष्य डाकुओंसे पराजित अथवा पीड़ित होकर जिसका आसरा ग्रहण करके सुख पूर्व्वक निवास करते हैं, वे सब कोई निज बान्धवोंकी भांति उस रक्षा करनेवालेकी प्रीतिके सहित पूजा किया करते हैं; क्योंकि अभयदाता अनाथ मनुष्योंमें सदा सम्माननीय हुआ करता है। हे कौरव! जो बैल बोझा ढोनेमें असमर्थ और जो गऊ दूधदानसे रहित, जो स्त्री पुत्र प्रसव करनेमें अशक्य, और जो राजा प्रजापालन करनेमें असमर्थ होता है, उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। हे पार्थ! जैसे काठके हाथी, चमड़ेके मृग, कायर पुरुष और ऊषर-क्षेत्र निष्फल हैं; वैसे ही जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते, जो राजा प्रजापालन नहीं करता और जो बादल जलकी वर्षा नहीं करते उन सबको भी उसी भांति निष्फल समझना चाहिये। जो सदा साधुओंकी रक्षा करते और दुष्टोंका दमन करते हैं, उन्हें ही राजा बनाना उचित है; क्योंकि वैसे पुरुष ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ होते हैं।

७८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ पितामह! ऋषियोंके कर्तव्य कर्म क्या हैं और उन लोगोंके स्वभाव तथा गुण कैसे होने उचित हैं? वह विस्तारके सहित कहिये।

भीष्म बोले, छन्द, ऋक्, यजु, साम और श्रुति अर्थात् मीमांसा शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण लोग राजाओंके प्रति-कर्म अर्थात् शान्तिक पुष्टिक आदि कर्म करें; यही उन लोगोंके कर्त्तव्य कर्म हैं। और उन लोगोंका ऐसा स्वभाव होवे, कि वे लोग और पुरुषोंके ऊपर सदा अनुरागी होके प्रिय वचन कहें; आपसमें सुहृद-आचरण और सबको समभावसे देखें। इसके अतिरिक्त ऋत्विक लोग अद्वेषी, सत्य-वादी, अर्थ-प्रयोगसे हीन-सरल, परोपकार रहित, अभिमानहीन, लज्जा, तितिक्षा दम और शम गुणसे युक्त, बुद्धिमान, सत्यव्रतमें निष्ठावान, धर्म्मात्मा, जीव हिंसासे रहित, काम-क्रोधहीन, निर्दोष, श्रुत, वृत्त और शील युक्त, अहिंसक तथा ज्ञानसे तृप्त;—ऐसे गुणोंसे युक्त होनेपर वे लोग ब्रह्मासन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे और यथा योग्य माननीय तथा धन आदि-कोंसे पूजनीय होंगे।

युधिष्ठिर बोले, यज्ञमें दक्षिणा देनेके वास्ते वेदमें जो वचन कहे गये हैं, उसमें "इस परि-माणसे देना होगा," ऐसा कोई नियम नहीं निश्चित हुआ है। उसके वास्ते बारह भी दक्षिणा विधान करनेवाला यह शास्त्र धन-विभागके अभिप्रायसे नहीं कहा गया है; परन्तु आप-धर्म्मके अनुसार सर्व्वस्व दक्षिणाकी विधि वर्णित हुई है। ऐसा होनेसे शास्त्रका यह शासन अत्यन्त भयङ्कर है, उसमें समर्थ और असमर्थ बोधकी सम्भावना नहीं है, इससे ऐसा होनेसे दरिद्रोंके भी यज्ञादि न हो सकते। श्रद्धावान पुरुष यज्ञ करें, ऐसी ही वैदिक श्रुति है; परन्तु, प्रकृत-दक्षिणा गऊ, उसमें अनुकल्प चरु दान करनेसे वह मिथ्या होता है, वैसे मिथ्या-दक्षिणा युक्त यज्ञमें श्रद्धा क्यों करेंगे?

भीष्म बोले, वेद वाक्यमें अवज्ञा, शठता और मायासे कोई कभी परम पद नहीं प्राप्त कर सकता, इससे तुम्हारी जिसमें ऐसी बुद्धि न हो। हे तात! दक्षिणा यज्ञका अङ्ग और वेदोंकी पुष्टि करनेवाली है; इससे दक्षिणा हीन यज्ञ कदापि उद्धार करनेमें समर्थ नहीं होते। हे

तात। दरिद्रके पूर्ण पात्र भरके भी दक्षिणा होनेपर भी अधिक फलदायक है; इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंको यथा रीतिसे यज्ञ करना अवश्य उचित है। वेदमें ऐसी धारणा है, कि सोम ब्राह्मणोंके निमित्त अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु है; परन्तु वे लोग यज्ञादिकोंके निमित्त उसे भी बेचने की इच्छा करते हैं, बिना कारणके ही बेचनेमें उन लोगोंकी प्रवृत्ति नहीं होती। धर्म्मात्मा ऋषि लोग धर्म्मपूर्व्वक ऐसा ही ध्यान किया करते हैं, कि सोमरस बेचके प्राप्त हुए धनसे जो सोम-यज्ञ क्रय की जाती है, वह क्रमसे विस्तृत हुआ करती है। पुरुषके न्याययुक्त और शठता हीन होनेपर उसका ही सोम और यज्ञ पूर्ण होता है, परन्तु अन्याययुक्त होनेसे उसके ऐहिक और पारलौकिक कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होते। मैंने ऐसी जनश्रुति सुनी है, कि महात्मा ब्राह्मण लोग केवल शरीर-वृत्त अवलम्बन करके जो प्रणीताग्निमें यज्ञ आदि कर्म्म करते हैं, वह सब शुभ होता है। हे विद्वन्! इस प्रकार श्रेष्ठ श्रुति है, कि तपस्या यज्ञसे भी श्रेष्ठ है, इससे उस तपस्याका वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं, उसे मेरे समीप सुनो। पण्डित लोग अहिंसा, सत्य वचन अनृशंसता, दम और घृणा इन सबको ही तपस्या समझते हैं; परन्तु उपवास आदिसे शरीर सुखानेको वे लोग तपस्या रूपसे नहीं गिनते। वेदवाक्यको अप्रमाण शास्त्रोंके वचन उल्लङ्घन और सर्व्वत्र अव्यवस्था करनेसे उससे आत्माका नाश होता है। हे पार्थ! यज्ञमें जैसे स्रुक् और घृत आदि सब वस्तु वर्णित हैं; अन्तरमें भी वैसे ही चित्ति अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकता रूपी साधन योगकी स्रुक और चित्तको घृत रूपसे समझना होता है, इस ज्ञानको ही अत्यन्त पवित्र करके जानो। सब भांति की शठता ही मृत्यु की मूल अर्थात् अनित्य और सरलता ही ब्रह्मपद अर्थात् नित्य है; यही ज्ञानका विषय है, प्रलाप इसमें कुछ भी नहीं कर सकता।

७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जबकि थोड़ा कार्य्य भी अकेले सहाय रहित पुरुषसे सिद्ध होना कठिन है, तब अकेले राजासे सब कार्य्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकते; इससे राजा कैसे आचार और किस प्रकार स्वभाव युक्त पुरुषको मन्त्रीपद पर नियुक्त करे और कैसे लोगोंके ऊपर विश्वास तथा कैसे मनुष्योंका अविश्वास करे।

भीष्म बोले, हे राजन्! राजाओंके सहार्थ, भजमान, सहज और कृत्रिम ये चार भांतिके मन्त्री हुआ करते हैं, उनमेंसे जो राजाके समीप ऐसा स्वीकार करते हैं, कि इस शत्रुको हम दोनों ही मिलके नष्ट करेंगे और इस शत्रुराज्यको हम दोनों आपसमें विभाग करके ग्रहण करेंगे, वह सहार्थ हैं। जो पिता पितामहके क्रमसे विद्यमान रहते हैं, वह भजमान हैं। मातृ-स्वस्री आदि सहज, जो धर्म्मात्मा, पक्षपात रहित, दोनोंके निकट वेतन लेने की इच्छासे कपटता नहीं करते और धर्म्मके पक्षपाती होकर धर्म्ममार्गमें ही विद्यमान रहते हैं, वे राजाओंके कृत्रिम मित्र होते हैं। जो विषय राजाको अभिलषित नहीं है, उसे मित्र लोग उसके समीप कदापि प्रकाशित न करें; क्यों कि विजयी राजा लोग धर्म्म और अधर्म्मके सहित भ्रमण किया करते हैं। पहिले कहे हुए मित्रोंके बीच भजमान और सहज मित्र ही श्रेष्ठ हैं; ये लोग कार्य्य विशेषमें शङ्कायुक्त होते हैं; परन्तु सहार्थ और कृत्रिम मित्रको सदा शङ्कित रहना होगा। और सबको ही सदा रक्षा करनी उचित है; विशेष करके दुष्ट सेवकोंके विश्रु आदि निज कार्य्योंको इनके

अन्वेषण करके स्वयं सिद्ध करना होगा। राजा मित्रोंकी रक्षा करनेमें कभी असावधानी न करे ; क्यों कि सब लोग असावधान राजाका ही पराभव किया करते हैं। और राजाके असावधान चित्त होनेसे साधु पुरुष दुष्ट दुष्ट-लोग साधु; शत्रु लोग मित्र और मित्र शत्रु हुआ करते हैं। अस्थिर चित्तवाले पुरुषका कोई विश्वास नहीं करता ; इससे जो कार्य्य मुख्य है, उसे प्रत्यक्ष ही सिद्ध करे। सबके ऊपर एकबारगी विश्वास करनेसे धर्म्म और अर्थका नाश होता है ; और सर्व्वत्र अविश्वासकी अपेक्षा मृत्यु ही हितकारी है। अत्यन्त विश्वास ही अकाल मृत्युका कारण है। अत्यन्त विश्वास करनेसे ही विपदग्रस्त होना पड़ता है, क्योंकि जिसका अत्यन्त विश्वास किया जायगा, उसकी इच्छा रहनेसे ही जीवन रह सकता है ; नहीं तो जीते रहनेकी आशा नहीं रहती। हे तात ! इससे पुरुष विशेषका विश्वास और व्यक्ति विशेषका अविश्वास करना उचित है, यही नीतिकी गति है और इसे ही सदा लक्ष्य करना उचित है। जिसे समझे कि मेरे न रहनेपर यही राजा होगा, उससे सदा शङ्का करनी उचित है क्यों कि पण्डित लोग वैसे पुरुषको ही शत्रु समझते हैं। जो पुरुष अपने क्षेत्रका जल दूसरेके क्षेत्रमें गमन करेगा, ऐसा जानके इच्छानुसार बांधकी दृढ़ताके सहित बांधता है और जलके अभावमें दूसरेकी क्षति होनेपर भी किसी प्रकार जलबाहर नहीं होने देता ; और क्रमसे जल बढ़नेपर अत्यन्त जलसे अपनी क्षतिकी शङ्का करके बांध तोड़नेकी इच्छा करे उसे ही अतिमित्र समझना चाहिये। जो पुरुष राजाके अर्थ-वृद्धिसे तृप्त नहीं होता और धन-क्षय होनेसे अत्यन्त दुःखित होता है ; पण्डित लोग उसे ही उत्तम मित्र कहा करते हैं। जिसे जाने कि, मेरे न रहनेपर यह पुरुष नहीं रहेगा, उसका पिताकी भांति विश्वास करे और स्वयं वृद्धि-युक्त होकर उसकी भी सब भांतिसे वृद्धि करे। जो पुरुष धर्म्मकर्म्मकी क्षय होते देखके नित्य निवारण करता है, उस धर्म्म क्षयसे डरे हुए मनुष्यको उत्तम मित्र समझना चाहिये और जो उसके नाशकी इच्छा करे, वह उसका शत्रु गिना जाता है। जो मनुष्य व्यसनसे सदा डरता है और धनसे किसीका अनिष्ट नहीं करता ; वैसे पुरुषके मित्र होनेपर उसे आत्म-सदृश समझे। जो पुरुष उत्तम रूप वर्ण और स्वरसे युक्त, तितिक्षा, असूयारहित ; उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ और कुलसे युक्त होवे, उसे पहिले कहे हुए मित्रोंसे मुख्य जानना चाहिये जो मेधावी, स्मृतिमान, दक्ष, स्वाभाविक अनृशंसता और सम्मानित वा अपमानित होनेपर भी कभी किसीकी बुराई नहीं करते, वे ऋत्विक, आचार्य्य वा अत्यन्त प्रिय मित्र होनेपर भी यदि सेवक होकर तुम्हारे गृहमें निवास करें, तो उनका अधिक सम्मान करना होगा। वे तुम्हें परम मित्र और धर्म्मका स्वरूप जानेंगे और तुम भी उनका पिताकी भांति विश्वास करना। एक कार्य्यके दो वा तीन अधिकारी होनेपर वे लोग आपसमें एक दूसरेके दोषोंको क्षमा नहीं करते ; इससे एक कार्य्यमें एकसे अधिक अध्यक्ष नियत करना उचित नहीं है ; क्यों कि प्राणियोंमें सदा परस्पर मतभेद हुआ करता है। जो पुरुष सत्कीर्त्तियोंके अग्रगण्य हुए हैं, जो नीतिके बाहर नहीं होते, जो समर्थ मनुष्योंके साथ द्वेष और अनर्थ आचरण नहीं करते, जो काम-क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर निज धर्म्म परित्याग नहीं करते और जो सब कार्य्योंमें दक्ष तथा पर्य्याप्तवादी हैं, वेही तुम्हारे मुख्य मित्र होवें। और भी जो लोग कुलीन उत्तम स्वभावसे युक्त, क्षमावान, अपनी बड़ाईसे रहित, शूर, आर्य्य, विद्वान, कार्य्याकार्य्य-विवेकमें निपुण, सब कर्म्मोंमें अवस्थित, कम्मागीय, संविभक्त, उत्तम सहाय युक्त,

और सत्कर्म करनेवाले हैं, उन्हें सेवक पदवी पर नियुक्त करना उचित है। हे राजन्! ऐसे लोग सब प्रतिरूप अर्थात् आय-व्ययके हिसाब आदि कार्य्यों तथा सब मुख्य राज कार्य्योंके अधिकारी होनेसे कल्याणकी वृद्धि किया करते हैं। ये लोग सदा स्पर्द्धावान होकर निर्जनमें ही सब कार्य्योंको सिद्ध करते हैं तथा आपसमें वार्त्तालाप करके सब प्रयोजन सिद्ध किया करते हैं। हे महाबाहो! मृत्युकी भांति जातिके लोगोंका सदा भय करना, क्योंकि जातिके लोग समीपमें पहुंची हुई मृत्युकी भांति सदा राजऋद्धिको नहीं सह सकते। परन्तु जाति सरल, मृदु वदान्य, लज्जाशील और सत्यवादी होनेपर कोई उसके नाशकी अभिलाष नहीं करते। जातिहीन मनुष्यको सुख नहीं होता, जातिसे रहित मनुष्य सबके ही अवज्ञाभाजन होते हैं और जाति हीन पुरुष ही शत्रुओंसे पराजित हुआ करते हैं। कोई दूसरेसे अवमानित होनेपर जाति ही उसके वास्ते आश्रय हुआ करती है और जाति ही जातिको दूसरेसे पराभव देखके कभी नहीं सह सकती। कोई पुरुष बन्धु-बान्धवोंसे अपमानित होवे तो जातिके पुरुष अपनेको ही अवमानित समझते हैं; और बन्धु यदि सौ गुणोंसे बड़ा होवे, तौभी उसे अल्प गुणवाला समझके अपनेको उससे अनेक गुणोंसे बड़ा हुआ बोध करते हैं। जातिहीन मनुष्य किसीके ऊपर कृपा नहीं करते, जातिहीन मनुष्य किसीके समीप नत नहीं होते; जातिके बीच साधु और दुष्ट दोनों ही दीख पड़ते हैं। इससे वचन और कर्मसे सदा जातिके पुरुषोंका सम्मान, पूजा तथा प्रियकार्य्य करे; तनिक भी उनके साथ अनिष्ट आचरण न करे। उनके समीप सदा विश्वासीकी भांति अविश्वास भावसे वास करे और उनके सामान्य गुण दोषको निरूपण करके न देखे। हे राजन्! जो पुरुष प्रमाद हीन होकर इसी भांति निवास करते हैं; उनके सब शत्रु प्रसन्न होकर मित्रकी भांति व्यवहार करते हैं। जो पुरुष जाति और सम्बन्धीसमूहमें इसी प्रकार सदा स्थित रहते हैं, वे मित्र, शत्रु और मध्यस्थोंके निकट यशस्वी होकर बहुत समयतक निवास करनेमें समर्थ होते हैं।

८० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पहिले कहे हुए स्वजनों और सम्बन्धियोंको इस प्रकार वशमें न कर सके तो मित्र भी शत्रु होजावें, इससे सबका चित्त किस प्रकार वशीभूत होगा?

भीष्म बोले, इस विषयमें पण्डित लोग श्रीकृष्ण और देवर्षि नारदके सम्वाद युक्त जिस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, उसे कहता हूं सुनो। एक बार श्रीकृष्ण देवर्षि नारदसे बोले, हे नारद! अमित्र और मूर्ख मित्र, तथा चटु प्रकृतिवाले पण्डित सुहृदके निकट परम मन्त्र प्रकाशित करना उचित नहीं है। हे त्रिदिवङ्गम! इससे मैं तुम्हारे सब बल, बुद्धिको देखके तुम्हें ही उत्तम मित्र समझके कोई विषय कहता हूं और प्रश्न करता हूं। हे देवर्षि ऐश्वर्य्यवादके कारण जिसमें जातिके लोगोंकी उपार्ज्जित वस्तुओंमेंसे आधा हिस्सा देना होगा और उन लोगोंके दुर्व्वचनोंको सहना पड़ेगा; इस प्रकार जातिकी सेवाका मैं कभी नहीं करता; तौभी जैसे पुरुष अग्निकी इच्छासे अरणी काष्ठ मथते हैं; वैसे ही उन लोगोंके कहे हुए कठोर वचनसे मेरा हृदय सदा भस्म हुआ करता है। सङ्कर्षण बलसे, गद सुकुमारता और प्रद्युम्न रूपसे मतवाले हुए हैं; इससे मैं आहुक और अक्रूरकी शान्त्वनासे असहाय हुआ हूं। दूसरे जो सब महाभाग, बलवान उत्साहयुक्त, सदा उन्नतिशाली पुरुष अन्धक और वृष्णिकुलमें विद्यमान हैं, वे लोग

ऐसा समझते हैं, कि हम लोग जिस ओर होंगे वही पक्ष सबसे मुक्त, और हम लोग जिसके विरुद्ध होंगे, वही पक्ष निर्बल होगा। आहुक और अक्रूर दोनोंने मुझे निवारण किया है; इससे मैं एक पक्षको नहीं स्वीकार कर सकता हूं। इसके अतिरिक्त आहुक और अक्रूर दोनों ही पराक्रमी तथा कठिन कर्म्म करनेवाले हैं, इससे वे लोग जिस ओर रहेंगे, उसकी अपेक्षा दुखदायक कुछ भी नहीं है, और जिसकी ओर न रहेंगे, उसे भी उससे अधिक दुःखका विषय कुछ भी नहीं हो सकता। हे महाबुद्धि-मान! कितव अर्थात् जुवाड़ी पुरुषकी माताकी भांति मैं एककी जय और दूसरोंके पराजयकी इच्छा करता हूं। हे नारद! मैं दोनों ओरसे सदा इसी प्रकार क्लेश पाता हूं; इससे इस विषयमें मेरा और जातिके लोगोंका जिसमें कल्याण हो; वह तुम्हें कहना उचित है।

नारद मुनि बोले, हे वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए कृष्ण! आपदा वाह्य और अभ्यन्तर रूपसे दो प्रकारकी हैं, वह स्वभाव तथा दूसरे कारणोंसे उत्पन्न हुआ करती है। अर्थ, काम और विभत्स वचन-निवन्धनसे अक्रूर, और भोजवंश सङ्कर्षण आदि सब लोग अक्रूरके अनुगत हुए हैं, इसहीसे यह अभ्यन्तर आपदा तुम्हें दुःखदायक हुई है; और तुमने निज ऐश्वर्य्य आहुकको दे रखा है, इसीसे ज्ञातिके बीच कोलाहल मचा है; वान्त अन्नकी भांति उसे भी तुम फिर नहीं ग्रहण कर सकते हो; इससे निज कर्म्मके दोषसे ही ऐसी आपद उत्पन्न हुई है। विशेष करके जाति भेदके भयसे अब तुम बभ्रु और उग्रसेनके राज्यको किसी प्रकार भी ग्रहण नहीं कर सकते हो। यद्यपि तुम यत्नपूर्व्वक अनेक कठिन कार्य्योंको करके उसे साधन करो तो ऐसा होनेसे फिर महाक्षय व्यय और विनाश उपस्थित होगा। इससे तितिक्षा, ऋजुता, और मृदुतासे दोष दूर करके तथा यथायोग्य पूजा आदिसे प्रीति गुणके सहारे अनायास ही मृदु मर्म्मच्छेद शस्त्रसे सबकी जिह्वाका उद्धार करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे मुनिवर! तितिक्षा आदि ऐसे दोषोंको दूर कर और यथा उचित पूजासे प्रीति गुण सिद्ध करके जिस भांति जातिके पुरुषोंकी जिह्वा उद्धार करनी होती है। वह मृदु अनायास शस्त्र क्या है?

नारद मुनि बोले, सामर्थ्यके अनुसार सदा अन्नदान, तितिक्षा, सरलता, कोमलता और यथा योग्य दूसरेकी पूजा इन सबको ही अना-यास शस्त्र जानना चाहिये। तुम मीठे वचनसे लघु और कटु वादी जातिके पुरुषोंके कुटिल अभिप्राय कुवाक्य और दुष्ट सङ्कल्पोंको नष्ट करो। और महापुरुषके अतिरिक्त कोई अस-हायवान तथा असावधान पुरुष उद्योगी होकर बड़े भारको उठानेमें समर्थ नहीं होता। इससे तुम निज वक्षस्थल पर उस भारको ग्रहण करो। देखो, समतल स्थानमें सब अनगन ही गुरुभार उठा सकते हैं; परन्तु कठिन स्थानमें भलीभांति दृढ़ अङ्गसे युक्त अनड्वानके अतिरिक्त सब ही कठिनतासे उठाने योग्य भारको नहीं ढो सकते। हे कृष्ण! तुम सबके मुखिया हो, ज्ञाति भेद होनेसे सबका ही नाश होगा; इससे ये जातिके लोग तुम्हारा आसरा करके जिसमें नाश दशाको न प्राप्त हों, वही उपाय करो। बुद्धि, शान्ति, इन्द्रियनिग्रह और धन त्यागके अतिरिक्त बुद्धिमान पुरुषमें कोई गुण नहीं रहते। हे कृष्ण! इससे जिसमें धन, यश, आयु और सदा स्वपक्षकी बढ़ती हो तथा जातिके पुरुषोंका नाश न होवे, वही करो। हे प्रभु! आयति, तत्काल यात्रा और यान विधिमें षाड्गुण्य-विधानके कारण तुमसे कुछ भी नहीं छिपे हैं, हे महाबाहो माधव! यादव, कुकुर, भोज, अन्धक वृष्णि और दूसरे लोकपाल तथा ऋषि लोग तुममें अनुरक्त होकर तुम्हारे ही वृद्धिकी अभिलाषा करते हैं। तुम सब प्राणि-

योंके गुरु हो ; तुम्हीं प्राणियोंके भूत भविष्य सब विषयोंको जानते हो ; तुम यदुकुलमें श्रेष्ठ हो ; इससे यदुवंशी लोग तुम्हें प्राप्त करके ही सुख भोग कर रहे हैं।

८१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत ! मैंने जो कुछ कहा, वह राजाओंको प्रथम वृत्ति है. इसके अनन्तर दूसरी वृत्ति कहता हूं सुनो। हे भरतकुल अवतंस ! कोई मनुष्य धन उपार्ज्जन क्यों न करें ; राजा उसे सदा सर्व्वदा रक्षा करे। हे युधिष्ठिर ! सेवकोंके राजभण्डार हरने और नष्ट करने पर जो कोई मनुष्य वह वृत्तान्त राजासे कहे, राजा निर्ज्जन स्थानमें उसका वह वचन सुने और सेवकोंसे रक्षित स्थानमें उसका वह वचन सुने और सेवकोंसे उसकी रक्षा करे ; क्योंकि धन हरनेवाले सेवक लोग सबका ही नाश किया करते हैं। हे नरनाथ ! कालक-वृक्षीय मुनिने कौशल्यसे जो वृत्तान्त कहा था, पण्डित लोग इस स्थलमें भी उस प्राचीन इतिहासको वर्णन किया करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि कालक-वृक्षीय मुनिने कौशलाधिपतिको सेवकोंके दोष देखनेके निमित्त वारवार प्रवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे पिञ्जरेके भीतर एक कौआ बन्द करके क्षेमदर्शी कौशलाधिपतिके सम्पूर्ण राज्यमें घूमते हुए राजाके समीप आके बोले,—मेरा कौवा सब विद्या पढ़ा है, इससे यह भूत, वर्त्तमान और भविष्यति आदि सब कहा करता है। उन्होंने ऐसा ही कहते हुए अनेक पुरुषोंके सङ्ग राज्यमें भ्रमण करके राज कार्य्यमें नियुक्त सेवकोंका स्वामि- द्रव्य हरण रूपी पाप देखा। अनन्तर उन्होंने उस राज्यके समस्त व्यवसाय और राज कार्य्यमें नियुक्त सब सेवकोंको स्वामि द्रव्य हरनेवाला जानके मैंने सब जान लिया है, ऐसा ही कहते कहते राजासे भेंट करनेके वास्ते कौवा लेकर राजाके समीप आगमन किया। मुनिने क्षेमदर्शी कौशल्यके निकट आके उनके सम्मुख कौवाके वचनके अनुसार अलंकृत राज मन्त्रीसे बोले, कि तुमने अमुक स्थानमें इतना धन हरण किया है ; और जिस राजकोषको हर रहे हो, उसे अमुक अमुक पुरुष जानते हैं, यह कौवा ऐसा वचन कहता है ; इससे तुम शीघ्र उसे विचारके देखो। अनन्तर मुनिने मन्त्रियोंसे ऐसा ही कहके उस स्थानमें दूसरे राजपुरुषोंसे कहा, तुम लोग भी जो राजकोष हरनेवाले हो, कौवेके वचनके अनुसार उसे मैं विशेष रूपसे जानता हूं ; क्योंकि इस कौवेका मिथ्या वचन मैंने कभी भी नहीं सुना है। हे कुरुकुल धुरन्धर ! कालक वृक्षीय इसी भांति कौशल्यके सेवकोंका यथा योग्य तिरस्कार करके सन्ध्याके समय निद्रित हुए ; तब सब राजपुरुषोंने मिलके बाणसे उनके कौवेको विद्ध किया। अनन्तर बहुत भोरके समय उठकर ब्राह्मणने पिञ्जरेमें कौवाको बाणसे विद्ध देखके क्षेमदर्शी कौशल्यसे कहा। हे राजन् ! आप स्वामी और प्राण-धनके ईश्वर हैं ; इससे आपके समीप मैं अभय प्रार्थना करता हूं। महाराज ! आपकी आज्ञा-सेही मैंने सब भांतिकी शक्ति और यत्नके सहित तुम्हारे समीप आके आपके हितकर वचन कहा था, उससे अपने मित्रके नष्ट होनेसे मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं। उत्तम घोड़ेको सिखानेवाले सारथीकी भांति यदि कोई मित्रको प्रबोधित करनेकी अभिलाषासे क्षमा-रहित होके तुम्हारा यह धन हरण हुआ है, ऐसा वचन कहे और मित्रके हितके वास्ते अत्यन्त क्रुद्ध होके हितसाधनमें प्रवृत्त हो ; तो ऐसा होनेपर नित्य ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले स्वजन पुरुषको वैसे मित्र और उसके वचनको क्षमा करना उचित है। परन्तु असावधान होके इसरेसे वैसे मित्रको नष्ट कराना उचित

नहीं है। चेमदर्शी कालक-वृचीयका ऐसा वचन सुनके बोले, मैं अपने हितकी इच्छा किया करता हूं। इससे मेरे हितके वास्ते आप मुझे जो कुछ कहेंगे, उसे मैं क्यों न चमा करूंगा।

हे ब्राह्मण! आप इस विषयमें जो कुछ कहनेकी इच्छा करते हैं, उसे कहिये। हे विप्र! मैं आपके समीप यह प्रतिज्ञा करता हूं, कि आप मुझे जो कहेंगे, मैं आपकी वह इच्छा सफल करूंगा।

कालक-वृचीय मुनि बोले, महाराज! मैंने आपके सेवकोंका दोषादोष और उनसे अपनेको भय प्राप्त होना मालूम करके उनका व्यवहार आपसे कहनेके वास्ते भक्तिपूर्व्वक आपके समीप आगमन किया था; वह मेरा उचित कार्य्य नहीं हुआ है; क्योंकि इस ही कारण पहिले समयमें पूर्व-आचार्य्योंने राजसेवक पुरुषोंका इस प्रकार दोष कहा है, कि जो लोग राजसेवा करते हैं, उन लोगोंकी ऐसी पापजनक अगतीक गति अर्थात् अनुपायु मनुष्यकी भांति गति हुआ करती है। और भी पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजाके साथ जो लोग आसक्त होते हैं, उनको विषधारी सर्पके साथ आसक्त होना समझा जाता है, क्यों कि बहुतसे मित्र और अनेक शत्रु राजाओंके समीप विद्यमान रहते हैं। हे राजन्! इससे राजसेवा करनेवाले पुरुष राजकीय मित्र, शत्रु और राजाका सदा भय करें। हे राजन्! राजाके समीप एकबारगी प्रमाद करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता, इससे राजाके निकट ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कभी प्रमाद करना उचित नहीं है; क्यों कि सेवकके प्रमादसे राजा क्रोधित होता है, राजाके ढिलाईसे उसके जीवनमें संशय उत्पन्न होता है। जलती हुई अग्निमें पड़नेवाले पुरुषकी भांति राजाके समीप शिक्षित पुरुषका भी जीवन नष्ट हुआ करता है। इससे पुरुष सदा जीनेकी आशा त्यागके क्रुद्ध सर्पकी भांति प्राणधनके स्वामी राजाके निकट गमन करें; और राजाके समीप कुवचन कहना, दुःखित भावसे स्थित होना, कुस्थानमें निवास निन्दित रीतिसे बैठना दुष्टताके सहित गमन करना, इङ्गित और अङ्गचेष्टित इन सब कार्य्योंमे सदा शङ्का करे। हे राजन्! यमने ऐसा कहा है, कि राजा प्रसन्न होनेसे देवताकी भांति सब अर्थ सिद्ध करता और क्रुद्ध होनेसे अग्निकी भांति जड़ सहित भस्म करता है; इससे जो पुरुष राजाके निकट यथा नियमसे निवास करेगा मैं उत्तरोत्तर उसकी समृद्धिकी बढ़ती करूंगा। महाराज! मेरे समान सेवक ही आपदकालमें बुद्धिकी सहायता प्रदान किया करते हैं, मेरा कौवा जैसा कार्य्यकारी था, मैं भी वैसा ही कार्य्य कर सकता हूं, परन्तु तुम्हारे सेवक लोग कौवेकी भांति मुझे भी नष्ट करेंगे ऐसा ही मुझे सन्देह होरहा है। मैं इस विषयमें आपकी निन्दा नहीं करता, परन्तु आप जो सेवकोंके प्रियपात्र नहीं हैं, वही कहता हूं। इसके अनन्तर आप हिताहितका विचार करके अपने सम्मुख ही सब कार्य्योंको सिद्ध कीजियेगा, महाराज! आपके गृहमें कोष हरण करनेवाले जो सब सेवक निवास कर रहे हैं, प्रजाके अमङ्गलकी इच्छा करनेवाले उन्हीं सब सेवकोंने मुझसे शत्रुताचरण किया है, और जो आपके अभावमें राज्य प्राप्त करेगा, उसने आपके प्राण नाशके वास्ते रसोई बनानेवालोंके जरिये अन्नादिकोंमें विष डालनेकी इच्छाकी है, आप यदि सावधान न होंगे, तो उन लोगोंकी वह अभिसन्धि सिद्ध होगी। महाराज! मैंने उन लोगोंके डरसे दूसरे आश्रममें गमन करनेकी इच्छाकी है। उन लोगोंने मेरे वास्ते जो बाण चलाया था, उससे मेरा कौवा मरा है। मैं निष्कामी और वे लोग छद्मकामी हैं; इससे उन लोगोंने ही जो मेरे कौवेको यमपु-

रोमें मेगा है, उसे मैं तदमय बड़े नेत्रसे स्पष्ट-रूपसे देख रहा हूं। हे राजन्! स्थाणु, पत्थर और कांटेसे युक्त, सिंह और बाघोंसे परिपूरित, भयङ्कर और दुःखसे प्रवेश करने योग्य गुफाकी भांति अनेक मकर, मच्छ और घड़ियालोंसे घिरे हुए, तिमिङ्गिल समूहसे परिपूर्ण यह राजनीति रूपी महानदीसे, मैं तर्किया रूपी नौकाके जरिये पार हुआ हूं। महाराज! दीपकसे अन्धार युक्त किला और नौकासे पुरुष जलदुर्गके पार हो सकता है, परन्तु पण्डित लोग भी राज दुर्गके पार होनेकी उपाय निश्चय नहीं कर सकते। आपका राज्य अन्धकारकी भांति तम युक्त अर्थात् धर्माधर्म रहित और अत्यन्त अगम है; अतएव आप जब इसमें विश्वास करनेमें समर्थ नहीं होते, तब मैं किस प्रकार विश्वास करूंगा। इस राजामें जब पाप और पुण्य दोनों ही समान हैं, तब इस स्थानमें वास करना कल्याणकारी नहीं होगा, क्योंकि स्थलमें सुकृत और दुष्कृत दोनोंका ही निश्चय विनाश होगा। दुष्कृतका विनाश ही न्याय है; इससे इस स्थानमें स्थिरभावसे निवास करना युक्ति नहीं है; इससे जो पण्डित हैं; वे इस स्थानसे शीघ्र ही भाग जावें। हे राजन्! जिसमें सब नौका डूब जाती हैं, उस सीता नाम्नी नदीकी भांति आपकी यह राजनीति सर्व्वघातिनी वा गुरा रूपसे मुझे मालूम होरही है। हे राजन्! आप मधु प्रतापके समान परन्तु भोजनमें विषकी भांति हैं; आपके अभिप्राय मिथ्याकी भांति हैं, सदभिप्राय आपमें कुछ भी नहीं है; इससे आप मुझे सर्पसे युक्त कूएंकी भांति मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! आप दुर्गम तीर्थ युक्त बड़े किनारे तथा बत संयुक्त मीठे जलसे परिपूरित नदी और कुत्ते, गिद्ध तथा सियारोंसे घिरे हुए राज हंसकी भांति मालूम होरहे हैं। महाराज! कच्छ अर्थात् तृण लता आदि सब महावृक्षोंके आसरेसे बढ़के उसे आवरण करते हुए क्रमसे उस वृक्षको अतिक्रम करके बढ़ने पर भी प्रचण्ड दावाग्निके लगनेसे महाकक्षके सहित जैसे वह वृक्ष भस्म हो जाता है, वैसे ही कक्ष तुल्य सेवकों सहित आप भी नष्ट होंगे; इससे आप उन सेवकोंकी परीक्षा करिये, आप ही उन लोगोंकी सेवक पदवी पर नियुक्त करके प्रतिपालन कर रहे हैं; परन्तु वे लोग आपको अभिसन्धान करके तुम्हारे सब इष्ट विषयको नष्ट करनेकी अभिलाषा करते हैं। इसही कारण मैं सहजीवी राजाके समस्त स्वभावके जाननेकी इच्छा करके प्रमादकी सब भांतिसे रक्षा करते हुए सर्पसे युक्त गृह और बीर पक्षीके स्थानकी भांति इस राज शङ्कित चित्तसे निवास करता हूं। हे राज सत्तम! राजा जितेन्द्रिय है, वा नहीं? इसने कामादिकोंको जय किया है वा नहीं? यह सेवकोंको प्रिय है, या नहीं और सब प्रजा इसे प्यारी है, वा नहीं? यह सब जाननेके ही वास्ते मैंने आपके समीप आगमन किया है। हे राजन्! भूखे पुरुषके भोजनीय वस्तुकी भांति आप मेरे अभिलषित हुए हैं; परन्तु आपके सेवक लोग प्यास रहित पुरुषके वास्ते जलकी भांति मेरे अनलषित हुए हैं। आप यह निश्चय जान रखो, कि इस ही कारण वे लोग "मैं आपका अर्थकारी हूं,"—ऐसा दोष मेरे ऊपर आरोपित कर रहे हैं; दूसरा कोई कारण हो मुझमें विद्यमान नहीं है। मैंने उन लोगोंका कुछ भी अनिष्ट आचरण नहीं किया है; तौभी जब वे लोग मेरे दोषदर्शी हुए हैं। तब अब मुझे इस स्थानमें निवास करना उचित नहीं है; क्योंकि पूंछ दाबनेसे क्रुद्ध हुए सर्पकी भांति दुष्ट चित्तवाले शत्रुओंसे सदा शङ्का करनी उचित है।

राजा बोले, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मैं बहुतसा परिहार स्वीकार करके अधिक आदरके सहित आपकी पूजा करता हूं; आप मेरे गृहमें बहुत

दिनों तक निवास कीजिये। हे ब्राह्मण ! मेरे सेवकोंके बीच जो लोग आपके साथ अनुकूल आचरण नहीं करेंगे, वे मेरे गृहमें न रहने पावेंगे। अनन्तर इन लोगोंकी जैसी दशा होगी उसे आप ही जान सकेंगे। हे भगवन् ! जिससे दण्ड उत्तम रीतिसे धारण और सुकृत कर्म्म भली भांति सिद्ध हों, उस विषयमें विशेष समालोचना करके कल्याणके वास्ते मुझे नियुक्त कीजिये।

मुनि बोले, पहिले कौवाके वधके कारण यह दोष देखकर एक एक सेवकोंको क्रमसे निर्ब्बल अर्थात् ऐश्वर्य्य च्युत कीजिये। अनन्तर कौवाके वधका वृत्तान्त विशेष रूपसे जानके एक एक करके उन लोगोंका वध करिये। हे राजन् ! बहुतसे मनुष्य एक ही दोषसे दूषित होने पर सब कोई मिलके अत्यन्त तीक्ष्ण कांटेको भी कोमल किया करते हैं; इससे यदि मन्त्रभेद होवे, इस ही कारण मैं आपसे ऐसा कहता हूं। मैं ब्राह्मण जाति स्वभावसे ही दयालु हूं; इससे हमारा दण्ड अत्यन्त कोमल है; अपनी भांति दूसरेका तथा आपके मङ्गलकी अभिलाषा किया करता हूं। हे राजन् ! आपके सङ्ग मेरा जैसा सम्बन्ध है, आपको उसका परिचय देता हूं; मेरा नाम कालकवृक्षीय कहके प्रसिद्ध है। मुझे सत्यप्रतिज्ञ समझके तुम्हारे पिता मेरा मित्रके समान सम्मान करते थे; जब वे परलोकको गये, उस समय मैं सब कामना त्यागके तपस्या कर रहा था। अनन्तर आपका राज्य विपदग्रस्त होनेसे मैं यहां आया हूं; और उस ही प्रीतिके कारण आपको बार बार यह वचन कहता हूं, इससे अब आप अनाप्त पुरुषमें आत्म बुद्धि न कीजिये। आपने इच्छानुसार राज्य लाभ किया है और सुख दुःख दोनोंको ही विद्यमान देख रहे हो, तौभी क्यों इस प्रकार सेवकोंके ऊपर राज्य भार सौंपकर प्रमादग्रस्त होते हो ? हे राजन् ! पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजकुलमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय और पुरोहित कुलमें पैदा हुए उत्तम ब्राह्मणोंको ही यत्न पूर्व्वक सेवक पदवी पर प्रतिष्ठित करे।

हे युधिष्ठिर ! कालक वृक्षीय मुनि इसी भांति यशस्वी कौशल्यके समुद्र सहित सब पृथ्वीको एकछत्री करके अत्यन्त उत्तम यज्ञादि कार्य्य किया और कौशल्यराज उनका वैसा हितकर वचन सुनके पृथ्वी जय करके उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करने लगे।

८२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! कैसे पुरुष राजाके सभासद, सहायक सुहृद परिच्छद और सेवक होंगे ?

भीष्म बोले, हे भारत ! जो लोग लज्जाशील, जितेन्द्रिय, सत्य और सरलतासे युक्त तथा प्रिय और अप्रिय वचनको पूरी रीतिसे कहनेमें समर्थ हैं, वैसेही पुरुषोंको तुम सभासद करना। हे कौन्तेय ! जो सदा समीप रहते, पराक्रमी अत्यन्त ही श्रवण शक्तिसे युक्त, सन्तुष्ट, ब्राह्मण और सब कर्म्मोंमें महोत्सवसे सम्पन्न हैं, उन्हें ही आपदके समय सहायक बनाना। जो कुलीन, सदा सम्माननीय निज शक्तिको छिपाते नहीं और प्रसन्न, अप्रसन्न, पीड़ित वा मरे हुए सेवकोंको सब भांतिसे आवर्त्तित करते हैं, उन्हें ही सुहृतमित्र समझो। जो कुलीन, स्वदेशज, बुद्धिवान, रूपवान, बहुश्रुत, प्रगल्भ और अनुरक्त हैं, उन्हें ही परिच्छद कार्य्यमें नियुक्त करे। हे तात ! जो लोग दुष्ट कुलोंमें उत्पन्न हुए, लोभी, नृशंस और निर्लज्ज हैं, वे लोग जब तक गीलाहाथ अर्थात् धनवान रहोगे, तभीतक सेवा करेंगे सूखे हाथ होने पर उस ही समय टेढ़े होकर फिर तुम्हारी सेवा न करेंगे; इससे उन्हें परिच्छद कार्य्यपर नियत करना उचित

नहीं है; और जो लोग कुलीन, सत्स्वभाव युक्त, दृढ़ितत्व, निठुरतारहित; देश, काल और उपाय जाननेवाले तथा स्वामि-कार्य्य हितैषी हैं, उन्हें सब कार्य्योंमें सेवक बनाना। जिन्हें प्रियपात्र समझके अर्थ, मान, दिव्यवस्त्र और पान आदि दान तथा सत्कार आदि अनेक भांतिके भोगसे प्रतिपालन करे; वेही अर्थ और सुख भागी होंगे।

हे युधिष्ठिर! जिसकी चित्तवृत्ति किसी प्रकार विचलित नहीं होती और जो लोग विद्वान् सद्वृत्त, व्रत करनेवाले, सत्यवादी, और अक्षुद्र हैं, वेही नित्यार्थी अर्थात् सदा स्वामीकी अर्थ चिन्ता करते और आपदकालमें स्वामीको कभी नहीं त्यागते। और जो अनाढ्य, अधार्म्मिक, मन्दबुद्धि तथा मर्य्यादाहीन हैं, उन लोगोंके निकट समय अर्थात् धर्म्माधर्म्मको सब भांतिसे रक्षा करे। सबके बीच अन्यतर ग्रहण करना हो, तो गण परित्याग करके एक पुरुषके ग्रहण करनेकी इच्छा न करे; परन्तु एक पुरुष गण अर्थात् सबमें मुख्य होनेपर समूहका त्यागके भी एक पुरुषकी ग्रहण करना उचित है। जो उत्तम कीर्त्ति और युद्धमें स्थित होके विक्रम दिखाते हैं, उसेही उनका साधु लक्षण समझो। और जो समर्थ पुरुषका सम्मान करते, स्पर्द्धा-हीन पुरुषके विषयमें स्पर्द्धा नहीं करते, काम, क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर धर्म्म नहीं त्यागते, तथा अभिमान रहित, सत्यवादी, क्षमा-शील, जितात्मा, मानी और सब अवस्थामें ही परीक्षायुक्त हैं, वेही तुम्हारे मन्त्र सहायक होवें। हे पार्थ! जो कुलीन, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, क्षमाशील, पटु, ऊंचे चित्त, शूर, कृतज्ञ और सत्य धर्म्मसे युक्त हैं, वेही साधु हैं; क्योंकि यही सब गुण साधुओंके लक्षण कहके प्रसिद्ध हैं। राजन्! इसी भांति बुद्धिमान पुरुष यदि राजाके निकट विद्यमान रहें, तो शत्रु भी प्रसन्न होके मित्रकी भांति व्यवहार किया करते हैं; इससे जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् भूति-काम राजा ऐसे सेवकोंके अतिरिक्त अन्य सेवकोंके समस्त गुण दोषोंकी परीक्षा करे। हे राजन्! उन्नति शील, ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले राजा लोग आत्मीय, कुलीन, स्वदेशीय, स्रक् चन्दन आदि विषयोंके वशमें न होनेवाले, व्यभिचार रहित और भलीभांति परीक्षा किये हुए पुरुषोंके साथ सम्बन्ध और अत्यन्त श्रेष्ठ योनिसे उत्पन्न हुए वेद जाननेवाले, परम परागत और अभिमानरहित मनुष्योंकोही मन्त्री करे जिसमें बुद्धि विनय युक्त, उत्तम स्वभाव, तेज, धीरज, क्षमा, पवित्रता, अनुराग, मर्य्यादा और धारणा ये सब गुण विद्यमान हैं, राजा उन लोगोंके ऊपर कहे हुए गुणोंको सदा परीक्षा करके मजबूत, धुरन्धर, कपट रहित पांच पुरुषोंको अर्थ कार्य्य पर नियुक्त करे। हे राजन् जो लोग पर्य्याप्तवादी, वीर, प्रतिपत्ति विशारद, कुलीन, सत्यसे युक्त, दृढ़ितत्व, निठुरता रहित, देश काल और उपायके जाननेवाले तथा स्वामि कार्य्य हितैषी हैं, राजा उन्हें सब कार्य्योंमें ही मन्त्री करे। हे राजन्! जो पुरुष तेजरहित मित्रके साथ सम्बन्ध रखता है, वह कभी कर्त्तव्या-कर्त्तव्य विषयको निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता; बल्कि सब कार्य्योंमें ही संशय उत्पन्न किया करता है, इससे राजा ऐसे मनुष्यको कभी अपना मन्त्री न करे। और अल्पश्रुत मनुष्य उत्तमकुलमें उत्पन्न और धर्म्म, काम इस त्रिवर्गसे युक्त होनेपर भी वह मन्त्र परीक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता, इससे उसे सेवक पदपर नियत करना उचित नहीं है, और नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष अच्छे प्रकार बहुश्रुत होनेपर भी अनायक अन्धेकी भांति सूक्ष्मकर्म्ममें मोहित हुआ करता है; इससे राजा उसे सेवक पदपर नियुक्त न करे। अस्थिर सङ्कल्पवाला पुरुष बुद्धिमान, शास्त्रवित और उपाय जाननेवाला होनेपर भी बहुत समय तक कार्य्य

सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होता। इस संसारमें जो नीच बुद्धि मनुष्य कर्म्मके विशेष फलको न जानके केवल मात्रकर्म्म करते हैं, उनकी सलाह नहीं ग्रहण की जा सकती। विरक्त मन्त्रीका विश्वास करना युक्तियुक्त नहीं है, इससे विरक्त मन्त्रीके समीप कभी विचार प्रकाश न करे; क्यों कि जैसे अनिल वृक्षके छिद्रसे प्रवेश करके अग्निकी भांति उसे भस्म करता है, वैसे ही वह कपटी मन्त्री दूसरे मन्त्रियोंके साथ मिलके राजाको दुःखित किया करता है। स्वामी कभी क्रुध होके मन्त्रीको स्थानसे च्युत करता, अथवा वचनसे निन्दा करके फिर उसके ऊपर प्रसन्न हुआ करता है; परन्तु अनुरक्त मित्र ही स्वामीके वह सब उपद्रव सह सकते हैं; और विरक्त मित्र उसे किसी प्रकार नहीं सह सकता वल्कि उसका क्रोध वज्र शब्दके समान होता है जो मन्त्री राजाके प्रिय-कामनासे उसके उन सब उपद्रवोंको नष्ट कर सकता है, राजा समान सुख दुःख भागी उस ही मनुष्यसे अर्थ विषयमें सलाह प्रश्न किया करता है।

हे राजन्! सरलता-रहित मनुष्य इतर गुणोंसे युक्त होनेपर भी राजाके विचारको सुनने योग्य नहीं होसकते जो मनुष्य शत्रुसे सम्बन्ध करके पुरवासियोंका आदर नहीं करता वैसा पुरुष शत्रुसमान गिना जाता है और वह सलाह सुननेके योग्य नहीं है। मूर्ख, अपवित्र, लुब्ध, शत्रुकी सेवा करनेवाले, अपनी बड़ाई करनेवाले, अमित्र, क्रोधी और लोभी ये सब राजाके मन्त्रणा सुननेके योग्य नहीं होसकते। आगन्तुक पुरुष अनुरक्त, बहुश्रुत, सत्कृत और संविभक्त होनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। पहिले जिसका पिता अधर्म्म आचरणके वशमें होकर कुस्वभावसे युक्त हुआ है, वह पुरुष सत्कृत और स्थापित होनेपर भी विचार सुननेके योग्य नहीं होसकता। जो पुरुष तनिक कार्य्यके वास्ते सुहृदका सर्व्वस्व हरके उसे निर्द्धन करता है, वह दूसरे अनेक गुणोंसे युक्त रहनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। और जो मनुष्य कृतप्रज्ञ, मेधावी, पण्डित, जनपदवासी, परम पवित्र और सब कार्य्योंमें शुद्धतायुक्त हैं, वे पुरुष ही राजाके विचारको सुननेके योग्य होसकते हैं। जो पुरुष ज्ञान, विज्ञानसे युक्त, शत्रुके और अपने स्वभावको आत्मसदृश समझता है, वही पुरुष मन्त्रणा सुननेके योग्य होसकता है। जो पुरुष सत्यवादी सुशील, गम्भीर अर्थात् मन्त्र गोपन करनेमें समर्थ, लज्जाशील, कोमलता युक्त और पिता-पितामहके क्रमसे विद्यमान रहता है, वह पुरुष ही सलाह सुन सकता है जो मनुष्य सन्तुष्ट, सर्व्वसम्मत, सत्यधर्म्मवाला, प्रगल्भ पापद्वेषी, मन्त्रवित्, त्रिकालज्ञ और शूर है, वही पुरुष सलाह सुननेका योग्यपात्र है। हे राजन्! जो मनुष्य शान्तवचनसे सबको वशमें करनेमें समर्थ हो, दण्डधारी राजा उससे ही सलाह करे। पुर और जनपदवासी लोग जिसका धर्म्मपूर्व्वक विश्वास करें वही योद्धा, नीतिज्ञ पण्डित पुरुष सलाह सुननेके योग्य होसकता है। हे राजन्! इससे पहिले कहे हुए महत् आश्रय पांच जन मन्त्री ऐसे गुणोंसे युक्त हों, तो उन्हें सम्मानके सहित राजकार्य्यमें नियुक्त कर रखे; परन्तु पांचजन न पानेसे तीन पुरुषसे कम न रखे। स्वामीको चाहिये सेवकोंको निज स्वभावसे मन्त्रियोंको शत्रुपक्षके अवसर दानरूपी छिद्रों और शत्रुओंके छिद्रोंका सदा लक्ष्य करता रहे; क्यों कि राजाओंका मन्त्र ही मूल है मन्त्रसे ही राष्ट्र विशेष रूपसे वृद्धिको प्राप्त होता है। अपना छिद्र जिसमें शत्रुपक्षवाले न देख सकें, उसी भांति निज छिद्रको छिपाते हुए शत्रुओंके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, जैसे कछुवा अपना सब शरीर सिकोड़ लेता है, वैसे ही अपना छिद्र गोपन करे। राजाके महा बुद्धिमान मन्त्री लोग सब विचार गुप्त

रखें, राजा मन्त्ररूपी कवच धारण करे और शूरवीर पुरुष अमात्योंकी रक्षा करें। श्रेष्ठ बुद्धिवाले पण्डित लोग दूतको राज्यका मूल और मन्त्रको राज्यका सार कहा करते हैं; परन्तु स्वामी और मन्त्री लोग अभिमान, क्रोध, मान तथा ईर्षारहित होकर वृत्तिके वास्ते यदि आपसमें एक दूसरेके अनुवर्त्ती हों, तो वे सब कोई सुखी हुआ करते हैं। पांच भांतिके छलरहित सेवकोंके साथ सदा विचार करे, और पहिले कहे हुए तीनों मन्त्रियोंके अनेक परामर्श तथा उनके चित्तको विशेष रूपसे मालूम करके अपना तथा उन लोगोंका निश्चित मत स्थिर करके सलाहके अनन्तर उसे प्रकाशित करे। परन्तु यदि स्वयं असमर्थ हो तो सलाहके वास्ते धर्म्म, अर्थ और कामके जाननेवाले ब्राह्मण गुरुके समीप जाके उनसे वह विषय पूछे यदि उनके सङ्ग मतकी एकता होवे, तो उस ही विचारको कार्य्यमें नियुक्त करे। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि इसी भांति जो लोग मन्त्रके यथार्थ अर्थ और निश्चयको विशेष रूपसे जानते हैं; उनके साथ सदा विचार करके प्रजा संग्रहमें समर्थ उस मन्त्रको सदा प्रणयन कार्य्यमें नियुक्त करना उचित है। जिस स्थानमें सलाह करे, उसके आगे, पीछे, ऊपर, नीचे और तिर्य्यग् देशमें बौने, कुबड़े, कृश, गञ्ज, अन्धे, जड़, स्त्री और नपुंसक ये सब किसी भांति भी आने जाने न पावें। और कोठेमें चढ़के कुश काश रहित प्रकाशमान निर्जन स्थानमें गमन करके ऊंचे तथा भयानक वचन दोष और वक्र विकार आदि सब अङ्गदोषोंको परित्याग करके जिसमें कार्य्यका समय न बीत जावे, उसी भांति विचार करे।

८३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस मन्त्र मूल प्रजा संग्रह विषयमें पण्डित लोग बृहस्पति और इन्द्रके सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, उसे मैं इस प्रकार कहता हूं सुनो।

एक बार इन्द्रने बृहस्पतिसे पूछा था, कि हे ब्रह्मन्! जिसमें सब गुण अन्तर्हित होते हैं, क्या वैसे कर्त्तव्य कार्य्यका यथारीतिसे आचरण करनेसे ही पुरुष सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश प्राप्त कर सकते हैं?

बृहस्पति बोले हे सुरराज! पुरुष शान्त्व अर्थात् सब गुणोंके आश्रय प्रिय वचनको यथार्थ रीतिसे आचरण करने पर सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश लाभ कर सकते हैं। हे इन्द्र! पुरुष सब लोगोंको सुखी करनेवाले इस सब गुणावलम्बी प्रिय वचनका आचरण करनेसे ही सदा सब प्राणियोंका प्रियपात्र हुआ करता है। जो पुरुष इस संसारमें शान्त-वचनका आचरण न करके सदा भृकुटी टेढ़े मुखसे निवास करके किसीके साथ कुछ वार्त्तालाप नहीं करता; वह सब प्राणियोंका द्वेषी हुआ करता है। जो राजा सब विषयको जानके किसी पुरुषके निज दुःख कहनेके पहिले ही "तुम किस वास्ते आये हो"—ऐसा पूछते और हंसके उसके साथ वार्त्तालाप करते हैं; उनपर सब लोग ही प्रसन्न हुआ करते हैं। सब ठौर प्रियवचन रहित दान व्यञ्जन हीन भोजनकी भांति प्राणियोंको तृप्त नहीं कर सकता। हे सुरराज! मीठा वचन कहके प्रजाका सर्व्वस्व ग्रहण करनेपर भी वे लोग रुष्ट नहीं होते; क्योंकि प्रियवचनसे सब लोग ही वशमें हो जाते हैं। इससे दण्डधारी राजा सदा शान्तवाक्य प्रयोग करे, क्योंकि शान्त ही फल उत्पन्न करता है, उससे कोई कभी व्याकुल नहीं होता। सुकृती पुरुषोंसे सेवित शान्त्व श्लक्ष्ण और मधुर वचनके समान कुछ भी नहीं है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रने जैसे गुरु बृहस्पतिसे ऐसा सुनके उनके वचनके अनुसार

सब कार्य्य किये थे; वैसे ही तुम भी इन सबका पूरी रीतिसे आचरण करो

८४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे राजेन्द्र! सब लोकमें राजा किस प्रकार प्रजापालन करनेसे धर्म्म विशेषके जरिये प्रीति अर्थात् स्वर्ग और नित्य-कीर्त्ति प्राप्त कर सकते हैं?

भीष्म बोले, राजा शुद्ध व्यवहारसे प्रजा पालनमें तत्पर होनेसे धर्म्म और नित्यकीर्त्ति लाभ करतेहुए पवित्र होकर दोनोंलोक प्राप्तकर सकते हैं। युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान्! राजा किस भांतिके व्यवहारसे कैसे लोगोंके साथ वर्त्ताव करे? यह पूछा हुआ विषय यथारीतिसे वर्णन करना आपको उचित है। आपने पहिले पुरुषोंके जो सब गुण वर्णन किये, मुझे मालूम होता है, कि वे सब गुण एक पुरुषमें विद्यमान नहीं रह सकते।

भीष्म बोले, हे महाबुद्धिमान्! तुम्हें मैं बुद्धिमान समझता हूं। तुमने जैसा वचन कहा वह वैसा ही है। ऐसे शुभ गुण किसी एक पुरुषमें विद्यमान रहने असम्भव हैं और इस लोकमें अत्यन्त यत्नसे भी सत्स्वभाव दुष्प्राप्य है तौ भी तुम्हें जिस प्रकार जैसा सेवक करना होगा, उसे संक्षेपमें कहता हूं। वेद जाननेवाले प्रगल्भ, स्नातक और पवित्र चार ब्राह्मण, हाथमें अस्त्रधारण किए हुए आठ बलवान क्षत्रिय; वित्त-युक्त इक्कीस वैश्य, नित्य कर्म्ममें रत पवित्र और विनीत तीन शूद्र; सेवा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहन, उपोहन, विज्ञान और तत्त्वज्ञान इन आठ गुणोंसे युक्त प्रगल्भ अनसूयक पचास वर्षीय श्रुति और स्मृतिसे युक्त, विनीत समदर्शी कार्य्यमें विवदमान पुरुषोंके बीच समर्थ अर्थ लोभ। और मृगया, जूआ, स्त्री, पान, दण्डपातन, वचनकी कठोरता तथा अर्थ दूषण आदि सात भांतिके घोर व्यसन वर्जित पौराणिक सूत एकजन—इन लोगोंको ही सेवक करे। परन्तु राजा चार ब्राह्मण, तीन शूद्र और एक सूत इन आठ मन्त्रियोंके बीच स्थित होके मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर उस ही विचारका राज्यके बीच प्रचार करके राष्ट्रीय पुरुषोंको मालूम कराना होगा; इस ही व्यवहारसे तुम सदा प्रजा समूहको देखना। तुम कभी कार्य्यो-पघातक गूढ़ कार्य्य अर्थात् किसी पुरुषके न्यस्त विषयको राजकीय कहके ग्रहण न करना क्योंकि कार्य्य नष्टहोनेसे वह अधर्म्म अवश्य ही तुम्हें और मन्त्रियोंको पीड़ित करेगा और तुम्हारा राज्य समुद्रमें टूटी हुई नौका तथा बाजके समीपसे भागनेवाले पक्षीकी भांति तुम्हारे निकटसे दूसरी ओर गमन करेगा। हे पृथ्वीनाथ! जो राजा अधर्म्म आचरण करके पूर्वरीतिसे प्रजा-पालन नहीं करते, उनके हृदयमें भय उपस्थित होता है, और उनका स्वर्ग लोक नष्ट हुआ करता है। हे नरेन्द्र धर्म्ममूल राज्यमें जो राजा, सेवक, अथवा राजपुत्र धर्म्मासन पर नियुक्त होकर अधर्म्मके अनुसार प्रजा पालन करते हैं, वे सब अधिकृत कार्य्योंको पूर्ण न करनेवाले अर्थात् जो बिना परीक्षा किये ही कार्य्य करते हैं, वे राजाके अनुगामी पुरुष स्वयं अगाड़ी होके राजाके सहित नरकगामी हुआ करते हैं।

हे राजेन्द्र! बलवान पुरुषसे पराजित दीनकी भांति बहुभागी अनाथ मनुष्योंकी राजा सदा पालन करे। जब कि परीक्षा न करके कार्य्य करनेसे सेवकोंके सहित राजाकी अधोगति होती है; तब उन सब व्यवहारोंकी विधिव रीतिसे परीक्षा करनी होगी, और दोनोंके विरुद्धवाद अर्थात् विवादास्पद वस्तु अस्वामिक और स्वामी रहित होनेपर साक्षीयुक्त उत्तम प्रमाण होनेसे अपराधके अनुसार पापका दण्ड करना होगा; यदि धनी पुरुष पापी हो; तो

उसे धन लेके मुक्त करे और निर्धन पुरुष पापी हो, तो उसे कैद करे। राजा दुष्ट मनुष्योंको प्रहारसे शिक्षित करे और औरशिष्ट पुरुषोंको शान्त वचनसे पालन करे। जो मनुष्य राजाके वधकी इच्छा करनेवाले, घर जलानेवाले, चोर और वर्णसङ्कर करनेवाले हैं, उनका विचित्र रीतिसे अर्थात् अनेक प्रकारसे वध करे। शास्त्रके अनुसार स्थित भूपतिको विचित्र वधरूपी दण्डप्रयोग करनेसे उसमें उसे अधर्म न होगा वल्कि उससे शाश्वत धर्म्म ही होगा। जो मूर्ख राजा इच्छानुसार दण्ड प्रयोग करते हैं; वे इस लोकमें अयशके पात्र होके मरनेके अनन्तर नरक लोक प्राप्त-करते हैं। दूसरेके प्रवादमें अन्य पुरुषके ऊपर दण्ड प्रयोग न करे, शास्त्र और युक्तिके अवलम्बसे बन्धन तथा मुक्त करे। राजा किसी आपदमें भी दूतका कभी वध न करे, क्योंकि दूतके मारनेवाले राजा मन्त्रियोंके सहित नरकगामी हुआ करते हैं। क्षत्रधर्म्ममें रत जो राजा यथोक्त-वादी दूतका वध करते हैं, उसके पितर लोग भ्रूणहत्या पापके भागी हुआ करते हैं। जो पुरुष कुलीन, कुलयुक्त, वाग्मी, दक्ष, प्रियवचन कहनेवाला, यथोक्त वादी और स्मृतिमान हो, वही दूत होवे; और उसमें ये सातो गुण विद्यमान रहें और द्वारपाल, किला और नगर-रक्षकमें भी ये सातों गुण रहें। जिस पुरुषने धर्म्मशास्त्रके यथार्थ अर्थ, सन्धि विग्रहको विशेष रूपसे मालूम किया है और बुद्धिमान धैर्य्यशाली, लज्जाशील, रहस्य विषयोंको गोपन करनेवाला, कुलीन तथा पराक्रमसे युक्त है वही पुरुष ही प्रशंसनीय सेवक कहके गिना जाता है। और ऐसे ही गुणोंसे युक्त व्यूह यन्त्र तथा सब शस्त्रोंके तत्वको जाननेवाला, पराक्रमी वर्षा, सर्दी, गर्म्मी, वायु आदिको सहनेवाला तथा पररन्ध्रवित् पुरुष सेनापति होवे। हे राजेन्द्र! स्वयं दूसरेका विश्वासपात्र होवे और दूसरेका कभी विश्वास न करे। ऐसा ही क्यों पुत्रका भी विश्वास करना उत्तम नहीं है। हे पापरहित मैंने शास्त्रका यह यथार्थ तत्व तुम्हारे समीप वर्णन किया, शास्त्रमें राजाओंका अविश्वास परम गुह्य कहके वर्णित हुआ है।

८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजाओंको कैसे पुरमें वास करना उचित है, वे लोग पहिलेके बने हुए, वा अपनी बनाई हुई पुरीमें वास विस्तारके सहित कहिये।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! राजा लोग पुत्र जाति और बान्धवोंके सहित जिस स्थानमें वास करेंगे, वहांके व्यवहार और रक्षाका उपाय पूछना न्याय है; इससे तुम्हें जैसे किलेके विषयको विशेष रूपसे कहूंगा, उसे सुनके यत्नपूर्व्वक वैसे ही उपायका अनुष्ठान करना तुम्हें उचित है। हे राजन्! राजा लोग धन्व अर्थात् मरुभूमियुक्त किला, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग मृत्तिकादुर्ग और वनदुर्ग आदि यही छः प्रकारके किलेको अवलम्बन करके जिसमें सब सम्पत्ति प्रधान तथा बाहुल्यरूपसे सम्भव हो; वैसे ही सब पुर तैयार करावे। हे नरनाथ! जो पुर किलेसे युक्त धान्य और अस्त्रोंसे पूरित दृढ़ दीवार और परिखासे घिरा, हुआ, हाथी घोड़े तथा रथ समूहसे युक्त, विद्वान् शिल्पियोंसे अधिष्ठित धान्य आदि वस्तुओंसे परिपूरित, दक्ष-धर्म्मात्माओंसे प्रतिष्ठित बलवान मनुष्य, हाथी और घोड़ोंसे परिपूर्ण चौमरे तथा आचरणसे सुशोभित, प्रसिद्ध व्यवहारयुक्त प्रशान्त, अकुतोभय, सुन्दर प्रकाशयुक्त गीतवाद्यकी ध्वनिसे परिपूरित, बड़े गृहोंसे युक्त शूर और आढ्यजन सम्पन्न, वेदध्वनिसे अनुनादित, सामाजिक उत्सवसे युक्त, और सदा पूजित देवताओंसे अधिष्ठित, ऐसे पुरके बीच

वशमें रहनेवाले सेवक, बलसे युक्त राजा स्वयं निवास करे। राजा उसही पुरमें वास करके उस स्थानमें कोश, बल, मित्र और व्यवहारकी सदा वृद्धि करे और पुर तथा जनपद स्थित दोषोंको निवारण करे। भण्डार, अस्त्रालय, धान्य आदि संग्रह और मन्त्र तथा आयुधागारोंको यत्नपूर्व्वक बढ़ावे। काठ, लोहा, तुष, अङ्गार, देवदारु, काष्ठ, सींग, हड्डी, बांस, मज्जा, स्नेह, चर्व्वी, मधु, अनेक भांतिके औषध ग्रन, सर्ज्जरस अर्थात् धूप, धान्य, अस्त्र, बाण, चर्म्म, स्नायु, बेंत, मूञ्ज और वल्वज-बन्धन, कूएंके समीप जलाधार उद-पान, बहुतसे तालाव और चीरीवृक्ष; इन सब सामग्रियोंको सदा राजा निज पुरमें रक्षा करे। आचार्य्य, ऋत्विक, पुरोहित, महा धनुर्द्धारी योद्धा, ईंट आदिसे घर बननेवाले स्थपति, ज्योतिषी और चिकित्सक इन सबका यत्नपूर्व्वक सत्कार करे। बुद्धिमान, मेधावी, धर्म्मात्मा, दक्ष, शूर, बहुश्रुत, कुलीन और पराक्रम युक्त पुरुषोंको सब कार्य्योंमें नियुक्त करे। धार्म्मिक मनुष्योंकी पूजा करे, अधर्म्मियोंको दण्ड दे और यत्नपूर्व्वक सब वर्णोंको निज निज कर्म्ममें नियुक्त करे। बाह्य और अभ्यन्तर पौर तथा जनपदवा-सियोंसे जो कार्य्य करना हो, उसे पहिले दूतोंसे भली भांति मालूम करके तब कार्य्य प्रयोग करे। राजा स्वय दूत, मन्त्र, कोष और दण्ड इन सबकी विशेष करके आलोचना करे; क्योंकि राज्यमें येही सब प्रतिष्ठित हुआ करते हैं। राजा दूत- तसे पुर जनपदवासी उदासीन, शत्रु, और मित्र सबके अभिलषित विषयको मालूम करे। अनन्तर सदा भक्तोंका सेवक शत्रुओंको पराजित करनेवाला वह राजा प्रमादहीन होकर उन लोगोंके उस विषयका प्रतिकार करे। राजा सदा अनेक प्रकारके यज्ञ क्रम रहित दान और प्रजाकी रक्षा करे; परन्तु धर्म्म-बाधक कोई कार्य्य न करे। कृपण, अनाथ बूढ़े और विधवा स्त्रियोंकी वृत्ति; निज राज्यका पालन और पराए राष्ट्रका विचार रूपी योग क्षेम सदा सिद्ध करना चाहिये। राजा सदा आश्रम वासियोंको सत्कार सम्मान और आदरके सहित यथा समयमें अन्न, वस्त्र और पात्रदान करे। राजा यत्नपूर्व्वक तपस्वि-योंसे राज्यके सब कार्य्य और निज शरीरका वृत्तान्त कहे, तथा सदा उनके समीप नम्र होके निवास करे।

राजा सब वस्तुओंके त्यागनेवाले सत्कुलमें उत्पन्न हुए तथा बहुश्रुत तपस्वियोंको देखके शय्या, आसन, और भोजनसे उनकी पूजा करे, राजा समस्त आपदाओंमें तपस्वियोंका अवि-श्वास न करे; क्योंकि डाकू लोग भी तपस्वि-योंका सदा विश्वास किया करते हैं। राजा तपस्वियोंमें सब निधि स्थापित करे और उनके समीप बुद्धि ग्रहण करे; परन्तु बार बार उनकी सेवा न करे, तथा अत्यन्त पूजा न करे। निज राज्य, पर राष्ट्र, अटवी और सामन्त नगरोंमें अलग अलग तपस्वियोंको मित्र कर रखे और निज राज्यमें रहनेवाले तपस्वियोंकी भांति पर राज्य तथा अटवी स्थित तपस्वियोंका सत्कार और सम्मानके सहित धन आदि दान करे; क्योंकि राजा किसी दशामें तपस्वियोंके शर-णागत होनेसे वह व्रत करनेवाले तपस्वी लोग इच्छानुसार राजाको आश्रयदान किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! जैसे नगरमें राजाको स्वयं वास करना उचित है, उसके यही लक्षण और उद्देश्य मैंने संक्षेपमें तुम्हारे समीप वर्णन किया है।

८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! जिस प्रकार राज्यकी रक्षा और राष्ट्र संस्थापन करना होता है, उसे पूरी रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं, इससे भली भांति विस्तार करके यह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! राष्ट्ररक्षा और राष्ट्र संग्रह जिस प्रकारसे करना होता है, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त करके सुनो । राजा हर एक ग्राममें एक एक पुरुषोंको सबका स्वामी कर रखे, अनन्तर किसीको दश गांव, किसीको बीस, किसीको एक सौ और किसीको सहस्र गावोंको प्रभुता प्रदान करे । वह एक गांवका स्वामी गांवके दोष और गुणका विचारके दश गांवके स्वामीसे कहे और दश गांवका स्वामी उसे बीस गांवके स्वामीसे कहे । वह बीस गांवका स्वामी जनपदमें जिन जिन कार्य्योंको सिद्ध करे, वह सब उसे सौ ग्रामके स्वामीके निकट निवेदन करना होगा । ग्राममें जो सब खाने योग्य वस्तु उत्पन्न हो, एक गांवका स्वामी उन सब वस्तुओंका उपभोग करे और वही दश गांवके स्वामीको और दश गांवका स्वामी बीस गांवके स्वामीका भरण करे । हे भरतश्रेष्ठ ! जो ग्राम बहुत बड़ा उन्नत और जन समूहसे युक्त हो, सौ गांवका स्वामी सत्कारके सहित उसे ही भोगनेमें समर्थ होगा, परन्तु सौ गावोंका स्वामी जिस गांवको भोग करेगा, वह गांव उस राज्यके अनेक लोगोंके अधीन रहेगा । और सबसे अधिक सहस्र गावोंका स्वामी राष्ट्रीय लोगोंके साथ मिलके शाखा नगर और वहांके अन्न, सुवर्ण आदि सब भोगने योग्य वस्तुओंको भोगनेमें समर्थ होगा । उन लोगोंके युद्ध कार्य्य उपस्थित होनेपर कोई धर्म्म जाननेवाला आलस रहित मन्त्री उसे यथार्थ रीतिसे देखे और सब नगरोंमें एक एक जन सब अर्थोंके विचारने वाले मन्त्री उपस्थित होकर सब कार्य्योंको देखते रहें । जैसे महा घोर रूपी प्रबल ग्रह नक्षत्रोंके चिन्तक ऊंचे स्थानमें घूमते रहते हैं ; वैसे ही वे सब अर्थोंके जाननेवाले मन्त्री सब सभासदोंके ऊपर परिक्रमा करते हुए उन लोगोंके सब कार्य्योंको देखें ; और उनका कोई दूत राज्यमें सभासदोंके व्यवहारको गुप्त रीतिसे मालूम करे । वह मन्त्री राज्यमें स्थित पापी, हिंसक, परधन हरनेवाले, शठ, रक्षाधिकृत नामक मनुष्योंसे प्रजासमूहकी रक्षा करे । और उत्पत्ति, दान वृत्ति, तथा शिल्प कार्य्यको देखके शिल्पकार्य्य वा शिल्पियोंके ऊपर कर निश्चित करें । वह राज्यमें बेचना खरीदना, मार्ग, भक्त, परिच्छद और योगक्षेम देखके बनियोंके ऊपर कर लगावे । हे युधिष्ठिर ! ऐसा हो क्यों ! जिसमें प्रजा दुःखित न हो उसी भांति विचार करके प्रजाके ऊपर यथायोग्य कर स्थापित करे । हे राजन् ! फल अर्थात् धन धान्य और कर्म्म अर्थात् कृषि आदि कार्य्योंको पूरी रीतिसे देखके तब उस पर कर निश्चित करे, क्योंकि फल और कर्म्ममें किसीका स्वार्थ न रहनेसे वह कभी भी उसमें प्रवृत्त नहीं होता । जिससे राजा और कर्म्म करनेवाले दोनों ही कर्म्मभागी हो सकें, वैसा ही विचार करके राजा सदा कर स्थापित करे । और जिसमें अत्यन्त लोभके कारण आत्ममूल राज्य और परमूल क्रोध आदि कार्य्य नष्ट न हों, उसी भांति राजा लोभ त्यागके प्रजासमूहके समीप प्रिय मालूम होवे । राजाके अतिखादी अर्थात् बहुभक्षी कहके विख्यात होनेसे सब कोई उससे द्वेष किया करते हैं । राजा प्रजापुञ्जके विरुद्ध होनेसे किसी भांति कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता ; दूसरे अप्रिय राजा किसी भांति भी फल लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता । हे भारत ! दूसरे जैसे लोग बछड़ेको भूखा न रखके गऊ दुहते हैं, वैसे ही बुद्धिमान राजा राज्यको दुहे ; क्यों कि बछड़ा बलवान होने पर पीड़ा सह सकता है । हे युधिष्ठिर ! जैसे अधिक दुहनेसे बछड़ा कर्म्म करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त दोहन करनेसे राष्ट्र भी महत् कर्म्म नहीं कर सकता । जो राजा स्वयं कृपा करके राष्ट्रको सब भांतिसे

रक्षा करता है, वह बहुत समय तक जीवित रहके अनेक फल लाभ कर सकता है, आपद कालमें यदि प्रजा राजाकी सहायताके वास्ते धन दान न करे, तो राजा राज्यकी कोषभूत करके कोषको गृहके भीतर करे। पुर और जनपदके आश्रित, उपाश्रित वा थोड़ा धन होनेपर भी राजा उन लोगोंके ऊपर सामर्थ्यके अनुसार कृपा करे। वाह्य अर्थात् आटविक डाकुओंको राज्यसे प्रत्याख्यान करके मध्यम अर्थात् गांवके लोगोंके निकट सुखसे धन ग्रहण करे, ऐसा होनेसे सुखी वा दुःखी पुरुष उसके ऊपर क्रुद्ध न होंगे। और "राजाको धन लेनेकी अवश्यकता है,"—इसी भांति पहिले निज राज्यमें सूचना करके उसके अनन्तर इच्छानुसार ग्राममें प्रजा समूहको ऐसा कहके भय दिखावे कि दूसरेसे महत् भयरूपी एक आपदा उत्पन्न हुई है; बंशफलके आगमकी भांति वह आपद नाशकी मूल होगी। यद्यपि हमारा शत्रु अपने नाशके वास्ते ही डाकुओंके सङ्ग प्रबल होके इस राज्यको पीड़ित करनेकी अभिलाषा करता है, तोभी उपस्थित घोर आपद तथा प्रचण्ड भयसे मैं तुम लोगोंका परित्राण करूंगा, इहके तुम लोगोंसे धन ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं। उपस्थित भय नष्ट होनेसे ही तुम लोग मेरे समीपसे उस धनको फिर पाओगे; परन्तु शत्रु लोग बलपूर्व्वक इस राज्यसे जो धन हरण करेंगे, उसे फिर नहीं पाओगे इस समय यदि तुम लोग स्त्री-पुत्रोंके वास्ते सञ्चय करनेकी अभिलाषासे साधारणकी सहायताके वास्ते मुझे धन देनेमें विमुख होगे, तो शत्रुओंके निकट स्त्री पुत्रोंके पीछे तुम लोगोंका प्राण नाश होगा; और इस समय तुम लोग यदि मेरे सहकारी होकर हमारी सहायता करोगे, तो मैं इस राज्यको उपद्रवसे रक्षित करके पुत्रकी भांति तुम लोगोंके सङ्ग लेकर आनन्द अनुभव करूंगा। और सामर्थ्यके अनुसार तुम लोगोंकी सहायता करूंगा। जैसे भार होनेके समय गुरु-भार बहुतसे लोगोंके जरिये उठाया जाता है, वैसे ही मुझको तुम लोगोंके साथ इस आपदके समयमें भार उठाना पड़ेगा। देखो, कोई आपद उपस्थित होनेपर उस समय धनको अत्यन्त प्रिय समझना उचित नहीं है।

अनन्तर समयवित राजा जब इस भांति उपचारयुक्त विनीत तथा मधुर वचनसे प्रजा-समूहके समीप कर स्वरूप धन ग्रहण न कर सके, तब वह योग अर्थात् धन ग्रहण करनेकी उपाय अवलम्बन करके उसके अनुसार निज तेज तथा पदातिसमूहके जरिये प्रजाके निकटसे धनग्रहण करे। राजा दीवार और सेवकोंके वास्ते व्यय, युद्धके भय और योगक्षेम देखके वैश्योंके ऊपर कर लगावे। वनमें वास करनेवाले वैश्य राजाकी उपेक्षा होनेसे ही नष्ट होते हैं, इससे विशेष करके उनके विषयमें मृदुताचरण करना होगा। हे पार्थ! सदा वैश्योंको धीरज देना, पालन, दान, उत्तम अवस्था, संविभाग और उनके साथ प्रिय आचरण करना उचित है। हे भारत! वैश्योंको सदा फलवान करना योग्य है, क्योंकि वे ही कृषि और व्यवसायसे राष्ट्रकी वृद्धि किया करते हैं। इसहीसे बुद्धिमान मनुष्य वैश्योंके ऊपर प्रीति किया करते हैं और दयावान तथा सावधान होके उन लोगोंके ऊपर कोमल कर स्थापित करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण सर्व्वत्र ही वैश्योंके वास्ते मङ्गलाचरण सुलभ हुआ करता है और इसके समान उत्तम कार्य्य कुछ भी नहीं देखा जाता।

८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! राजा समर्थ होकर भी यदि कोषकी अभिलाष

करे, तो किस भांति उस विषयमें प्रवृत्त होवे, उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, धर्मशील राजा प्रजाका हितैषी होकर देश, काल, बुद्धि और बलके अनुसार प्रजाको शासन करे। अपनी और प्रजासमूहको जैसे सदा मङ्गलकामना की जाती है, वैसे ही राष्ट्रके सब कार्य्योंको भली भांति सिद्ध करना होगा। जैसे बछड़े माताके स्तनको न काटके केवल दूध दोहन करते और जैसे लोग मधुमक्खियोंको पीड़ित न करके मधु पान करते हैं, वैसे ही राजा राष्ट्रसे धन ग्रहण करे। जैसे बाघिन निज बच्चोंको दांतसे पकड़के उन्हें पीड़ित न करके हरण करती है, तथा जोक जैसे मृदुभावसे लोहू पीती है; राजा भी उसी भांति राज्य भोग करे। प्रजाको पालन करनेवाला राजा पहिले प्रजाके निकटसे थोड़ा थोड़ा कर वसूल करके बढ़ाते हुए दूसरे वर्षमें अधिक करके धीरे धीरे बढ़ावे। जैसे वत्सोंको अत्यन्त यत्नके सहित पाश ग्रहण कराके क्रमसे भार बढ़ाके दमन करना होता है, वैसे ही प्रजासमूहको भी दमन करे। और जैसे बछड़े सदा पाशमें बन्धके दुःखित होके प्राणत्याग करते हैं, वैसे ही प्रजा भी एकबारगी कर भारसे आक्रान्त होनेपर दुःखित होके प्राणत्याग करती है; इससे राजाको बछड़ेकी भांति अत्यन्त यत्नके सहित धीरे धीरे दमन करना होगा, ऐसा न करनेसे प्रजाकी रक्षा नहीं होगी। हर एक पुरुषोंमें जो कार्य्य सहज रूपसे प्रयोग नहीं होसकता, उसके वास्ते मुख्य पुरुषोंको शान्त करके इतर लोगोंको दमन करना होगा। तिसके अनन्तर राजा मुख्य पुरुषोंके जरिये उस कर भारको उठानेवाले प्रजा समूहमें परस्पर भेद कराके स्वयं उन्हें शान्त करते हुए अयत्नके सहित सुख भोग करे। अवस्थान वा असमयमें उन लोगोंके ऊपर कर भार अर्पण न करे; परन्तु समय और नियमके अनुसार शान्तवाक्यसे धीरे धीरे कर भार अर्पण करे। मैंने यह सब उपाय कहे, परन्तु माया मुझे विवक्षित नहीं है; देखिये वाजिगणोंको अनुपायसे दमन करनेसे वे अत्यन्त ही कोपित होजाते हैं। और राज्यके बीच मद्यशाला, तथा राज्यके उपघातक वेश्या कुटनी कुशीलव, कितव और दूसरे इस भांतिके जो मनुष्य निवास करें राजा उन सब लोगोंको शासन करे; क्यों कि उनके शासित न होनेसे उत्तम प्रजा अत्यन्त क्लेश पावेगी। किसी आपदके उपस्थित होने पर कोई किसीके समीप दिया हुआ धन तथा कर न मांगे; मनु पहिले प्राणियोंके वास्ते ऐसी ही व्यवस्था स्थापित कर गये हैं; इससे सब कोई उस व्यवस्थाके अनुगामी होवें; यदि इस समय उसमें अन्यथा होवे, तो ये सब लोक अवश्य ही नष्ट होंगे। हे नरनाथ! ऐसी जन श्रुति है, कि राजा ही सब प्राणियोंको शासन करनेवाला है; उससे जो राजा पापी पुरुषोंको शासन नहीं करता उसे उस पापका चौथा भाग भोग करना पड़ता है; तब जो पापी हों, उन्हें सदा शासन करना राजाको अवश्य उचित है। परन्तु जो राजा इन पापियोंको दमन नहीं करते उन्हें जैसे प्रजाके किये हुए धर्ममें चतुर्थ भाग भोगना पड़ता है वैसे ही उस पापका भी फल भोगना होगा। राजा भली भांति मद्य आदिकोंके स्थानको योग्य स्थानमें स्थित करे, नहीं तो स्वयं उसमें आसक्त होके ऐश्वर्य्यको नष्ट करना पड़ेगा; क्यों कि पुरुष कामासक्त होनेसे किसी कार्य्याकार्य्यमें नहीं रुक सकता अनायास ही सब कार्य्योंको कर सकता है; बल्कि मद्य, मांस, पर स्त्री और परधन हरनेमें लोगोंके समीप शास्त्र प्रदर्शित किया करता है। हे राजन्! जिन लोगोंको परिवित्त ग्रह नहीं है, आपदकालमें उन लोगोंके याचना करनेपर राजा उनके ऊपर कृपा करके धर्मपूर्व्वक उन्हें धन दान करे भयसे दान न करे। हे शास-

ष्ठिर ! तुम अपने राज्यमें याचक वा डाकुओंको कभी वास करने न देना; क्यों कि ये लोग प्राणि-योंकी भलाईकी इच्छा न करके केवल मात्र अनिष्ट आचरण किया करते हैं। जो प्राणि-योंके ऊपर कृपा करते और जो लोग प्रजाकी वढ़ती करते हैं, वेही पुरुष तुम्हारे राज्यमें निवास करें। प्राणियोंके नाशक पुरुष वास न करने पावें। हे महाराज ! जो अधिकारी पुरुष निर्दिष्ट करके अतिरिक्त धन वसूल करें, वे राजाके समीप दण्डनीय होवें; अनन्तर दूसरे अधिकारी पुरुष यथार्थ कर वसूल करनेके वास्ते उन लोगोंको फिर नियुक्त करें। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, और ऐसे ही दूसरे जो कुछ कर्म्म उपस्थित हों, उसे अनेक पुरुषोंसे सिद्ध कराना होगा; ऐसा न करनेसे कर्म्म नष्ट होगा। यदि मनुष्य कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य कार्य्यका अनुष्ठान करके चोर वा राजकीय लोगोंसे कुछ संशय युक्त हों, तो उसके वास्ते राजाको लोगोंके समीप निन्दित होना पड़ता है। इससे राजा भोजन पान और वस्त्रोंसे सदा धनवान पुरुषोंका सम्मान करे और उन लोगोंको मेरे सहित प्रजाके ऊपर कृपा करो ऐसा वचन कहे, हे राजन् ! धनवान पुरुष ही राज्यके महत अङ्ग और सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं, इसमें सन्देह नहीं। ज्ञानी शूर, धनी, स्वामी, धर्म्मात्मा, तपस्वी, सत्यवादी और बुद्धिमान मनुष्य ही रक्षा किया करते हैं। हे महाराज! इससे तुम सब जीवोंमें प्रीतियुक्त होके सत्य, सरलता, अक्रोध और अनृशंसताके सहित पालन करो। हे राजन् ! तुम सत्य और सरलताके सहारे मित्र कोष और बलसे युक्त होनेपर निश्चय ही दण्ड, कोष, मित्र और भूमि लाभ करनेमें समर्थ होगे।

८८ अध्याय समाप्त।

———

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! जिसका फल खाया जाता है, तुम्हारे राज्यमें स्थित वैसे वृक्षोंको कोई न काटने पावे, पण्डित लोग फल मूलको ही ब्राह्मणोंका धन और धर्म्म कहा करते हैं; और दूसरे लोग ब्राह्मणोंसे अतिरिक्त भोग किया करते हैं, इससे ब्राह्मणोंका भोग न होनेसे जिसमें दूसरे लोग किसी प्रकारसे ग्रहण न करें। हे नरनाथ ! यदि ब्राह्मण वृत्तिसे रहित होके अपने परित्राणके वास्ते दूसरे स्थानमें गमन करें, तो परिवारके सहित उसको वृत्ति कर देवे। यदि वह उससे भी निवृत्त न हो, तो ब्राह्मण सभा मण्डलीमें वह इस प्रकार निन्दनीय होंगे, कि इनके निवृत्त न होनेसे इस समय लोग किसकी मर्य्यादा करेंगे? हे कौन्तेय ! इसके अनन्तर यद्यपि कोई उसे कुछ न कहें और पूर्व्व वृत्तान्तको भूल जावें तो वह अवश्य ही निवृत्त होंगे। लोग उसे ऐसा वचन कहें कि, हे ब्राह्मण ! जो भोगकी इच्छा करके भोगके अभावमें राज्य परित्याग करेंगे उन्हें भोगसे और वृत्तिके वास्ते वृत्तिके अभावमें राज्य त्यागनेपर उसे जो वृत्तिके वास्ते निमन्त्रण करना होगा, उसमें हम लोग श्रद्धा नहीं करते। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि कर्म्मोंसे ही इस लोकमें प्राणि-योंकी जिविका निर्व्वाह होती है और वेद विद्या प्राणियोंको उर्द्धगामी किया करती है। इस संसारमें प्रवर्त्तमान उस वेदविद्याके विषयमें जो सब डाकू लोग विरुद्धता करते हैं; उनके नाश करनेके वास्ते ब्रह्माने क्षत्रिय जातिको उत्पन्न किया है। हे कुरुनन्दन ! इससे और होकर शत्रु जय, प्रजापालन, अनेक दक्षिणाके सहित यज्ञ और युद्ध करो। जो राजा प्रतिपा-लन करने योग्य प्राणियोंको सदा पालन करता है, वही राजसत्तम है; और जो उनकी रक्षा नहीं करते, उनसे कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। हे युधिष्ठिर ! राजा सदा लोक-रक्षाके

वास्ते युद्ध करे और उसमें सब मनुष्योंको नियुक्त करे ; इससे तुम आत्मीयसे दूसरे और पराएसे आत्मीय तथा पैरायेसे पराये और आत्मीयसे आत्मीयको सदा पालन करो । राजा सब भांतिसे अपनी रक्षा करतेहुए पृथ्वीकी रक्षा करे, क्यों कि पण्डित लोग आत्मरक्षाको ही मूल कहा करते है । मेरा छिद्र क्या है, कौन सा व्यसन होरहा है, अविनिपातित क्या है, कहांसे मुझे दोष आश्रय करता ,—इन सब विषयोंको राजा सदा विचारता रहे । गत दिवसमें जिस कार्य्यको किया है, प्रजा उसको दूसरी बार प्रशंसा करती है, वा नहीं ; मेरा यह कार्य्य यदि प्रजाको मालूम हुआ हो, तो वह पुनर्व्वार उसकी प्रशंसा करता है, वा नहीं ? जनपद और राज्यके बीच मेरा यश प्रजाके अभिलषित हुआ है, वा नहीं ? इन सब विषयोंके अनुसन्धान करनेके वास्ते आज्ञाकारी गुप्त दूतोंको पृथ्वीपर भेजे। और धर्म्म जाननेवाले, धैर्य्यवाले, तथा युद्धसे न भागनेवाले मनुष्योंके बीच जो लोग राजाको उपजीव्य करके नहीं रहते, वे लोग और कौन कौन सेवक तथा कौनसे मध्यस्थ पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करते है उसे भली भांति जाने । हे तात ! साधारणको एकबारगी अभिलषित होना अत्यन्त कठिन है ; क्यों कि सब प्राणियोंमें ही मित्र, शत्रु और मध्यस्थ विद्यमान हैं ।

युधिष्ठिर बोले, समान बल और तुल्य गुणशाली मनुष्योंमें कोई पुरुष किस कारणसे सबसे प्रबल होते, तथा वह पुरुष किस कारणसे उन लोगोंका भक्षक होता है ।

भीष्म बोले, जैसे क्रुद्ध विषधारी प्रबल सर्प निर्ब्बल सांपोंको भक्षण करते हैं, वैसे ही चलनेवाले न चलनेवालोंको और दांतवाले बिन दांतवालोंको भक्षण किया करते हैं । हे युधिष्ठिर ! इससे ये सब प्राणी भी शत्रुओंके निकट सदा सावधान रहें ; क्यों कि प्रमाद उपस्थित होनेपर ये लोग गिद्धकी भांति निपतित हुआ करते हैं । हे राजन् ! तुम्हारे राज्यमें थोड़े और अधिक मूल्यसे क्रय करनेवाले स्त्रियोंमें विश्राम शील और वणिक लोग कर भारसे पीड़ित होके व्याकुल तो नहीं होते जो राजाओंके वृहत् भारको उठाते और सब साधारण लोगोंका उद्धार करते हैं, वे कृषक लोग भारसे पीड़ित होके राज्यको परित्याग तो नहीं करते और तुम इस लोकमें देने योग्य भोग्य वस्तुओंसे देव, पितर, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पशु और पक्षियोंका पोषण करते हो न ? हे भारत ! यही तुम्हारे राष्ट्र व्यवहार और राज्य गुप्तिकी कथा कही है । हे पाण्डव ! यही अर्थ अवलम्बन करके फिर कहूंगा ।

८९ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! ब्रह्मवित्तम उतथ्यने युवनाश्व-पुत्र मान्धाताके ऊपर प्रसन्न हो कर उनसे अङ्गिरासम्बन्धीय जो सब क्षत्र धर्म्म कहा था, तथा जिस प्रकार उन्हें शासित किया था, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं ।

उतथ्य बोले, हे मान्धाता ! तुम यह निश्चय जान रक्खो, कि लोग धर्म्मके अनुष्ठान निबन्धनसे ही राजा हुआ करते हैं, कामानुष्ठानसे राजा नहीं हो सकते ; इससे राजा ही सब लोगोंकी रक्षा किया करता है । राजा यदि धर्म्म आचरण करे, तो देवत्व प्राप्त कर सकता है और यदि अधर्म्म आचरण करे, तो नरकगामी हुआ करता है । सब प्राणी धर्म्ममें स्थित रहते और धर्म्म राजामें निवास किया करता है । इससे जो राजा उस धर्म्मकी उत्तम रीतिसे रक्षा करते हैं, वे ही पृथ्वीके स्वामी होते हैं । जो राजा श्रीमान् और परम धर्म्मशील होता है, लोग उसे ही धर्म्म कहा करते हैं । और ऐसा कहा करते हैं, कि जिस राजामें धर्म्म नहीं

रहा, उसके घरसे देवता लोग भाग जाते हैं। जो लोग निज धर्म्ममें विद्यमान रहते हैं; उनको ही प्रयोजन सिद्धि होती दीख पड़ती है, इससे सब कोई उस मङ्गलमय धर्म्मके अनुगामी होवें। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनुष्योंके जब पाप निवारित नहीं होते तब उनके धर्म्मकी हानि होकर अधर्म्मकी बढ़ती होती है, और रात दिन भय हुआ करता है। हे तात! जब पाप निवारित नहीं होता, तब साधुओंमें भी "यह वस्तु मेरी और यह वस्तु मेरी नहीं है,"—इसी भांति धर्म्मयुक्त व्यवस्था नहीं रहती। मनुष्योंमें जब पापबल विद्यमान रहता है, तब उन लोगोंको भार्य्या, पशु, क्षेत्र और गृह नहीं दीखते। मनुष्योंके बिना पाप नष्ट हुए देवता लोग पूजा पितर लोग स्वधा और अतिथि लोग सत्कार ग्रहण नहीं करते। जब तक पाप दूर नहीं होता तब तक व्रत करनेवाले द्विजाति लोग देवताओंको नहीं जान सकते और ब्राह्मण लोग यज्ञ विस्तार करनेमें भी समर्थ नहीं होते। हे महाराज! जब तक पाप दूर नहीं होता तब तक मनुष्योंका मन छलोंकी तरह विह्वल हुआ करता है। ऋषि लोग दोनों लोकोंको अवलोकन करके "यह पुरुष ही धर्म्म पालक होगा" महाभूतमय राजाको उत्पन्न किया करते हैं, इस ही से उसमें धर्म्म विराजमान रहता है, उसे देवता लोग राजा कहा करते हैं और जिससे धर्म्म नष्ट होता है, उसे वृषल कहते हैं। जो राजा वृषरूपी भगवान धर्म्मका छेदन करता है, देवता लोग उसे ही वृषल कहा करते हैं; इससे धर्म्मकी विशेष रूपसे वृद्धि करे; धर्म्मकी बढ़ती होनेसे प्राणियोंकी भी सदा बढ़ती हुआ करती है; और धर्म्मकी हानि होनेसे प्राणी भी क्षीण हुआ करते हैं, इससे किसी भांति भी धर्म्मलोप न करे? हे पुरुषेन्द्र! जो प्राणियोंके धन प्राप्तिके वास्ते कृपायुक्त होता, तथा धारणाके कारण स्वयं प्राप्त होता है, उसे ही धर्म्म समझना चाहिये; वह अकार्य्योंकी सीमाका नाशक कहके वर्णित हुआ है। स्वयम्भू ब्रह्माने प्राणियोंकी बढ़तीके वास्ते ही धर्म्मको प्रकट किया है, इससे राजा प्रजाके ऊपर कृपा करके धर्म्मको प्रवर्त्तित करे। हे राजशार्दूल! धर्म्म ही श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है; इससे जो पुरुषश्रेष्ठ हितकारी मनुष्य धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन करते हैं, उन्हें ही राजा समझना चाहिये। हे भरतसत्तम! धर्म्म ही राजाओंके निमित्त अत्यन्त कल्याणदायक है; इससे तुम काम क्रोध त्यागके केवल धर्म्मका ही पालन करो। हे मान्धाता! ब्राह्मण धर्म्मकी योनि हैं, इससे उन ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करे और मत्सरता रहित होकर उनकी कामना पूरी करे उनके अहित आचरण करनेसे राजाओंको भय उपस्थित होता है, और मित्रोंकी हानि होकर शत्रुओंकी उत्पत्ति होती है। विरोचनपुत्र बलि सदा ब्राह्मणोंके साथ असूया करते थे, इसहीसे श्री देवी उनसे सन्तापित होके उन्हें परित्याग करके पाकशासन इन्द्रके समीप चली गई थीं; अनन्तर बलि श्रीको इन्द्रके समीप देखके अत्यन्त ही शोकित हुए थे। विभु मान्धाता! तुम असूया और अभिमानका ऐसा ही फल समझो देखो श्री तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध होके तुम्हें परित्याग न करे। ऐसा कहा गया है, कि श्रीका पुत्र दर्प अधर्म्मसे उत्पन्न हुआ है, तुम यह निश्चय जान रखो, कि अनेक देवता, असुर और राजऋषि लोग उससे ही नाशको प्राप्त हुआ करते हैं। उसे जय करनेसे ही पुरुष राजा होता और उसके समीप पराजित होनेसे ही दास हुआ करता है। हे मान्धाता! यदि तुम चिरजीवी होनेकी इच्छा करते हो, तो जैसे राजा अभिमानके सहित अधर्म्म की सेवा परित्याग करता है, तुम भी वैसा ही करो। मत्त, प्रमत्त, पाखण्डी और उन्मत्तोंके समीप न जावे, उनके

साथ परिचय तथा उनकी सेवा न करे। दण्डित सेवक, स्त्री, विषय और दुर्गम पहाड़, हाथी, घोड़े, तथा सांपोंके निकटसे निवृत्त होवे। जो कदापि इन सबमें सदा युक्त रहना पड़े, तो भी रात्रिके समय इनका सङ्ग परित्याग करे, और बहुसुष्ठिता, अभिमान, दम्भ और क्रोधको त्याग करे। हे राजेन्द्र! बिन जानी हुई स्त्री क्लीव, स्वैरिणी, पराई स्त्री और कन्यासे कभी मैथुन न करे। वर्णसङ्कर होनेसे कुलमें पापी, राक्षस, क्लीव, अङ्गहीन स्थूल जिह्वा और चित्तहीन पुरुष उत्पन्न हुआ करते हैं। राजाके प्रमादग्रस्त होनेसे ही ये सब उत्पन्न होते हैं; इससे राजा विशेष करके प्रजाके हितमें अनुरक्त रहे। क्षत्रियोंके प्रमत्त होनेसे महान् दोष उत्पन्न होता है और प्रजाकी वर्णसङ्कर करनेवाले सब अधर्म्मोंकी बढ़ती हुआ करती है। गर्म्मीके समयमें शर्दी होती, शीतकालमें शर्दी नहीं रहती और अत्यन्त वृष्टि अनावृष्टि और व्याधि प्रजा समूहको आक्रमण करती हैं। नक्षत्र और धूमकेतु आदि भयङ्कर ग्रह उदय होते तथा राज्य नाशके अनेक उत्पात दीख पड़ते हैं, जो राजा अपनी और प्रजाकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, उसकी प्रजाका नाश होता है; पीछे उसका भी नाश होजाता है। जब एक पुरुषके धनको दो मनुष्य मिलके ग्रहण करते और दो पुरुषोंका धन अनेक मनुष्य ग्रहण करते तथा कुमारी पूर्ण रीतिसे लुप्त होतीं हैं, उस समय पण्डित लोग राजाका ही दोष कहा करते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होके धर्म्म त्याग कर "यह धन मेरा है, यह दूसरेका नहीं है,"—इसी भांति आचरण करते हुए जन समाजमें निवास करता है, तब लोग वैसे राजाको दुष्ट कहा करते हैं।

९० अध्याय समाप्त।

उतथ्य बोले, जब बादलके समयपर बरसने और राजाके धर्म्मचारी होनेपर सम्पत्ति बढ़ती है, तब वह सम्पत्ति प्रजासमूहको सुखपूर्व्वक पालन करती है। जो धोबी वस्त्रके रङ्गको न छुड़ाके मैलमात्रको दूर करना नहीं जानता, जिस राजामें धर्म्म नहीं है, उसे वैसा ही समझे इसी भांति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके बीच जो शूद्र निज धर्म्मसे च्युत होकर अनेक कर्म्मोंमें रत रहता है, उसे रजकके समान समझे। शूद्रमें सेवा, वैश्यमें कृषि क्षत्रियोंमें दण्डनीति और ब्राह्मणोंमें ब्रह्मचर्य्य, तपस्या, मन्त्र और सत्य प्रतिष्ठित है। उसमेंसे जो क्षत्रिय धोबीके वस्त्र धोनेकी भांति शील-दोष बिलकुल दूर करना जानते हैं वेही सबके पिता और प्रजाके स्वामी होते हैं। हे भरतर्षभ! सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सब ही राजवृत्त हैं, इससे राजा ही युगरूपसे कहा जाता है। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, तब चारों वर्ण चारों आश्रम और चारों वेद मुग्ध हुआ करते हैं। जब राजा प्रमत्त होता है, तब गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आवहनीय ये तीनों अग्नि, ऋक, यजु और साम ये तीनों विद्या तथा दक्षिणा युक्त यज्ञ सब प्रमादग्रस्त हैं। राजा ही प्राणियोंका हर्त्ता और कर्त्ता है परन्तु जो राजा धर्म्मात्मा है वेही कर्त्ता और जो अधर्म्मी हैं वेही हर्त्ता कहाते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, तब उसके स्त्री, पुत्र, बान्धव और सुहृद लोग उस ही समय शोकग्रस्त हुआ करते हैं। राजाके अधर्म्मी होनेसे हाथी घोड़े, गऊ, ऊंट, खच्चर और गर्दभ आदि सब जन्तु ही अवसन्न हुआ करते है। हे मान्धाता! ब्रह्माने निर्ब्बल प्राणियोंकी रक्षाके वास्ते ही बलवानको उत्पन्न किया है; क्यों कि उससे ही निर्ब्बल प्राणिप्रतिष्ठित होते हैं। हे राजन्! राजाके अधर्म्मी होनेसे राजसेवक तथा राजवंशीय सब प्राणी शोक किया करते हैं। निर्ब्बल, मुनि और विषधर सर्पकी दृष्टिको मैं अत्यन्त ही असह्य बोध करता हूं; इससे तुम दुर्ब्बलको दुःखी न

करना । हे तात ! तुम निर्व्वल पुरुषोंको सदा अवमानित बोध करना, जिससे निर्व्वलोंके नेत्र तुम्हें बान्धवोंके सहित भस्म न करें ; क्यों कि जो पुरुष निर्व्वलोंके जरिये भस्म होता है, उसके कुलमें कुछ भी अङ्कुरित नहीं होता ; बल्कि समूलसे ही भस्म हो जाता है, इससे तुम निर्व्वलोंको कभी पीड़ित न करना । अत्यन्त बलवानसे भी बलहीन पुरुषश्रेष्ठ हुआ करता है ; क्यों कि बलवान पुरुष निर्व्वलके द्वारा भस्म होनेसे उसका कुछ भी बाकी नहीं रहता । यदि विमानित, घायल, वा आक्रुष्ट पुरुष किसी त्राणकर्त्ताको न प्राप्त कर सके, तो अमानुषिक दण्ड राजाकोही नष्ट करता है । हे तात ! तुम निज बलके सहारे विपक्षी होकर निर्व्वल पुरुषोंका भोग न करना, छिपी हुई अग्निकी भांति जिससे निर्व्वलोंके नेत्र तुम्हें भस्म न करें । मनुष्य यदि किसी पुरुषसे मिथ्या अभिशप्त होकर रोदन करता है, तब उसके नेत्रसे जो सब आंसू गिरता है, वह उसके मिथ्यावादके कारण वेही सब आंसू उसके पुत्र और पशुओंको नष्ट किया करते हैं । गऊ जैसे सदा फलदायक नहीं होती वैसे ही यदि पाप कर्म्म सदा फलित हो, तो पुत्रमें फलेगा ; पुत्रमें न फलित हो, तो पौत्र और दौहित्रमें फलित होता है । जिस स्थलमें निर्व्वल पुरुष बलवानसे पीड़ित होके किसीको अपना परित्राण करनेवाला नहीं पाता, उस स्थानमें दैवी महान् दण्ड पतित हुआ करता है । जनपदवासी सब लोग एकत्रित होकर ब्राह्मणोंकी भांति भिक्षा मांगें, तो उनका भिक्षुक रूप ही सदा राजाका नाश किया करता है । यदि जनपदके बीच राजाके बहुतसे राज पुरुष राज कार्य्यमें नियुक्त होकर नीतिके विरुद्ध कार्य्य करनेमें प्रवृत्त हों, तो राजाको बहुत ही पाप होता है । और वे लोग काम तथा अर्थके वशमें होकर अयुक्तिके अनुसार दरिद्रोंका भी धन हरण करें, तो ऐसा होनेसे राजाका एकबारगी नाश होता है । जैसे वृक्ष उत्पन्न होके बड़ा होने पर प्राणी लोग उसकी ही आशा करते हैं और उस वृक्षके कटने वा जलनेसे वह लोग आश्रय हीन होते हैं, वैसेही राजाके बढ़ने वा नष्ट होने पर प्रजा समूहकी वैसे ही दशा हुआ करती है । यदि राजपुरुष लोग राज्यमें राजाके गुण और मानस धर्म्मको वर्णन करके उत्तम धर्म्माचरण भी करें, तो उस ही समय उनका सुकृत नष्ट होजावे और यदि धर्म्मके भ्रमसे अधर्म्म आचरण करें, तो उससे दुष्कर्म्म नष्ट हुआ करता है । यदि राज्यके बीच पापी पुरुष राजाको विदित होकर साधुओंके समीप भ्रमण करें, तो ऐसा होनेसे कलियुग उस राजाका आश्रय किया करता है । परन्तु यदि राजा मूर्ख मनुष्योंको शासन करे, तो उसका राज्य बढ़ता है । जो राजा सेवकोंका यथोचित सम्मान करके युद्ध और विचार कार्य्योंमें नियुक्त करता है, उस राजाका राज्य विशेष रूपसे बढ़ता है और वह बहुत दिनोंतक समस्त पृथ्वी भोग किया करता है । राजा सब पुरुषोंके उत्तम वचनको सुनके तथा सुकृत कर्म्मोंको देखकर उन लोगोंका सम्मान करनेसे उत्तम धर्म्मलाभ करता है । यदि राजा यथा नियमसे विभाग करके भोजन करे, सेवकोंका अपमान न करे, और बलके अभिमानी पुरुषोंका दमन करे, ऐसा होनेसे वही राज्यका धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है । जब राजा काया, वाचा और कर्म्मसे सबका परित्राण करते हैं, पुत्रके विषयमें भी क्षमा नहीं करता, तब उसका वह कर्म्म ही धर्म्मरूपसे वर्णित हुआ करता है । राजा दुर्व्वल प्राणियोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करने पर, उन लोगोंका शील बल प्राप्त होता है, उससे राजाको परम धर्म्म होता है । जब राजा राज्यके डाकुओंको दमन और युद्धमें जय प्राप्त करता है, तब उसका जनसमाजमें

वही धर्म्म गाया जाता है। प्रिय पुरुषको पापाचरण करने पर भी यदि राजा उसके विषयमें क्षमा न करे, तो राजाका वही धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है। जब राजा शरणागत मनुष्योंको मर्य्यादा भेद न करके उन्हें पुत्र समान पालन करता है, तब राजाका वह परम धर्म्म कहके गाया जाता है। यदि राजा काम क्रोधका अनादर करके दक्षिणा युक्त यज्ञ करे, तो उससे परम धर्म्म होता है। यदि राजा कृपण, अनाथ और बूढ़े मनुष्योंके क्लेशयुक्त आंसूको पोंछके उन्हें हर्षित करे, तो उसके जरिये उसे बहुत धर्म्म होता है। जो राजा मित्रोंको ऊंचा, शत्रुओंको नीचा और साधुओंको सम्मानित करता है, वही धार्म्मिक कहाता है। जो राजा सत्यका पालन प्रीतिपूर्व्वक सदा भूमिदान अतिथि सेवा और सेवकोंका भरण पोषण करता है लोग वैसे राजाकोही धार्म्मिक कहा करते हैं। जिसमें निग्रह अनुग्रह दोनों ही प्रतिष्ठित हैं, वही राजा इस लोक और परलोकमें उत्तम फल भोग किया करते हैं।

हे मान्धाता! धार्म्मिक पुरुषोंकेवास्ते इन्द्रिय निग्रह ही अत्यन्त उत्तम कार्य्य है; क्योंकि वे लोग प्राण और इन्द्रिय संयम कर सके, तो ईश्वरत्व लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु इन्द्रिय संयम न कर सके तो अग्निकी भांति हुआ करते हैं। जैसे यम अर्थात् विरति सब प्राणियोंको जिस प्रकार स्थित करती है, वैसेही राजा सब प्रजाको यथारीतिसे स्थित कर रखे। हे पुरुषश्रेष्ठ! जब कि लोग सहस्र पुत्रवाले इन्द्रके साथ राजाको तुलना करते हैं, तब राजा जिसे धर्म्म रूपसे देखे, वही धर्म्म कहके गिना जावेगा, हे राजन्! तुम सदा प्रमाद रहित होकर क्षमा, बुद्धि, धृति, सहारे प्राणियोंका शक्ति जानके साधु और दुष्टोंको शिक्षा करो। सेना संग्रह करो, सबको दान दो, सबसे मीठे वचन कहो; पुर और जनपदवासियोंको यथा रीतिसे सुखपूर्व्वक पालन करो। हे राजन्! अपटु राजा कभी प्रजा-पालन करनेमें समर्थ नहीं होता; क्योंकि राज्यरूपी महत् भारको उठाना अत्यन्त ही कठिन है। जो राजा दण्डवित् बुद्धिमान और शूर हैं, वही राज्य रक्षा करनेमें समर्थ होता है, परन्तु दण्डज्ञानसे रहित क्लीव और बुद्धिरहित राजा उसको रक्षा करनेमें कभी समर्थ नहीं होता। तुम सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए भक्त, बहुश्रुत, दक्ष और अनुयाई सेवकोंके सहित तापसाश्रमियोंके बुद्धिको सब भांतिसे परीक्षा करना। यदि तुम इसी प्रकार सब प्राणियोंके परम धर्म्मको मालूम कर सको तो ऐसा होनेसे स्वदेश और विदेशमें कहीं भी तुम्हारा धर्म्म नष्ट न होगा। हे राजन्! इस ही कारण अर्थ और कामसे धर्म्म उत्तम है और धर्म्मात्मा मनुष्यही इस लोक तथा परलोकमें सुख भोग किया करते हैं। जो मनुष्य स्त्री पुत्रोंको त्याग सकते हैं, वे सबके समीप पूजित होते हैं। हे मान्धाता! सेना संग्रह, दान मधुर वचन, अप्रमाद और पवित्रता ये सब राजाओंके अत्यन्तही ऐश्वर्य्यकारी हैं; इससे इन सब विषयोंमें सदा सावधान रहना। राजा सावधान होके अपना और दूसरेके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, परन्तु दूसरे लोग राजाके छिद्रोंको न देखने पावें; क्यों कि आत्मछिद्रोंको छिपाना और परछिद्र देखना ही राजाओंका कर्त्तव्य कर्म्म हैं। हे महाराज! इन्द्र, यम, वरुण और राजर्षियोंकी ऐसा ही वृत्ति है, तुम भी यत्नवान होकर इसे पालन करो, हे भरत श्रेष्ठ! राजर्षि लोग जिस धर्म्मको सेवन करते है, तुम भी उस ही को सेवा करो। और शीघ्र ही दिव्य पथ अवलम्बन करो। हे भारत! महातेजस्वी देवर्षि, पितर और गन्धर्व्व लोग इस लोक तथा परलोकमें धर्म्मात्मा राजाके यशको गाया करते हैं।

भीष्म बोले, हे भरतवंश प्रवीर युधिष्ठिर ! मान्धाताने उतथ्यसे ऐसे ऐसे वचन सुनके शङ्का रहित चित्तसे उस ही भांति धर्म्माचरण किये थे, इसीसे अकेले ही पृथ्वी प्राप्त की। हे पृथ्वीनाथ ! तुम भी मान्धाताकी भांति वैसा ही धर्म्माचरण करनेसे इस लोकमें पृथ्वी पालन करके मरनेके अन्तमें स्वर्ग लोकका स्थान प्राप्त करोगे।

९१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! राजा धर्म्म मार्गमें निवास करनेका अभिलाषी होकर किस प्रकार धार्म्मिक होगा ? उसे मैं आपके समीप जाननेकी इच्छा करता हूं; इसे विस्तार करके कहिये।

भीष्म बोले, तत्वार्थदर्शी बुद्धिमान वामदेवने पृथ्वीपति वसुमनासे जो कथा कही थी, पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासका ही ऐसे स्थलमें प्रमाण दिया करते हैं; मैं भी तुमसे कहता हूं, सुनो। ज्ञानवान्, धृतिमान्, पवित्रतायुक्त पृथ्वीनाथ वसुमनाने महातपस्वी महर्षि वामदेवसे धर्म्म और अर्थयुक्त वचन पूछा, हे भगवन् ! जिस प्रकार धर्म्माचरण करनेसे धर्म्मच्युत न होके निज धर्म्ममें रह सके, आप मुझे उस हीका उपदेश करिये।

परम तपस्वी तेजस्वी वामदेव नहुषपुत्र ययातिकी भांति सुखसे बैठे हुए हेमवर्ण वसुमनासे बोले, महाराज ! आप केवल धर्म्मके अनुवर्त्ती होइये, धर्म्मसे उत्तम दूसरा कुछ भी नहीं है; राजा लोग एक मात्र धर्म्ममें स्थित होके ही पृथ्वी जय किया करते हैं। जो राजा अर्थसिद्धिसे धर्म्मको उत्तम समझकर निज बुद्धिको धर्म्म बढ़ानेमें ही प्रवर्त्तित करते हैं, वेही धर्म्मके जरिये विराजमान होते हैं। जो राजा अधर्म्मी होकर बलपूर्व्वक अधर्म्म आचारणमें प्रवृत्त होता है, वह शीघ्र ही धर्म्म अर्थसे रहित होता और धर्म्म अर्थ दोनों ही उससे अलग हो जाते हैं। जिसके मन्त्री लोग दुष्ट और पापी हैं, तथा जो स्वयं धर्म्मकी हानि करते हैं, वे शीघ्र ही परिवारके सहित दुःखित होकर लोगोंके निकट वध्य होते हैं। जो राजा अर्थानुष्ठानसे रहित कामाचारी और अपनी बड़ाई करनेवाला है, वह समस्त पृथ्वी प्राप्त करनेपर भी शीघ्र ही नष्ट होता है। परन्तु जो राजा कल्याणग्राही असूया रहित, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान होता हैं, वह सोतसे बढ़नेवाले समुद्रकी भांति बढ़ता है। जो राजा ऐसा समझता है। कि मैं धर्म्म अर्थ, काम, बुद्धि और मित्र किसीसे भी परिपूरित नहीं हूं, इन्हीं सबसे लोकयात्रा प्रतिष्ठित है; वह सब सुनके यश, कीर्त्ति, श्री और प्रजा लाभ कर सकता है। जो राजा धर्म्म अर्थका चिन्तक तथा धर्म्मका अनुगामी होकर इसी भांति अर्थ दृष्टि करना आरम्भ करता है, वह अवश्य ही विपुल अर्थ भोग कर सकता है। जो राजा कृपण, प्रीतिरहित और साहस प्रकृति युक्त होकर प्रजाके विषयमें यथार्थ दण्डविधान नहीं करता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है। जो बुद्धिहीन राजा जानके भी पापी पुरुषोंके विषयमें उपेक्षा करके उनकी ओर दृष्टि नहीं रखता, वह अकीर्त्तिसे युक्त होकर बारबार नरक भोग किया करता है। जो राजा दाता, अच्छ, वशवर्त्ती और सबका सम्मान करनेवाला होता है, उसे विपद उपस्थित होनेपर सब मनुष्य आत्मविपदकी भांति उसके उस विपदके नाश करनेकी इच्छा करते हैं। जिसके धर्म्म उपदेशक गुरु नहीं हैं और जो अर्थ लाभमें सुख परतन्त्र होकर दूसरे किसीको भी धर्म्म विषयको नहीं पूछते तथा वे सदा सुखभोग नहीं कर सकते और जिसके धर्म्म उपदेश करनेवाला मुख्य गुरु है, वह स्वयं धर्म्मकी आलोचना करता है और अर्थ

लाभमें धर्म्म-परतन्त्र होता है ; वही सदा सुख भोग कर सकता है ।

९२ अध्याय समाप्त ।

वामदेव बोले, जिस राज्यमें बलवान राजा निर्ब्बल पुरुषोंके ऊपर अधर्म्म आरोपित करता है, उसके वशवाले जो सब पुरुष उस ही वृत्तिको उपजीव्य किया करते हैं, तथा दूसरे जो सब मनुष्य उस पाप प्रवर्त्तक राजाके अनुगामी होते हैं, वह विनयरहित मनुष्योंसे युक्त राज्य शीघ्र ही विनष्ट होता है। राजा प्रकृतिस्थ अर्थात् स्वधर्म्मावलम्बी होनेपर वह जैसा व्यवहार करता है, साधारण मनुष्य भी उस ही व्यवहारके अनुगामी हुआ करते हैं। परन्तु राजा विषमस्थ अर्थात् अन्य धर्म्मावलम्बी होकर जैसा व्यवहार करेगा, स्वजन पुरुष उस व्यवहारके अनुगामी न होंगे। जिस राज्यमें साहस प्रकृति राजा शास्त्र लक्षणसे विपरीत कार्य्य करता है, उस राज्यमें वह उस ही समय नष्ट होता है। जो क्षत्रिय जित अर्थात् आपन्न और अजित अर्थात् स्वस्थ मनुष्योंके अत्यन्त आचारित वृत्तिके अनुवर्त्ती नहीं होते, वे क्षत्रियधर्म्मसे बाहिर हुआ करते हैं। जो क्षत्रिय अपकार करनेवाले द्वेषी राजाको युद्धभूमिमें पाके द्वेषके कारण उसका सम्मान नहीं करते, वह क्षत्र धर्म्मसे बाहिर होते हैं। जो राजा आपदकालमें सुख भोगनेमें समर्थ होके भी दुःख भोग करते हुए प्रजाकी आपदको निवारण करते हैं, वह प्रजासमूहके प्यारे होते हैं, राजलक्ष्मी वैसे राजाको कभी परित्याग नहीं करती। हे राजन्! जिसकी बुराई करे, दूसरी बार उसकी भलाई करे ; क्यों कि बुराई करनेवाला पुरुष फिर भलाई करनेपर थोड़ेही समयके बीच प्रिय हुआ करता है। मिथ्या वचन परित्याग करे, बिना कहे ही लोगोंका प्रिय कार्य्य करे; काम क्रोध और द्वेषके वशमें होकर कभी धर्म्म परित्याग न करे। कोई प्रश्न करे, तो उसे निठुर होके उत्तर न दे, कठोर वचन प्रयोग न करे, किसी कार्य्यमें शीघ्रता न करे किसीकी निन्दा न करे और शत्रुओंका संग्रह न करे। प्रिय होनेसे अत्यन्त हर्षित न होवे, अप्रिय होनेपर उसमें दुःखी न होवे और प्रजाके हितको स्मरण करते हुए अत्यन्त अर्थसे भी तृप्त न होवे। जो राजा गुणोंके अनुसार सेवकोंका सदा प्रियकार्य्य किया करता है, उसके सब कार्य्य सिद्ध होते और राजश्री उसे कभी परित्याग नहीं करती। राजा सदा स्थिरताके सहित विरोधियोंको निवृत्त और अनुकूल रहनेवाले भक्तोंका सत्कार करे। जो सेवक दृढ़ इन्द्रियोंसे युक्त, अत्यन्त अनुगत, पवित्रचित्तवाला अनुरक्त और सब कार्य्यमें समर्थ हो, उसे ही राजा महत् कर्म्ममें नियुक्त करे। जो सेवक ऐसे गुणोंसे युक्त हो और स्वामीके कार्य्योंमें सावधान होके उसे अनुरक्त कर सके, वैसे सेवकको ही राजा अर्थकार्य्यमें नियुक्त करे, जो राजा मूढ़ इन्द्रियपरायण, लोभी, अनार्य्योंके आचरित कर्म्मको करनेवाला, शठ, कपटता युक्त, हिंसक, नीचबुद्धि, मूर्ख, उदार कर्म्मोंको त्यागनेवाला, मद्यमें रत और जुआ, स्त्री तथा मृगयापरायण सेवकको महत् कार्य्योंमें नियुक्त करता है वह राजा श्रीभ्रष्ट हुआ करता है। जो राजा अपनी रक्षा करके प्रतिपालन करने योग्य सेवकोंकी रक्षा करता है, उसकी सब प्रजा बढ़ती है, और वह अवश्य ही विपुल ऐश्वर्य्य भोग किया करता है जो राजा गुप्त दूतोंके जरिये अधीनमें रहनेवाले राजाओंके सब कार्य्योंको मालूम करता है, वह सबसे मुख्य हुआ करता है। राजा बलवान पुरुषका अपकार करके "मैं दूर हूं" इस प्रकार धीरज पूर्व्वक उपेक्षा न करे, क्यों कि वे लोग बाज पक्षीकी भांति प्रमादयुक्त अपकारी राजाके समीप आके उपस्थित

होते हैं। दृढ़ मूल साधु राजा अपना बल मालूम करके निर्व्वल पुरुषोंके ऊपर चढ़ाई करे; परन्तु जो बलवान हैं, उनके ऊपर चढ़ाई न करे। धर्म्ममें तत्पर राजा पराक्रमसे पृथ्वी प्राप्त करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन और युद्धमें शत्रुओंका बध करे। इस लोकमें प्रजा पालन आदि कार्य्य करनेके अनन्तर स्वर्ग-हेतु निवन्धन अनामय अर्थात् कुशल जनक हुआ करता है; इससे राजा निजधर्म्ममें स्थित होके धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन करे। युद्धमें रक्षाधिकार अर्थात किले आदिकी दृढ़ता करनी, युद्ध, धर्म्मका अनुशासन, मन्त्र चिन्ता और प्रजाको सुख देना, इन पांच प्रकारके कार्य्योंसे पृथ्वी विशेष रूपसे वर्द्धित हुआ करती है। जो इन सबकी भली भांति रक्षा करते, वेही राजेन्द्र होते और वह सदा इस लोकमें वर्त्तमान रहके इस पृथ्वी-मण्डलको धारण किया करते हैं अकेले राजाके जरिये इन सब विषयोंका सिद्ध होना अत्यन्त ही कठिन है; इससे राजा किलेआदिके अधिष्ठाता मन्त्रियोंके ऊपर समस्त कार्य्यभार अर्पण करनेसे बहुत समयतक पृथ्वी भोग करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! जो पुरुष दाता, संविभक्त, कोमल-स्वभाव, पवित्र और अनुरक्त होता है, उसे ही लोग नृपति कहा करते हैं। जो निःश्रेयस विषय सुनके अपना मत परित्यागके उस निःश्रेयस ज्ञानको ही प्रतिपन्न करते हैं, लोग उसे ही नृप रूपसे मानते हैं। जो द्वेषके कारण अर्थकामी पुरुषोंके वचनको क्षमा न करके, उनके निकट विमनाकी भांति सदा प्रतिकूल वचन सुनते; और ऽजित् अर्थात आपन्न और आजत् तथा स्वस्थ पुरुषोंके अग्राम्य अर्थात् बुद्धिमान पुरुषोंके आचरित वृत्तिकी सदा सेवा नहीं करते, वे क्षत्र धर्म्मसे बहिस्कृत होते हैं। निग्रहीत सेवक, स्त्री, विषय, और दुर्गम, पर्व्वत, हाथी, घोड़े और सांप इन सबसे सदा निवृत्त होके आत्मरक्षा करे; परन्तु जो पुरुष इन सबमें सदा नियुक्त रहके आत्मरक्षा करता है, और मुख्य सेवकोंको परित्याग करके अत्यन्त हीन प्रकृतिवाले सेवकोंको प्रिय समझता है; वह पुरुष व्यसनमें फंसके कार्य्यका अन्त प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता। जो राजा द्वेषके कारण कल्याण गुणसे युक्त सज्जनोंके समीप निवास करने की इच्छा नहीं करता, वह अदृढ़ात्मा दृढ़ क्रोधयुक्त राजा मृत्युके निकट वास किया करता है; और गुणवान पुरुषोंको हृदयके अप्रिय होनेपर भी जो राजा उन्हें प्रिय वचनसे वशमें कर सकता है, वह सदा भूमण्डल पर यशस्वी होके निवास करता है। राजा असमयमें अर्थ प्रणयन न करे, अनिष्ट होने पर उससे कभी अत्यन्त सन्तापित न होवे, प्रिय कार्य्यसे बहुत हर्षित न होवे और शुभ कर्म्मोंमें सदा तत्पर रहे। कौन राजा अनुरक्त हैं, कौनसे भयके कारण अनुगत हैं और कौन निर्दोष है, इसे सदा विचारता रहे। राजा बलवान होकर भी निर्व्वलका कभी तनिक विश्वास न करे, क्योंकि वे लोग असावधानीरूपी अवसर पानेसे गिद्धकी भांति आ गिरते है। स्वामी प्रियवादी और सब गुणोंसे युक्त होने पर भी पापी सेवक उसका अपकार किया करते हैं, इससे वैसे मनुष्योंका कभी विश्वास न करे। नहुष पुत्र ययातिने इसी भांति राजोपनिषत् अर्थात् राजाओंकी रहस्य विद्या कही है; इससे जो इस रहस्य विद्याके अनुसार मनुष्य राज्यमें नियुक्त होते हैं, वेही महान् शत्रुओंका नाश कर सकते हैं।

९३ अध्याय समाप्त।

वामदेव बोले, हे नरनाथ! राजा बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त करे, युद्धसे जो विजय होती है, पण्डित लोग उसे निन्दित कहा करते हैं। मूल अत्यन्त दृढ़ न रहने पर राजा अप्राप्त वस्तुओंके वास्ते कभी इच्छा न करे; क्योंकि

निर्व्वल मूलवाले राजाको अप्राप्त-वस्तुका लाभ नहीं विहित होता। जिसका जनपद उन्नत सम्पत्ति युक्त, राजप्रिय, सन्तुष्ट और मन्त्रियोंसे सम्पन्न है, उस पृथ्वीपतिका ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। जिसकी सब सेना सन्तुष्ट, सान्त्वित दूसरेको बंचनामें निष्ठावान है, वह राजा ही थोड़ी सेनाके जरिये पृथ्वी जय कर सकता है। जिसके पुरवासी और जनपद वासी प्रजा दयालु, बलवान और धान्यवान है उस राजाको ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। हे राजन्! मेधावी राजा जब अपने प्रतापका समय सबसे अधिक समझे, तभी परभूमि और परधनकी लालसा करें; क्योंकि भोगोंमें उदयमान, सब प्राणियोंमें दयावान, शीघ्रता करनेवाले और आत्मरक्षामें समर्थ राजाका ही विषय वर्द्धित हुआ करता है। जो विद्यमान आत्मोय पुरुषोंके विषयमें सब भांतिसे मिथ्या आचरण करता है, वह परशुसे काटे हुए वनकी तरह आप ही नष्ट होता है। जो राजा आत्महिंसक नहीं है, शत्रु लोग भी उससे द्वेष नहीं करते, क्योंकि जो पुरुष क्रोधका नाश कर सकते हैं, कोई भी उनका द्वेषी नहीं होता। आर्य्य पुरुष जिन कर्म्मोंमें विद्वेष प्रकाश करें, विद्वान राजा उस कर्म्मको कभी भी न करे; और उन लोगोंके कल्याणदायक वचनको न टाले, जो राजा सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको सिद्ध करके अन्तमें सुख अनुभव करनेकी अभिलाषा करता है, वैसे राजाको दूसरा कोई भी अवज्ञा नहीं कर सकता। जो राजा मनुष्य राज्यमें इसी भांति व्यवहार करता है, वह दोनों लोकोंको जय करके विजय-पथमें प्रतिष्ठित होता है।

भीष्म बोले, राजा वसुमनाने महर्षि वामदेवका ऐसा वचन सुनके उसके अनुसार ही सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया था; तुम भी वैसा कर नेसे अवश्य ही दोनों लोकोंको जय कर सकोगे।

९४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि कोई क्षत्रिय युद्धमें दूसरे क्षत्रियको जीतनेकी इच्छा करे, तो वह विजय-विषयमें कैसा धर्म्म आचरण करे? यही मैं आपसे पूछता हूं; आप मुझसे यह वृत्तान्त विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, राजा सहाययुक्त वा बिन सहायकके ही अकस्मात दूसरेके राज्यमें आगमन करके प्रजा समूहसे ऐसा वचन कहे, कि मैं तुम लोगोंकी सर्व्वदा रक्षा करूंगा; इससे तुम लोग मुझे धर्म्मपूर्व्वक कर प्रदान करो, और मुझे राजा कहके मानो। ऐसा वचन सुनके यदि प्रजा समूह उस समागत राजाको राज्यमें वरण करे तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका कुशल होता है। परन्तु, हे नरनाथ! यदि वे लोग अक्षत्रिय होकर राजाके विषयमें किसी प्रकार विरुद्धाचरण करें तो ऐसा होने पर उन विकर्म्मस्थ प्रजा समूहको सब भांतिके उपायसे शासन करना उचित है। अपर अर्थात् होन क्षत्रिय भी दूसरोंमें उत्तम जांचनेके वास्ते श्रेष्ठ क्षत्रियको आत्मत्राणमें असमर्थ और शस्त्रहीन देखके शस्त्र ग्रहण किया करते हैं; इससे राजा निज शस्त्रबलसे विजित गावोंको आक्रमण करके उनके स्वामी होकर सुख पूर्व्वक निवास करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यदि कोई क्षत्रिय राजा युद्धके वास्ते दूसरे क्षत्रियके निकट उपस्थित होवे तो वह क्षत्रिय राजाके साथ किस प्रकार युद्ध करे। वह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, युद्धमें असावधान क्षत्रिय कवच रहित क्षत्रियके साथ युद्ध करे, क्यों कि एक पुरुष एक एकके साथ युद्ध करनेसे क्रमसे असमर्थ होके युद्ध परित्याग किया करता है। यदि राजा सावधान होके आगमन करे, तो सावधान होना चाहिये और यदि वह सेनाके सहित आगमन करे, तो सेना युक्त होके उसे आवाहन करे। और यदि राजा शठताके सहित युद्ध करे; तो शठता पूर्व्वक ही उसके साथ युद्ध करे

और धर्म्मयुद्ध करनेपर धर्म्मयुद्धके जरिये ही उसे निवारण करे। घुड़सवार होके रथीके निकट न जावे; रथपर चढ़के ही रथीके समीप जावे और व्यसनसे आर्त्त, डरे हुए और पराजित पुरुषोंके ऊपर प्रहार न करे। विषमें बुझे हुए बाण असत् पुरुषोंके ही आयुध हुआ करते हैं; कर्णी उन लोगोंका अस्त्र नहीं होता; इससे यथार्थ युद्ध करे, जिघांसु पुरुषके ऊपर क्रोध न करे। प्राणहीन, अनपत्य, जिसका शस्त्र टूट गया हो, विपदग्रस्त और वाहन रहित पुरुषोंके ऊपर अस्त्र न चलावे; बल्कि यदि वे अपने गृह वा अपने राज्यमें उपस्थित हों तो उनको चिकित्सा करावे। साधुओंके बीच यदि कोई साधु पुरुष भेदके कारण व्यसनमें फंसा हो, तो उसे चत न करके मुक्त करना होगा; यही राजाओंका सनातनधर्म्म है। इसही कारण स्वयम्भूपुत्र मनुने कहा है, कि साधुओंके साथ धर्म्मयुद्ध करना ही कर्त्तव्य है। साधुओंको सनातन धर्म्म अवलम्बन करना ही उचित है; कभी भी उसे नष्ट न करना चाहिये। जो धर्म्म-सङ्कर चत्रिय अधर्म्म आचरणसे जय लाभ करते हैं, वह शठजीवी, पापी राजा स्वयं नष्ट हुआ करते हैं; दुष्ट लोग ही ऐसा कर्म्म करते हैं; परन्तु साधु पुरुष उत्तम व्यवहारोंसे ही साधुओंको जय किया करते हैं; क्यों कि धर्म्मपूर्व्वक मरनेसे भी वह कल्याणकारी होता है; परन्तु पाप कर्म्मके जरिये जय होनेपर भी वह कल्याणकारी नहीं होता। हे राजन्! अधर्म्म आचरण करना उचित नहीं है; क्यों कि वह वज्र गिरनेकी भांति उसही समय फल प्रदान करता है, परन्तु वह फल शाखा और मूल पर्य्यन्त सब भस्म करके लोगोंके हस्तगत होता है। पापी पुरुष पाप कर्मोंसे अर्थ प्राप्त करके अत्यन्त तृप्त होता है और उससे वर्द्धित होकर उस पाप कर्म्ममें ही आसक्त रहता है। जो पापी पवित्र पुरुषोंकी उपहास करते हुए धर्म्मकी अविद्यमानता बोध करता है, वह धर्म्म विषयमें श्रद्धाहीन मनुष्य विनष्ट हुआ करता है; और स्वयं वरुण पाशमें बन्धके अपनेको अमरकी भांति समझता है; वायुसे परिपूरित बड़े चमड़ेकी भांति सत्कर्म्मसे निवृत्त रहता है; और अन्तमें नदीके किनारे रहनेवाले वृक्षकी भांति जड़ सहित नष्ट होता है, अनन्तर उस पापीके मरनेपर लोग उसे पत्थरसे फूटे हुए घड़ेकी भांति अभिनन्दन किया करते हैं, इससे राजा धर्म्मके जरिये विजय और कोष प्राप्त करनेकी अभिलाषा करे।

९५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा अधर्म्मके अनुसार जयकी इच्छा न करे; क्यों कि कोई भूपति भी अधर्म्मके अनुसार विजय लाभ करनेमें सम्मत नहीं हैं। हे भरत-श्रेष्ठ! अधर्म्मयुक्त विजय अनित्य है; उससे स्वर्ग प्राप्त नहीं होता; बल्कि वैसी विजय पृथ्वी और भूपति दोनोंको ही नष्ट किया करती है। इससे जो पुरुष युद्धमें कवचरहित होकर हाथ जोड़के 'मैं आपकी शरणमें हूं' ऐसा वचन कहके शस्त्र परित्याग करे राजा वैसे मनुष्यका वध न करे। जो पुरुष बलसे जीता जावे, राजा उसके साथ युद्ध न करके एकवर्ष पर्य्यन्त "मैं आपका दास हुआ" उसे ऐसी ही शिक्षा दे। सम्वत् बीतनेसे उस भांति शिक्षित होनेपर पुत्रके समान उसका पालन करना होगा। जो कन्या बलपूर्व्वक हरण की जावे; राजा उससे कहे कि तुम मुझे वा दूसरेको वरण करोगी? सम्वत् भरके बीच ऐसाही पूछे। अनन्तर यदि वह कन्या दूसरेकी अभिलाषिनी हो, तो उसे परित्याग करना होगा; और ऐसे ही कुलसे दास दासी आदि जो कुछ धन हरके लाया गया होवे, उसे भी फिर लौटाना होगा। वध्य अर्थात् तस्कर आदि दुष्टोंका जो

धन हरण किया जाता है, वह स्थायी नहीं होता; इससे उसे व्यय करना चाहिये और उनकी सब गौवें ब्राह्मणोंको दूध पीनेके वास्ते दी जावें, बैल बोझा ढोनेके वास्ते नियुक्त होवें; परन्तु वे लोग यदि शरणागत हों, तो उनके विषयमें क्षमा करनी होगी। राजा राजाके साथ ही युद्ध करे, उससे धर्म्म होता है; इससे दूसरे क्षत्रिय पुरुष राजाके सम्मुख होकर कभी शस्त्र न चलावें। दोनों ओरकी सेना इकट्ठी होनेपर यदि ब्राह्मण उसके मध्यवर्त्ती हो, तो उस समय दोनों ओरकी सेना शान्ति अवलम्बन करके युद्धसे निवृत्त होवें। जो ब्राह्मणको उल्लङ्घन करते हैं, वे सदा मर्य्यादा भेद किया करते हैं। अधिक कहांतक कहें, जो लोग इस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वेही अधम क्षत्रियोंमें गिने जाते हैं। जो क्षत्रियधर्म्मको लुप्त और मर्य्यादाको भेद करता है, वह पुरुष क्षत्रियसभामें अग्राह्य होता तथा क्षत्रियोंके बीच नहीं गिना जाता। विजयकी इच्छा करनेवाला राजा कभी उस वृत्तिका अनुवर्त्ती न होवे, क्यों कि धर्म्मसे प्राप्त हुई विजयसे बढ़के क्या कोई अधिक लाभ होसक्ता है। सहसा-नीचस्वभाववाले प्राणियोंको शीघ्र शान्तवाद और भोगदानसे प्रसन्न करना ही राजाओंकी परम नीति है; क्यों कि वे सब कठोर वचन कहके बलपूर्वक वशमें किये जानेपर अत्यन्त ही दुखित होके राजाके सब व्यसनोंकी परीक्षा करते हुए अपने राष्ट्रसे भागकर सब भांतिसे शत्रुओंकी उपासना किया करते हैं। हे राजन्! वे लोग असन्तुष्ट होनेपर सब प्रकारसे राजाके व्यसनके अभिलाषी होकर आपदकालमें राजाके शत्रुओंकी अनुकूलता करते हैं; इससे राजा किसी प्रकार भी शत्रुओंको छलसे न ठगे तथा उन्हें अत्यन्त क्रुद्ध न करे। क्यों कि वे लोग चाहे कितने ही उत्पन्न क्यों होवें; उससे उनका जीवन नष्ट नहीं होता; इस ही कारण राजा थोड़ेमें ही सन्तुष्ट होकर पवित्र जीवनको ही अत्यन्त मान करे। जिसका जनपद उन्नत, सम्पत्तियुक्त, राजप्रिय और सन्तुष्ट सेवक तथा मन्त्रीयुक्त होता है, वह राजा ही दृढ़मूल हुआ करता है। जो ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य और दूसरे पूजनीय श्रुतिसम्मत ब्राह्मणोंकी पूजा तथा उचित सम्मान किया करते हैं, वे जगत्में लोकवित कहके विख्यात होते हैं। महाराज! सुरपति इन्द्रने ऐसे ही व्यवहारोंसे पृथ्वीमण्डल प्राप्त किया है; इससे राजा लोग इन्हीं व्यवहारोंके अनुसार इन्द्रके विषयकी जय करनेकी इच्छा करते हैं। हे राजन्! राजा प्रतर्द्दनने महायुद्धमें प्रजा समूहके भूमिके अतिरिक्त समस्त धन तथा अन्न और औषधियोंको भी हरण किया था; और राजा दिवोदासने अग्निहोत्रके अग्निसे बची हुई हवि तथा भोजनीय सिद्धान्न हरण किया था, उस ही कारण वे लोग निन्दित हुए। हे भारत! राजा नाभागने श्रोतियार्थ और तापसार्थके अतिरिक्त दूसरे स्थानोंका सराजक राज्य दान किया था। हे युधिष्ठिर! धर्म्म जाननेवाले प्राचीन राजाओंमें जो सब उत्तम व्यवहार विद्यमान थे, वे सब मेरे अभिलषित हुए हैं। राजा दूसरी सब भांतिकी विद्याके जरिये विजयकी इच्छा करे; परन्तु माया और दम्भके जरिये अपने ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा न करे।

९६ अध्याय समाप्त।

युधिधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रधर्म्मसे बढ़के पापयुक्त धर्म्म दूसरा नहीं है; क्यों कि राजा युद्धमें पराजित होकर स्वयं भागते हुए सेनामें स्थित निर्दोषी महाजन वैश्योंको कालके ग्रासमें डालते हैं। हे विद्वन्! इससे राजा किन कर्म्मोंसे सब लोकोंको जय करे? इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं; इसे आप मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये।

भीष्म बोले, राजा लोग पापियोंके निग्रह, साधुओंके संग्रह, यज्ञ और दानसे ही पवित्र हुआ करते हैं। जो राजा विजयकी इच्छासे प्राणियोंको पीड़ित करते हैं; वे ही फिर विजय प्राप्त करके प्रजा समूहको वर्द्धित किया करते हैं। वे दान; यज्ञ और तपोबलसे बुराइयोंको दूर करते और प्राणियोंके ऊपर कृपा करते हैं; इस ही कारण उनका पुण्य विशेष रूपसे वर्द्धित हुआ करता है। जैसे खेतको परिष्कार करनेवाला कृषक खेतको साफ करनेके वास्ते तृण और धान्य दोनोंको काटता है, उससे धान्य नष्ट नहीं होता; बल्कि उससे खेत सब भांतिसे साफ होनेसे फिर उसमें धान्यकी अत्यन्त वृद्धि होती है। इसी भांति जो राजा तस्कर आदि वध्य पुरुषोंको वध करते हैं, उन तस्करोंके नष्ट होनेसे उनके प्रजाकी बार बार वृद्धि हुआ करती है। जब डाकू लोग प्रजाके धनको हरते और प्राण वध करते हुए उन्हें अनेक प्रकारके क्लेश देते हैं, उस समयमें जो राजा डाकुओंके दलसे उन प्रजापुञ्जकी रक्षा करता है; वैसा राजा ही प्रजा समूहका धनदाता और सुखदाता होके विराजमान होता है। अनन्तर वह अभय दक्षिणा-युक्त यज्ञ करके इस लोकमें अनेक भांतिके सुखको भोगता हुआ इन्द्र लोकके समान स्थानको प्राप्त करता है। शत्रु लोग ब्राह्मण वधके वास्ते उद्यत हुए हों, तो उस समय जो राजा युद्ध यज्ञमें गमन करके यूपस्वरूप निज शरीरको त्यागता है, वह अनन्त दक्षिणायुक्त यज्ञ रूपसे गणित होता है। और वह युद्धमें भयरहित होके शत्रुओंके ऊपर बाण चलावे, तो देवता लोग उससे बढ़के पृथ्वी पर कुछ भी कल्याण नहीं देखते। युद्ध-भूमिमें जितने बाण उसके देहके चमड़ेको बेधते हैं, उतने ही परिमाणसे वह सर्व्वकाम-प्रद और अक्षय लोकोंको इच्छानुसार भोगता रहता है; और युद्धमें उसके शरीरसे जो रुधिर बाहर होता है, उस रुधिर बहनेसे वह दुःखके जरिये सब पापोंसे मुक्त होता है। धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसा कहा करते हैं, कि जो क्षत्रिय बाणोंकी चोटसे पीड़ित होकर जिन दुःखोंको सहते हैं, उस ही दुःख भोगके जरिये उनको महत् तपस्या हुआ करती है। जैसे प्राणी बादलोंसे जलकी इच्छा करते हैं, वैसे ही भयशील सब धर्म्मात्मा पुरुष भी युद्धमें शूर पुरुषोंके पीछे रहके निज शरीर रक्षाकी अभिलाषा करते हैं। यदि शूर पुरुष क्षेमकालकी भांति भयके समय पिछाड़ी स्थित उन भयभीत मनुष्योंकी रक्षा करके उन लोगोंको किसी प्रकार युद्धकी ओर नहीं जाने देते, तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका वह पुण्य विद्यमान रहता है। हे राजन्! युद्धमें समान बलवाले पुरुषोंमें भी महत् अन्तर देखा जाता है, क्योंकि समस्त सेनाके इकट्ठी होनेपर जो पुरुष प्रचण्ड हो जाता है, उसके सम्मुख कोई भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। उस भयङ्कर युद्धमें शूर पुरुष ही स्वर्ग प्राप्तिके मार्गको अवलम्बन कर शत्रुओंके सम्मुख होकर निज शरीर त्याग करते हैं; परन्तु भीरु मनुष्य उस समय सहायको त्यागके भाग जाते हैं। यदि भीरु मनुष्य युद्धमें शूर पुरुषोंसे रक्षित होके उन्हें नमस्कार करें, तो उनका न्याय कार्य्य करना सिद्ध होता है; नहीं तो उन लोगोंको वह भय विद्यमान रहता है। हे तात! जो लोग सहायकोंको त्यागके अपने मङ्गलकी अभिलाष करके घरकी ओर भाग जाते हैं, तुम वैसे अधम पुरुषोंका संग्रह मत करो। जो सहायोंको परित्याग करके निज प्राण रक्षाकी अभिलाष करते हैं, इन्द्र आदि देवतालोग उसका कल्याण नहीं करते। इससे शूरवीर क्षत्रिय पुरुष वैसे मनुष्योंको काठ वा ढेलोंसे नष्ट करें अथवा कटाग्निसे जला देवें; वा पशु मारनेकी भांति मार डालें। शूरवीर क्षत्रियोंको क्लेद और मूत्र परि

त्याग कर रोदन करते हुए शय्यापर मरनेसे उन्हें अधर्म्म होता है। जो क्षत्रिय घाव रहित शरीरसे मृत्युको प्राप्त होता है, शास्त्र जाननेवाले पण्डित लोग उसके वैसे कार्य्यको प्रशंसा नहीं करते। हे तात! इससे क्षत्रियोंको घरमें मरना श्रेष्ठ नहीं है; क्यों कि शूरताभिमानी पुरुषोंका शरीर नष्ट होनेपर वह अत्यन्त अधर्म्म युक्त और निन्दनीय हुआ करता है। और मुझे यह दुःख हुआ है, मैं बहुत कष्ट पाता हूं, तथा मैं पापी हूं,—ऐसा बचन लोगोंके समीप प्रकाशित करते हुए मुख बनाकर मलिन और कीर्त्तिरहित होकर पुत्र, सेवक आदिमें शोचनीय हुआ करता है। शूरता रहित क्षत्रिय ही रोगसे पीड़ित होके आरोग्यताको इच्छा करता है, और आरोग्य न होनेपर बार बार मृत्युको अभिलाष किया करता है। परन्तु बलसे युक्त शूरताभिमानी वीर क्षत्रिय ऐसी मृत्युकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वे लोग स्वजनोंसे घिरकर युद्धमें संग्राम करके शाणित शस्त्रोंसे घायल होके मृत्युलाभ किया करते हैं, शूर पुरुष काम क्रोधसे युक्त होकर अत्यन्त युद्ध करते हुए शत्रुओंके बाणोंसे शरीर घायल होनेपर भी उसे पीड़ा नहीं समझते। वे शूर क्षत्रिय युद्धमें निज धर्म्मसे प्राप्त धनक लोकोंसे पूजित उत्तम मृत्युलाभ करके शत्रुओंको सलाकताको पाते है। जो शूर पुरुष प्राणको आशा छोड़के सब तरहके उपायके सहित युद्धमें सम्मुख स्थित होके पीठ नहीं दिखाते अर्थात् भागते नहीं; वे इन्द्रलोकमें बास करते हैं। और जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुओंमें घिरकर दीन भावसे युक्त नहीं होते, वे अक्षय लोक प्राप्त करते हैं।

९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! संग्राममें पीठ न दिखाके युद्ध करनेवाले शूर क्षत्रिय रणभूमिमें मरके किन लोकोंमें गमन करते हैं, वह मुझसे विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें पण्डित लोग अम्बरीष और इन्द्रके सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहासको दृष्टान्त रूपसे वर्णन किया करते हैं।

नाभागपुत्र उदार बुद्धिवाले अम्बरीष अत्यन्त दुर्लभ स्वर्ग लोकमें जाके देवलोकमें सब तेजोमय बिमानोंपर स्थित शत्रु-सचिवोंके ऊपरसे जानेवाले अपने सेनापति सुदेवकी समृद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित होके इन्द्रसे बोले, हे सुरनाथ! मैं समुद्रके सहित सब पृथ्वीको यथारीति शासित करके धर्म्मको अभिलाषसे शास्त्र विधिके अनुसार चातुर्व्वर्णधर्म्ममें प्रवृत्त हुआ हूं कठिन ब्रह्मचर्य्य और गुरु सेवासे धर्म्मपूर्व्वक सब वेद शास्त्रोंको पढ़ा है; खाने पीनेकी वस्तुसे अतिथियों स्वधा-मन्त्रोंसे पितरों, निज शाखामें वर्णित वेदाध्ययन और दाहासे ऋषियों और सब भांतिके उत्तम यज्ञोंसे देवताओंको सन्तुष्ट किया है; और क्षत्रधर्म्ममें स्थित होकर यथा रीति शास्त्रको ओर दृष्टि करके शत्रुओंको सेनाका जय किया है। हे देवराज! यह शान्तात्मा सुदेव पहिले मेरे सेनापति थे; इन्होंने मुख्य दक्षिणा युक्त यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न नहीं किया था; तब इन्होंने किस प्रकार मुझे अतिक्रम किया?

इन्द्र बोले हे तात! पहिले इस सुदेवने बहुतसे बड़े बड़े संग्राम यज्ञका विस्तार किया था; अब भी जो क्षत्रिय युद्ध करते हैं, उनका भी यह युद्ध यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। ऐसा निश्चय है, कि जो सब योद्धा सेनाके मुखमें प्राप्त होकर सावधान और दीक्षित होते हैं, वे युद्धयज्ञके अधिकारी हुआ करते हैं।

अम्बरीष बोले, हे इन्द्र! युद्ध-यज्ञमें हवि क्या है घृत और दक्षिणा क्या है? और ऋत्विक किसको कहते हैं, वह मुझसे कहिये।

इन्द्र बोले, उस यज्ञमें हाथी ही सब ऋत्विक घोड़े अध्वर्य्यु, दूसरेका मांस ही हवि और रुधिर घृतरूपसे वर्णित हुआ है। सियार गिद्ध ही काकोल और बाण ही इस यज्ञके सदस्य हैं; वेही यज्ञमें घृतशेष और हवि भोजन किया करते हैं। जलते हुए तेजधारवाले उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे प्रास, तोमर, तलवार, शक्ति और फरसे येही सब यज्ञ करनेवालेके स्रुवा हैं। वेगपूर्व्वक धनुषसे खींचे हुए दूसरेके शरीरका वेधनेवाले तीक्ष्ण बाण ही ऋज्, उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे और बड़े बाण ही उसके स्रुवा है, बाघके चमड़ेसे युक्त मियान और हाथी दांतके मूंठसे बने हुए हाथियोंके शरीरको विदारनेवाले खड्ग ही इस युद्ध-यज्ञमें रेखा खींचनेवाले खड्गाकार काष्ट हैं। शस्त्र छूटनेके समय अत्यन्त चोखे जलते और उत्तम पानी चढ़े हुए प्रास, शक्ति ऋष्टि और फरसोंका शब्द ही उस यज्ञको संख्या और युद्धके जरिये विस्तीर्ण पुरुषोंसे उत्पन्न हुई बहुत सी वस्तु अर्थात् युद्धकी हवि हुआ करती है। संग्राम करते समय शस्त्रोंके लगनेपर शरीरसे पृथ्वीपर जो रुधिर गिरता है, वह होमकार्य्यमें उस यज्ञ करनेवालेको सर्व्वकामप्रद; समृद्धियुक्त पूर्णाहुति हुआ करती है। काटो! बेधन करो,— ऐसे जो सब शब्द सेनाके बीच सुनाई देते हैं, यज्ञके सामगान करनेवाले यमलोकमें उसे सामरूपसे गाया करते हैं। उस यज्ञमें शत्रुओंकी सेना मुख हवि स्थापन करनेके पात्र और हाथी घोड़े आदि श्येनाचित् नाम अग्नि कहके वर्णित होते हैं। उस युद्धयज्ञमें सहस्र सेनाके मरनेपर जो सब कबन्ध उठते हैं वेही कबन्ध यज्ञ करनेवाले शूरके खदिरसे बने हुए आठ कोनेसे युक्त यूप रूपसे कहे जाते हैं। हे राजन्! हाथियोंके समूहको अङ्कुश देनेपर जो शब्द होता है, वही उस यज्ञके इड़ोपहूत मन्त्र और वषट्कार रूपी होता है। तलवाण और नगाड़ेके शब्द ही उस यज्ञमें त्रिसामा नाम उद्गाता हुआ करते हैं। हे राजन् युद्धमें ब्रह्मस्व हरण होनेपर जो क्षत्रिय प्रिय शरीरकी रक्षाकी माया त्यागके निज देहको यूप रूपसे छोड़ते हैं; वह अत्यन्त दक्षिणासे युक्त यज्ञ रूपसे विराजमान होते हैं। जो शूर स्वामीके हितके वास्ते सेनाके सम्मुख पराक्रम प्रकाशित करके भयके कारण युद्धसे निवृत्त नहीं होते, वे मेरे स्थानके समान स्थानमें वास किया करते हैं। जिसकी वेदी अर्थात् युद्ध यज्ञकी भूमि काले चमड़ोंसे युक्त तलवार और परिघ समान भुजाओंसे परिपूरित होती है, वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास करते हैं जिसके संग्राममें लोहू नदीके प्रवाह स्वरूप, भेरी मेढ़क और कछुवे, वीरोंकी हड्डियां कङ्कड़ समान मांसयुक्त रुधिर ही कीचड़, तलवार ता चमड़े प्लव, केश सिवार, कटे हुए रथ, हाथी और घोड़े पुल, पताकाध्वजा बेतसवृक्ष समान मरे हुए हाथी ग्राह, रुधिर ही जल, मरे हुए कुञ्जर महाग्राह, ऋष्टि और तलवार महानौका, गृद्ध, कङ्क, प्लवस्वरूप और वह नदी पार जानेवाले पुरुषोंसे दुःखसे तरने योग्य हैं, राक्षस समूहोंसे युक्त और भीरुओंको पापसागरमें बहाने वाली है। वह नदी उस संग्राम यज्ञका अवभृत-स्थान हुआ करता है। जिसके युद्धयज्ञमें भूमि शत्रुओंके सिर घोड़े और हाथियोंके गर्दनोंसे परिपूरित होती हैं, वह मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं। पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जिसके शत्रुसेनामुख पत्नीशाला, निज सेना मुख हवि स्थापनका पात्र, दक्षिण ओर स्थित सब योद्धा सदस्य और उत्तर ओर स्थित योद्धा लोग आग्नीध ऋत्विक होते हैं, उस शत्रुसेनारूपी भार्य्यासे युक्त यज्ञ करनेवाले पुरुषके वास्ते इन्द्रलोक आदि सब लोक निकटमें ही विद्यमान रहते हैं। व्यूहबद्ध दोनों सेनाके सम्मुखवर्त्ती शून्य प्रदेश ही युद्ध यज्ञ करनेवालेकी

त्याग कर रोदन करते हुए शय्यापर मरनेसे उन्हें अधर्म होता है। जो क्षत्रिय घाव रहित शरीरसे मृत्युको प्राप्त होता है, शास्त्र जाननेवाले पण्डित लोग उसके वैसे कार्य्यको प्रशंसा नहीं करते। हे तात! इससे क्षत्रियोंको घरमें मरना श्रेष्ठ नहीं है; क्यों कि शूरताभिमानी पुरुषोंका शस्त्र नष्ट होनेपर वह अत्यन्त अधर्म युक्त और निन्दनीय हुआ करता है। और मुझे यह दुःख हुआ है, मैं बहुत कष्ट पाता हूं, तथा मैं पापी हूं,—ऐसा वचन लोगोंके समीप प्रकाशित करते हुए मुख बनाकर मलिन और कीर्त्तिरहित होकर पुत्र, सेवक आदिमें शोचनीय हुआ करता है। शूरता रहित क्षत्रिय ही रोगसे पीड़ित होके आरोग्यताकी इच्छा करता है, और आरोग्य न होनेपर बार बार मृत्युकी अभिलाष किया करता है। परन्तु बलसे युक्त शूरताभिमानी वीर क्षत्रिय ऐसी मृत्युकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वे लोग स्वजनोंसे घिरकर युद्धमें संग्राम करके शाणित शस्त्रोंसे घायल होके मृत्युलाभ किया करते हैं, शूर पुरुष काम क्रोधसे युक्त होकर अत्यन्त युद्ध करते हुए शत्रुओंके बाणोंसे शरीर घायल होनेपर भी उसे पीड़ा नहीं समझते। वे शूर क्षत्रिय युद्धमें निज धर्मसे प्राप्त अनेक लोकोंसे पूजित उत्तम मृत्युलाभ करके शत्रुओंको सलाकताको पाते हैं। जो शूर पुरुष प्राणकी आशा छोड़के सब तरहके उपायके सहित युद्धमें सम्मुख स्थित होके पीठ नहीं दिखाते अर्थात् भागते नहीं; वे इन्द्रलोकमें वास करते हैं। और जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुओंमें घिरकर दीन भावसे युक्त नहीं होते, वे अक्षय लोक प्राप्त करते हैं।

९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! संग्राममें पीठ न दिखाके युद्ध करनेवाले शूर क्षत्रिय रणभूमिमें मरके किन लोकोंमें गमन करते हैं, वह मुझसे विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें पण्डित लोग अम्बरीष और इन्द्रके सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहासको दृष्टान्त रूपसे वर्णन किया करते हैं।

नाभागपुत्र उदार बुद्धिवाले अम्बरीष अत्यन्त दुर्लभ स्वर्ग लोकमें जाके देवलोकमें सब तेजोमय विमानोंपर स्थित शत्रु-सचिवोंके ऊपरसे जानेवाले अपने सेनापति सुदेवकी समृद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित होके इन्द्रसे बोले, हे सुरनाथ! मैं समुद्रके सहित सब पृथ्वीको यथारीति शासित करके धर्मको अभिलाषासे शास्त्र विधिके अनुसार चातुर्व्वर्णधर्ममें प्रवृत्त हुआ हूं कठिन ब्रह्मचर्य्य और गुरु सेवासे धर्मपूर्व्वक सब वेद शास्त्रोंको पढ़ा है; खाने पीनेकी वस्तुसे अतिथियों स्वधा-मन्त्रोंसे पितरों, निज शाखामें वर्णित वेदाध्ययन और होत्रासे ऋषियों और सब भांतिके उत्तम यज्ञोंसे देवताओंको सन्तुष्ट किया है; और क्षत्रधर्ममें स्थित होकर यथा रीति शास्त्रको ओर दृष्टि करके शत्रुओंकी सेनाका जय किया है। हे देवराज! यह शान्तात्मा सुदेव पहिले मेरे सेनापति थे; इन्होंने मुख्य दक्षिणा युक्त यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न नहीं किया था; तब इन्होंने किस प्रकार मुझे अतिक्रम किया?

इन्द्र बोले हे तात! पहिले इस सुदेवने बहुतसे बड़े बड़े संग्राम यज्ञका विस्तार किया था; अब भी जो क्षत्रिय युद्ध करते हैं, उनका भी यह युद्ध यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। ऐसा निश्चय है, कि जो सब योद्धा सेनाके मुखमें प्राप्त होकर सावधान और दीक्षित होते हैं, वे युद्धयज्ञके अधिकारी हुआ करते हैं।

अम्बरीष बोले, हे इन्द्र! युद्ध-यज्ञमें हवि क्या है घृत और दक्षिणा क्या है? और ऋत्विक किसको कहते हैं, वह मुझसे कहिये।

इन्द्र बोले, उस यज्ञमें हाथी ही सब ऋत्विक घोड़े अध्वर्य्यु, दूसरेका मांस ही हवि और रुधिर घृतरूपसे वर्णित हुआ है । सियार गिद्ध ही काकोल और बाण ही इस यज्ञके सदस्य हैं ; वेही यज्ञमें घृतशेष और हवि भोजन किया करते हैं । जलते हुए तेजधारवाले उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे प्रास, तोमर, तलवार, शक्ति और फरसे येही सब यज्ञ करनेवालेके स्रुवा हैं । वेगपूर्व्वक धनुषसे खींचे हुए दूसरेके शरी-रका वेधनेवाले तीक्ष्ण बाण ही ऋजु, उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे और बड़े बाण ही उसके स्रुवा है, बाघके चमड़ेसे युक्त मियान और हाथी दांतके मूंठसे बने हुए हाथियोंके शरी-रको विदारनेवाले खड्ग ही इस युद्ध-यज्ञमें रेखा खींचनेवाले खड्गाकार काष्ट है । शस्त्र छूटनेके समय अत्यन्त चोखे जलते और उत्तम पानी चढ़े हुए प्रास, शक्ति ऋष्टि और फरसोंका शब्द ही उस यज्ञकी संख्या और युद्धके जरिये विस्तीर्ण पुरुषोंसे उत्पन्न हुई बहुत सी वस्तु अर्थात् युद्धकी हवि हुआ करती है । संग्राम करते समय शस्त्रोंके लगनेपर शरीरसे पृथ्वीपर जो रुधिर गिरता है, वह होमकार्य्यमें उस यज्ञ करनेवालेको सर्व्वकामप्रद ; समृद्धियुक्त पूर्णा-हुति हुआ करती है । काटो ! बेधन करो,— ऐसे जो सब शब्द सेनाके बीच सुनाई देते हैं, यज्ञके सामगान करनेवाले यमलोकमें उसे सामरूपसे गाया करते हैं । उस यज्ञमें शत्रुओंके सेना मुख हवि स्थापन करनेके पात्र और हाथी घोड़े आदि श्येनाचित् नाम अग्नि कहके वर्णित होते हैं । उस युद्धयज्ञमें सहस्र सेनाके मरनेपर जो सब कबन्ध उठते हैं वेही कबन्ध यज्ञ करने-वाले शूरके खदिरसे बने हुए आठ कोनेसे युक्त यूप रूपसे कहे जाते हैं । हे राजन् ! हाथियोंके समूहको अङ्कुश देनेपर जो शब्द होता है, वही उस यज्ञके इड़ोपहूत मन्त्र और वषट्कार रूपी होता है ; तलत्राण और नगाड़ेके शब्द ही उस यज्ञमें त्रिसामा नाम कहाता हुआ करते हैं । हे राजन् युद्धमें ब्रह्मस्व हरण होनेपर जो क्षत्रिय प्रिय शरीरकी रक्षाकी आशा त्यागके निज देहको यूप रूपसे छोड़ते हैं ; वह अत्यन्त दक्षि-णासे युक्त यज्ञ रूपसे विराजमान होते हैं । जो शूर स्वामीके हितके वास्ते सेनाके सम्मुख पराक्रम प्रकाशित करके भयके कारण युद्धसे निवृत्त नहीं होते, वे मेरे स्थानके समान स्थानमें वास किया करते हैं । जिसकी वेदी अर्थात् युद्ध यज्ञकी भूमि काले चमड़ोंसे युक्त तलवार और परिघ समान भुजाओंसे परिपूरित होती है, वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास करते हैं जिसके संग्राममें लोहू नदीके प्रवाह स्वरूप, भेरी मेढ़क और कछुवे, वीरोंकी हड्डियां कङ्कड़ समान मांसयुक्त रुधिर ही कीचड़, तलवारके चमड़े प्लव, केश सिवार, कटे हुए रथ, हाथी और घोड़े पुल, पताकाध्वजा बेतसवृक्ष समान मरे हुए हाथी ग्राह, रुधिर ही जल, मरे हुए कुञ्जर महाग्राह, ऋष्टि और तलवार महा-नौका, गृद्ध, कङ्क, प्लवस्वरूप और वह नदी पार जानेवाले पुरुषोंसे दुःखसे तरने योग्य है, राक्षस समूहोंसे युक्त और भीरुओंको पापसा-गरमें बहाने वाली है । वह नदी उस संग्राम यज्ञका अवभृत-स्नान हुआ करता है । जिसके युद्धयज्ञमें भूमि शत्रुओंके सिर घोड़े और हाथियोंके गर्दनोंसे परिपूरित होती हैं, वह मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं । पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जिसके शत्रुसेनामुख पत्नीशाला, निज सेना मुख हवि स्थापनका पात्र, दक्षिण ओर स्थित सब योद्धा सदस्य और उत्तर ओर स्थित योद्धा लोग आग्नीध ऋत्विक होते हैं, उस शत्रुसेनारूपी भार्य्यासे युक्त यज्ञ करनेवाले पुरुषके वास्ते इन्द्रलोक आदि सब लोक निकटमें ही विद्य मान रहते हैं । व्यूहबद्ध दोनों सेनाके सम्मुख-वर्त्ती मुख्य प्रदेश ही युद्ध यज्ञ करनेवालेको

वेदी होती है; उसमें यजमान ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंको अग्निरूप कल्पना करके नित्ययज्ञके जरिये यज्ञ किया करते हैं। परन्तु जो शूर शत्रुओंसे पीड़ित हो भयके कारण भागता है, वह शूर पुरुष प्रतिष्ठारहित होकर नरकमें गमन करता है। जिनकी वेदी रुधिरके वेगसे युक्त और केश, मांस तथा हड्डियोंसे परिपूरित होती है, वे लोग परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो शूर पुरुष शत्रुके सेनापतिका वध करते उसकी सवारीपर चढ़ते हैं, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान और विष्णुके समान पराक्रमशाली वे शूर पुरुष सबके स्वामी हुआ करते हैं। जो युद्धमें सेनापति वा उसके पुत्रको सामान्य जीवकी भांति ग्रहण करके वहांपर सत्कार युक्त होते हैं; वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं। शूर पुरुषोंके युद्धमें मरनेपर उनके वास्ते कभी शोक न करे; क्योंकि युद्धमें मरनेपर शूर पुरुष अशोचनीय होकर स्वर्गलोकमें सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके वास्ते पिण्डदान, जलदान और अशौचकी विधि नहीं है, इससे कोई उनके वास्ते इन सब कर्मोंको करनेकी इच्छा न करे; युद्धमें मरनेपर पुरुष जिन लोकोंको प्राप्त करते हैं, वह मुझसे सुनो। जो पुरुष युद्धमें मरते हैं, सबसे उत्तम अप्सराओंकी एक हजार कन्या "ये हमारे पति होंगे।" ऐसा कहती हुई उनकी ओर शीघ्रताके सहित दौड़ती हैं। जो शूर युद्ध कर्मको सिद्ध करते हैं, उनके वास्ते वही तपस्या, पुण्य, सनातन धर्म और चारों आश्रमरूपी हुआ करता है। जो पुरुष संग्रामके समय मुखमें तृण, धारण, करके "मैं आपका हुआ," ऐसा वचन कहे, उसे और बूढ़े बालक स्त्री तथा पीछे रहनेवाले मनुष्योंका वध न करे। मैं जम्भ, वृत्र, बल, पाक, शतमाय, विरोचन, दुर्वार्य, नमुचि, नैकमाय, शम्बर, दैत्येय, विप्रचित्ति, सब दनुपुत्रों और प्रह्लादको युद्धमें मारके देवताओंका स्वामी हुआ हूं।—भीष्म बोले, योद्धा अम्बरीषने इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर उसे ग्रहण करके निज सिद्धि लाभ की थी।

९८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राजा प्रतर्द्दन और मिथिलापति जनक इन दोनोंने जिस प्रकारसे युद्ध किया था, शूर पुरुषोंके उत्साह विषयमें पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासको दृष्टान्तरूपसे वर्णन किया करते हैं। हे राजन्! संग्रामयज्ञमें दीक्षित मिथिलापति जनकने निज योद्धाओंको स्वर्ग और नरक दिखाते हुए उन लोगोंसे कहा था, हे योद्धा लोगो! तुम लोग युद्धमें भय रहित शूरपुरुषोंके इस प्रकाशमान लोकको देखो; यह स्थान गन्धर्वोंकी कन्याओंसे; घिरा हुआ सब कर्म सिद्ध करनेवाला और अक्षय है। और युद्धसे भागनेवाले पुरुषोंके वास्ते यह नरक उपस्थित है; इसमें पतित होनेपर सदा अयश हुआ करता है, इससे तुम लोग संन्यास बुद्धि अवलम्बन करके शत्रुओंको जीतो; अप्रतिष्ठित नरकके वशवर्ती न बनो। हे शत्रुओंके जीतनेवाले! योद्धाओंने राजा जनकका ऐसा वचन सुनके युद्धमें उन्हें हर्षित, करके शत्रुओंको जीता था। इससे ऊंचे चित्तवाले शूरवीर मनुष्योंको युद्धमें सदा अगाड़ी स्थित रहना अवश्य उचित है। गजसेनाके बीच रथी, रथियोंके बीच घुड़सवार और घुड़सवारोंके बीच पैदल सेना स्थापित करनी उचित है। युधिष्ठिर! जो राजा इस प्रकार व्यूह बनाते हैं, वे शत्रुओंको सदा जय किया करते हैं। अत्यन्त ऊंचे चित्तवाले शूर पुरुष समुद्रको क्षोभित करनेवाले मकर घड़ियालकी भांति अच्छी प्रकार युद्ध करते हुए शत्रुसेनाको क्षोभित करके स्वर्ग गति लाभ करते हैं। विपद्ग्रस्त योद्धाओंको इकट्ठे कर यथा रीति

स्थापित करके उन्हें हर्षित करे, जिनभूमिकी रक्षा करे, और जो लोग लौटनेके भयसे युद्धसे भागें, अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीछा न करे। हे राजन्! जीनेकी आशा त्यागके लौटे हुए शूर पुरुषोंका वेग अत्यन्त असह्य होता है, इससे उन लोगोंका बहुत पीछा करना उचित नहीं। शूर पुरुष अत्यन्त भागनेवाले पुरुषोंके ऊपर शस्त्र चलानेकी इच्छा नहीं करते; इससे अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीछा न करे अचर चरके, बिन दांतवालोंके, जल प्यासे लोगोंके और कादर पुरुष शूर पुरुषोंके अन्न हुआ करते हैं। डरपोक पुरुष पीठ, उदर, हाथ और पांवसे समान होनेपर भी पराजित हुआ करते हैं; इससे भयसे आरत पुरुष पृथ्वीमें गिरके हाथ जोड़कर शूर पुरुषोंकी उपासना करें। शूर पुरुषोंकी भुजासे ये लोग सदा पुत्रकी भांति रक्षित हुआ करते हैं, इससे सब अवस्थाओंमें ही शूर लोग सम्मान भाजन हुआ करते हैं। तीनों लोकोंके बीच पराक्रमसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है; क्योंकि शूर पुरुष सबको ही पालन किया करते हैं, और शूर पुरुषोंसे ही सब प्रतिष्ठित रहता है।

९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! विजयकी इच्छा करनेवाला अत्यन्त धर्म पीड़न करके भी भयभीत सेनाके सब पुरुषोंको राज भय दिखाके किस भांति रणभूमिकी ओर भेजे? यह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, क्षत्रधर्म, सत्य निश्चय, शिष्टाचार और राजभय प्रदर्शनजनित प्रवृत्त इन चार कारणोंसे युद्धधर्म स्थिर हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! मैं तुमसे सदा फल देनेवाले उपाय धर्म सब फिर कहूंगा; डाकूलोग धर्म और अर्थके बाधक हुआ करते हैं, उनके नाश और सब कार्य्योंकी उत्तम सिद्धिके वास्ते इस समय मैं तुमसे शास्त्रोक्त उपाय कहता हूं, सुनो हे भारत! राजा लोग सरल और कुटिल दोनों ही बुद्धि मालूम करें; परन्तु कुटिल बुद्धि मालूम करके उसका सेवन न करें, क्योंकि कुटिल बुद्धि आगत विषयोंका बाधक हुआ करती है। शत्रु लोग भेदके जरिये राजाके निकट उपस्थित होने पर जैसे राजा उन लोगोंको दण्ड देता है, वैसे ही उन दुष्टोंको भी दण्ड दे। हे पार्थ! हाथियोंके शरीरको ढांपनेके वास्ते गज, बैल और बकरेके चमड़े; शल्य, कांटे, लोह, तनत्राण, चवंर, पानी चढ़े और चोखे शस्त्र, पीतल और लोहेके कवच, अनेक रङ्गोंसे रङ्गी हुई ध्वजा पताका, तेजधारवाली ऋष्टि, तोमर, तलवार, फरशे और ढाल इन सब सामग्रियोंको युद्धके वास्ते संग्रह कर रखे। शस्त्रों पर पानी चढ़ाना, और योद्धाओंको युद्धमें दृढ़ करना होगा. हे भारत! चैत और अगहनका महीना ही सेनाकी यात्राका उत्तम समय है; इससे जब पृथ्वी कीचड़ और शस्योंसे रहित तथा निर्मल हुआ करती है, और समय बहुत शीत तथा अत्यन्त उष्ण नहीं रहता तभी शत्रुओंको व्यसनमें फंसा देखके उनकी ओर सेना भेजे। क्योंकि शत्रुओंको निवारण करनेके विषयमें इसी भांति सेनाका नियोग ही उत्तम हुआ करता है। जल और तृणयुक्त समतल मार्ग ही सुगम होता है, इससे मार्गको जाननेवाले वनचारी दूतोंके जरिये उसे भलीभांति बारम्बार मालूम करें। मृगसमूहकी भांति जङ्गलके मार्गसे गमन करना कठिन है, इससे विजयकी इच्छा करनेवाले राजा लोग सेनाको पहिले कहे हुए मार्गसे भेजा करते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए सामर्थ्यवान पुरुष सेनाके अगाड़ी रहें और टिकनेका स्थान जल दुर्गसे घिरा हुआ एक मार्गवाला होवे, ऐसा होनेसे समीप स्थित

शत्रु लोग किसी प्रकार भी उसे आक्रमण नहीं कर सकेंगे। जिस निवास स्थानके समीपवाली भूमिमें अवकाश रहे और उसके निकट वन हो, उस स्थानको ही राजा अधिक गुण युक्त समझे; इससे निज सेनाके निकटमें रहनेवाले वैसे स्थानमें अनेक गुणोंसे युक्त युद्ध जाननेवाले पुरुषोंको स्थापित करे। निज वनके समीप ऊपर कहे हुए पुरुषोंका स्थित होना पैदल सेनाका उतरना और संगोपन इन सब कार्य्योंके ही शत्रुओंको पराजित करनेके परम उपाय जानना चाहिये। इस ही रीतिके अनुसार योद्धा लोग सप्तर्षियोंको आगे करके पर्व्वतकी भांति अचल भावसे युद्ध करने पर दुर्ज्जय शत्रुओंको जय करनेमें समर्थ होंगे।

हे युधिष्ठिर! जिस दिशामें वायु, सूर्य्य और शुक्र रहे, उस ही ओर युद्ध करनेसे जय होती है; परन्तु ये सब यदि एक ओर रहें, तो पूर्व्वोपरके अनुसार श्रेष्ठ हुआ करते हैं। युद्ध जाननेवाले पुरुष कीचड़हीन जलरहित अमर्य्याद अर्थात् पुल और प्रकार आदि सीमारहित तथा ढेलेसे रहित समतल भूमिकी प्रशंसा किया करते हैं। हे भारत! रणभूमि कीचड़ और गड्ढेसे रहित तथा हाथी और योद्धाओंके वास्ते भूमि छोटे वृक्षों महाकक्ष और जलसे युक्त होने पर प्रशंसनीय होती है। पैदल सेनाके निवासकी जमीन बहुतेरे वृक्षोंसे घिरी हुई महाकक्षयुक्त, बांस और बेतोंसे परिपूरित तथा पहाड़ और उपवनसे युक्त होनेसे प्रशंसनीय हुआ करती है। हे राजन्! वर्षारहित दिनोंमें अनेक पैदल, रथ और घोड़ोंसे युक्त सेना दृढ़ और प्रशंसनीय हुआ करती है; प्रावृट् ऋतुमें अनेक हाथी और पैदलयुक्त सेना प्रशंसित होती है; इससे राजा ये ही सब गुण और देश कालका विचार करके सेना प्रयोग करे। जो राजा इसी भांति विचार करके तिथि और नक्षत्रमें शुभ आशीर्व्वादसे युक्त होकर पूरी रीतिसे सेना नियोग करता है, वह सदा जय लाभ किया करता है। मोक्षमार्ग अवलम्बन करनेवाले, भागने, चलने खाने, और पीनेवालों तथा सोते, प्यासे और विक्षिप्त पुरुषोंके ऊपर प्रहार न करे। जो अत्यन्त क्षिप्त, व्यतिक्षिप्त, निहत, प्रतनूकृत अविश्रुत, कृतारम्भ सुरङ्ग आदि गुप्त उपाय जाननेवाले, प्रतापित तृण आदि लानेके वास्ते बाहिर होनेवाले, निज गृह राजद्वार वा अमात्य द्वारके अनुवर्त्ती इत्यादि इन सबके स्वामी हैं, उनका वध न करे। जो दूसरेकी सेनाको भेदकर अपनी सेना स्थापित करते हैं, उन्हें अपने समान खाने पीनेकी वस्तु प्रदान करे और उनका दूना वेतन कर देवे। जो लोग दशके स्वामी हैं, उन्हें, एक सौके स्वामीको सहस्राधिपति करके सावधानीके सहित उनकी रक्षा करे। मुख्य सेनाको इकट्ठी करके सब पुरुषोंसे कहना चाहिये, कि तुम लोग शपथ करके मेरे समीप यह स्वीकार करो, कि हम सब इकट्ठे होकर विजयके वास्ते युद्धमें प्रवृत्त होंगे, आपसमें कोई किसीको परित्याग करके न भागेंगे। जो युद्ध आरम्भ करके मुख्य योद्धाओंको शत्रुओंसे नष्ट करावें, और जो लोग डरपोक हों, वे इसी समय स्वयं निवृत्त होवें। जो लोग शपथ पूर्व्वक ऐसा कार्य्य स्वीकार करें, वे लोग युद्धमें सेनाके आने वा युद्ध बन्द होने पर अपनी ओरके मुख्य सैनिक पुरुषोंका वध न करें, बल्कि वे लोग अपनी तथा अपनी ओरकी सेनाके पुरुषोंकी रक्षा करके शत्रु पक्षीय सेनाका वध करें। और जो पुरुष संग्रामसे भागता है, उसका अर्थनाश वध और अकीर्त्ति होती है और वह लोगोंके निकट कठोर और निन्दित वचन सुना करता है; इससे हमारे शत्रुपक्षीय प्रतिध्वस्त दांत-ओष्ठसे युक्त शस्त्ररहित शत्रुओंके जरिये घिरे पुरुषों होका सदा अर्थनाश आदि होवे। जो सब पुरुष

युद्धसे भागते हैं, वे नीच मनुष्योंमें गिने जाते हैं, बल्कि वैसे पुरुष समूहकी वृद्धि मात्रके वास्ते हैं, इस लोक और परलोकमें वे लोग सुखभागी नहीं होते। हे तात! विजई शत्रु लोगोंके हर्षयुक्त चित्त और प्रशंसा वादके सहित मण्ड-लाकार गतिसे भागनेवाले पुरुषोंकी ओर दौड़ने पर वह अत्यन्त ही असह्य होजाता है; ऐसा ही क्यों! युद्धमें शत्रुओंके जरिये जिसका यश नष्ट होता है, मैं मृत्युको भी उससे अधिक असह्य और दुःखदायक नहीं समझता इससे जयको ही धर्म्म और सब तरहके सुखका मूल जानना चाहिये, क्योंकि जय न होने पर शूर पुरुष भी कादरोंकी तरह परम ग्लानिसे युक्त होते हैं। 'मैं स्वर्गके कामनासे युद्धमें जीनेकी आशा त्यागके विजयी वा मरके महत् गति लाभ करूंगा'—ऐसी ही शपथ करके जो वीर पुरुष जीनेकी आशा त्याग कर युद्धमें शत्रु-सेनाका नाश करते हैं, वेही लोग भय-रहित होके विख्यात हुआ करते हैं। हे राजन्! शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके वास्ते ढाल तलवार ग्रहण करनेवाले पुरुष सेनाके आगे, शकट सेना पीछे और दुर्गस्थित सेना बीचमें रहे; और पुरमें रहनेवाली जो सब सेना पुरमें गमन करे, वह पदातियोंकी रक्षा करे। जो सब मनस्वी शूरवीर बलवान पुरुष आगे रहनेकी इच्छा करें, और वे सब पहिले पैदल सेनाको घेरके स्थित रहें। और यत्न पूर्व्वक डराड्ड-ओंके उत्साहको बढ़ाना होगा, क्योंकि वे सब उत्साहित होने पर दल बांधके समीपमें ही स्थित होंगे। सेनापति थोड़ी सेना इकट्ठी करके शत्रुओंके साथ युद्ध करावे और उसे इच्छानु-सार अनेक भांतिसे विस्तारित करे, और बहु-तोंके सहित थोड़ी सेनाको सूचीमुख होकर युद्ध करना उचित है; इससे वह भी करे। निकृष्ट सेना युद्धमें तत्पर होके जब बाहु युद्ध करती रहे, तब उसके उत्साहको बढ़ानेके वास्ते सत्य वा मिथ्या ही हो, हमारा शत्रु बलरहित हुआ है, तुम लोग निर्भय होके प्रहार करो शत्रुओंके भागने पर ऐसा ही कहके हर्ष प्रकाश करे। बलवान पुरुष भया-नक शब्द करते हुए शत्रुओंकी ओर दौड़ें; ताड़ी; तलत्राण गोश्रृङ्ग आदि शब्द किये जावें, और आगे चलनेवाले पुरुष लोग मृदङ्ग, भेरी और ढोल आदि बाजे बजावें।

१०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे रूप कैसे स्वभाव, किस प्रकारके आचार, कैसे कवच और किस भांतिके शस्त्रअस्त्रों शूर लोग युद्ध करनेमें समर्थ होते हैं?

भीष्म बोले, युद्धमें वीर पुरुष देशाचार और कुलाचारसे युक्त होके जैसे शस्त्र तथा वाहन आदि सब सामग्रियोंको संग्रह करके युद्ध कार्य्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसे सुनो। गान्धार, सिन्धु और सौवीर देशीय वीर लोग नखर और गाड़से युद्ध किया करते हैं, वे सब युद्ध करनेमें निडर और अत्यन्त बलवान हैं; तथा सब युद्धके जाननेवाले हैं। उशीनर देशीय शूर लोग सब शस्त्रोंके जाननेवाले और बलवान हैं। प्राग्देशीय योद्धा लोग हाथियोंके युद्धमें निपुण और कूटयोधी हैं। काम्बोज, यवन और मथुरा वासी शूर पुरुष प्राग्देशिय योद्धाओंकी भांति युद्ध किया करते हैं। दक्षिणी लोग तलवार और बाहु युद्धमें अत्यन्त निपुण हैं।

हे युधिष्ठिर! सभी स्थानामें इसी भांति महापराक्रमी महाबलवान पुरुष प्रायः उत्पन्न हुआ करते हैं; अब उनके यथोक्त लक्षण सुनो। वे सब ही प्राणियोंको पीड़ित करनेवाले, उनका बोलना, चलना और देखना सिंह और शार्दूलके समान, नेत्र कुलिङ्ग और पारावत पक्षीकी तरह होते हैं। स्वर हरिनके शब्द समान, आंख हाथी तथा ऋषभनेत्रके समान

होता है ; वे सब ही प्रमत्त, मूढ़, क्रोधी, क्रोध-मुखी शरभकी भांति होते हैं ; किङ्किणी और बादलकी भांति शब्द करनेवाले दूरगामी तथा दूरपाती होते हैं । उनकी नाक चौड़ी जीभ नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करनेवाली शरीर बिड़ालके समान ; कुजा, केश, त्वचा अत्यन्त सूक्ष्म और वृत्ति शीघ्रतायुक्त तथा चपल हुआ करती है । उनमेंसे कोई कोई गोधाकी भांति निमीलित, कोमल स्वभाव, तुरङ्गकी तरह गमन और शब्द करनेवाले तथा सब युद्धके जाननेवाले हुआ करते हैं । और उनमेंसे जो लोग सुसंहत उत्तम शरीरसे युक्त, सुन्दर दृढ़ अवयव और बड़ी छातीवाले हैं, वे प्रवादके समय कोपित और झगड़ेके समयमें हर्षित हुआ करते हैं । गम्भीर लोचन, कढ़े नेत्र, पिङ्गाक्ष, भृकुटी मुख, नकुल नेत्र, युद्धमें शरीर त्यागनेवाले, कुटिल दृष्टि, पृथुललाटवाले, मांसरहित दाढ़ोंसे युक्त, वज्रकी तरह भुजा अङ्गुली चक्रसम्पन्न, कृश, शिराल और दुरासद होते हैं ; ये सब शूर लोग युद्ध उपस्थित होनेपर हाथीकी भांति मतवाले होकर वेगके सहित उसमें प्रवेश करते हैं । जिनके केशान्त प्रकाशमान और स्फुटित, पार्श्व स्थल स्थूल, मुख दाढ़ड़ीयुक्त, सर हिस्से उन्नत ग्रीवास्थल पृथु, विकटरूप, स्थूल और पिण्डाकार, स्वभाव वासुदेव तथा गरुड़की भांति उद्दत, वर्त्तुलाकार सिर, मुख बिड़ालकी तरह बड़ा और स्वर कठोर होता है ; वे उग्र स्वभावयुक्त, मनस्वी, शब्दके अनुसार बाण चलानेवाले, अधार्म्मिक, गर्व्वित भयङ्कर, रौद्रदर्शन युद्धमें शरीर त्यागनेवाले युद्धसे न भागनेवाले अन्त्यज जातीय योद्धा लोग सदा सेनाके मुखस्थलमें स्थित हुआ करते हैं । हे युधिष्ठिर ! अधार्म्मिक भिन्न वृत्त पुरुष शान्त वचनसे वशमें नहीं होते ; बल्कि वे लोग शान्तवाक्यसे राजाके ऊपर अत्यन्त क्रोधित हुआ करते हैं ।

१०१ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! जय शील सेनाके कौन लक्षण श्रेष्ठ होते हैं उसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं ।

भीष्म बोले, हे भरतावतंस ! जयशील सेनाके जो सब लक्षण श्रेष्ठ हैं, उसे पूर्ण रीतिसे कहता हूं । हे राजन् ! दैवके प्रतिकूल तथा मनुष्योंके कालप्रेरित होनेपर विद्वान पुरुष ज्ञानमय दिव्य-नेत्रसे उसका अनुसन्धान विशेष रूपसे मालूम कर उसे निवारण करनेके वास्ते प्रायश्चित्त, जप और होम आदि मांगलिक कार्य्योंको करके उसकी शान्ति किया करते हैं । हे भारत ! जिस सेनामें वाहन और योद्धा लोग सदा उत्साहपूर्व्वक निवास करते हैं, उस सेनाकी निश्चय ही उत्तम विजय हुआ करती है ! जब वायु, इन्द्रधनुष, बादल और सूर्य्यकी किरण सेनाके अनुगामी होती है, तथा शियार और गिद्ध आदि अनुकूल होकर उसकी अर्च्चना करते है ; तभी वह उत्तम सिद्धि लाभ किया करती हैं । हे युधिष्ठिर ! अग्नि प्रसन्न किरण, उर्द्ध रश्मि, दक्षिणावर्त्त शिखासे युक्त और धूंए-सेरहित होने तथा आहुतिकी पुण्य गन्ध प्रवाहित होनेपर पण्डित लोग उसे भावी जयके लक्षण कहा करते हैं । गम्भीर शब्दवाले भेरी और शंख आदिके बजने तथा युयुत्सुओंके अनुकूल होनेसे ही पण्डित लोग उसे भावी जयका रूप कहते हैं । मृगोंके समूह युद्धप्रस्थित पुरुषोंके पीछे, जो संग्रामके वास्ते गमन करें उनके बांई ओर ; तथा जिघांसु पुरुषके दाहिनी ओर रहनेसे ऊपर कहे हुए सब कार्य्य इष्टसिद्धिसूचक होते हैं ; और अगाड़ी रहनेपर पण्डित कहे हुए कार्य्योंमें प्रतिषेध किया करते हैं । शकुन, हंस, क्रौञ्च, सारस और स्वर्णचातक आदि पक्षियोंके मांगलिक शब्द करने और बलवान योद्धाओंके हर्षित होनेपर पण्डित लोग उसे भविष्य जयके लक्षण कहा करते हैं । जिसकी सेनाका समूह शस्त्र, यन्त्र, कवच, पताका

और सुवर्णमण्डलको उज्ज्वल किरणोंसे प्रकाशित होकर शत्रुओंको भयानक दीखता है, वही शत्रुओंको पराजित कर सकते हैं। शूर पुरुषोंके स्वामीसेवामें रत, अभिमान रहित, आपसमें सुहृदभावयुक्त और पवित्र आचार वाले होनेपर पण्डित लोग उसे भावी जयका लक्षण कहा करते हैं। मनके प्रसन्न करनेवाले शब्द, स्पर्श और गन्ध प्रवाहित होने और योद्धाओंके धैर्य्यशाली होनेपर बुद्धिमान पुरुष उसे विजयका रूप कहा करते हैं। कौआ संग्राममें प्रविष्ट हुए पुरुषके बाईं ओर तथा जो युद्धमें प्रवेश करेंगे, उनको दाहिनी ओर रहनेसे इष्ट साधन करता है; और पीछे रहनेपर अर्थबाधा तथा अगाड़ी रहनेपर प्रतिषेध करता है। हे युधिष्ठिर! पहिले महत् चतुरङ्गिनी सेना संग्रह करके उसे सामके जरिये स्थापित करे और तिसके अनन्तर युद्धमें नियुक्त करे। हे भारत! रणभूमिमें युद्ध करते करते यदृच्छा क्रमसे वा दैवी संयोगसे जो जय होती है, वह अधम जय करके गिनी जाती है। भागती हुई बड़ी सेना जलके वेग और डरे हुए महामृगोंकी भांति दुःखसे निवारित होती है। उरु-जङ्घा समान उदार सारयुक्त भागती हुई बड़ी सेना विदुषी होनेपर भी रणभङ्ग किया करती है; विद्या रहनसे जो रणभङ्ग नहीं करती, ऐसा कोई कारण निर्द्दिष्ट नहीं है। आपसमें परिचित, हर्ष युक्त, प्राण त्यागनेवाले, सुनिश्चित, पचास शूर पुरुष युद्धमें बहुतसी शत्रुसेनाको नाश करनेमें समर्थ होते हैं। यहांतक कि युद्धमें कृतनिश्चय, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सम्मानित पांच छः, वा सात शूर पुरुष ही युद्ध करनेपर अनायास ही बहुत सी शत्रुसेना जय कर सकते हैं। दूसरी भांतिके उपायसे किसी प्रकार युद्धकी अभिलाष न करे, क्योंकि साम, भेद और दान इन सबके अनन्तर युद्ध विहित हुआ करता है, जैसे "शम्बलित बकसे चिड़ियां कभी गिरेंगी"—इसी भयसे कादर पुरुष बाध्य होते हैं; वैसे ही सेनाके बीच भय दिखाके कादरोंको बाधित करे। शत्रुसेनाको युद्धके वास्ते आती जानके जो लोग उसकी ओर गमन करते हैं, उन सब योद्धाओंका शरीर खिन्न हुआ करता है। हे राजन्! स्थावर और जङ्गमके सहित विषय अर्थात् सब देश अनेक भांति अस्त्र तापसे व्यथित होता है और अस्त्रतापसे तापित देहधारियोंकी मज्जा अवसन्न होजाती है। जो लोग शत्रुओंसे पीड़ित होकर उनके साथ सब भांतिसे सन्धि करते हैं; उनके साथ कठोरता मिले हुए सामभावका बार बार प्रणय करना उचित है। अनन्तर शत्रुओंमें भेद करानेके वास्ते दूत भेजे; शत्रुओंके बीच जो प्रधान होवे, उसहीके साथ राजा सन्धि करे। यदि ऐसा न हो, तो जिससे शत्रुके साथ सब भांतिसे प्रतिकूलता होवे, उसी भांति शत्रुओंको पीड़ित करना असाध्य होजाता है। हे पार्थ! क्षमा साधुओंके समीपमें ही सदा समागत होती है, दुष्टोंके निकट कभी समागत नहीं होती; इससे क्षमा और अक्षमा दोनोंके प्रयोजनको मालूम करो। जो राजा जयलाभ करके क्षमा अवलम्बन करता है उसका यश विशेषरूपसे बढ़ता है और शत्रु लोग महा अपराध रहनेपर भी उसका विश्वास किया करते हैं। दैत्यवर शम्बरने ऐसा मत स्थिर किया है, कि पहिले शत्रुको दुःखित करके फिर क्षमा करनीही उत्तम कार्य्य है; क्योंकि टेढ़ी बांस आदि लकड़ियोंको न जलाके सरल करनेसे वे सब फिर सीधी हुआ करती हैं। हे युधिष्ठिर! आचार्य्य लोग इस शम्बर मत और साधु निदर्शनकी प्रशंसा नहीं करते; परन्तु वे लोग ऐसा कहते हैं कि क्रोध वा नाश न करके शत्रुओंका निज पुत्रके समान पालन करना उचित है। हे राजन्! राजाके प्रचण्ड होनेपर सब प्राणी उससे द्वेष करते हैं और कोमल होने पर भी

सब कोई उसकी प्रशंसा किया करते हैं इससे राजा उग्रता और मृदुता दोनोंका ही आचरण किया करे।

हे भारत! शत्रुओंके ऊपर प्रहार करनेके पहिले और प्रहारके समय प्रिय वचन कहे, तथा प्रहार करके रोदन और शोक प्रकाश करके उन पर कृपा करे। और घायल तथा प्रहार करनेवाले पुरुषोंका गुप्त रीतिसे सम्मान करके यह वचन कहे, कि मेरी सेनाने युद्धमें शूर पुरुषोंको मार कर मेरा अत्यन्त ही अनिष्ट किया है, मैंने बार बार उन लोगोंसे कहा है, उन्होंने मेरे वचनको रक्षा न की। ओहो! युद्धमें पीछे न हटनेवाले उत्तम पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, मैं उनके जीवनकी अभिलाष करता हूं, ऐसा वध अत्यन्त अयोग्य हुआ है। जिन्होंने युद्धमें इन शूरवीरोंको मारा है, उन्होंने मेरे अनिष्टके अतिरिक्त इष्ट नहीं किया है, ऐसा वचन कहके गुप्त रीतिसे प्रहर्त्ता पुरुषोंको सम्मानित करे। और पुरुषोंको संग्रह करनेकी इच्छावाले पराक्रमी राजा मेरे और प्रहर्त्ता पुरुषोंके वास्ते ऐसा ही करके अपराधी पुरुषोंकी दोनों भुजा गृहण करके उनके ऊपर आक्रोश प्रकाश करे। निर्भय धर्मात्मा राजा इसी प्रकार सब अवस्थामें ही शान्तना युक्त कार्य्य करनेसे सब प्राणियोंके प्यारे होते हैं। वे इच्छानुसार भोग कर सकते और सब कोई उनका विश्वास किया करते हैं। इससे जो राजा पृथ्वी भोग करनेके अभिलाषी होवें वे कपटरहित होके सबको ही विश्वासित करें और सब तरहसे प्रजाकी रक्षा करें।

१०२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! प्रबलपक्षवाले शत्रुके कोमल वा कठोर होने पर राजा पहिले उसके साथ कैसा आचरण करे? वह मुझसे यथार्थ कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें पण्डित लोग इन्द्र और बृहस्पतिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास वर्णन किया करते हैं, उसे सुनो। शत्रुओंके नाश करनेवाले देवराज अधिपतिने बृहस्पतिको प्रणाम कर हाथ जोड़के उनसे पूछा, हे ब्रह्मन्! मैं सावधान होके शत्रुओंके साथ किस प्रकार प्रवृत्त होऊंगा और उन लोगोंको जड़ सहित नष्ट न करके फिर किस उपायसे उन्हें दमन करूंगा? दोनों सेनाके इकट्ठी होकर संग्राम करने पर साधारणकी जय हुआ करती है, इससे मैं क्या करूं, जिससे लक्ष्मी लज्जित और सन्तापित होकर मुझे परित्याग न करे?

धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग कुशल, प्रतिभाशाली राज-धर्मके जाननेवाले बृहस्पतिने सुरपतिसे कहा, हे देवराज! राजा कलहसे अहित पुरुषोंको दमन करनेकी अभिलाष न करे, क्यों कि बालक ही क्रोध और अक्षमाकी सेवा किया करते हैं। शत्रुवधकी इच्छा करनेवाला राजा शत्रुओंको सावधान न करे; क्रोध, भय और हर्षको निज शरीरमें छिपाते हुए उन लोगोंका विश्वास न करके विश्वस्तकी भांति उनके साथ व्यवहार करे, उन लोगोंसे सदा प्रियवचन कहे; उनके साथ कोई अप्रिय आचरण न करे, निष्फल बैरसे विरत होवे और मूर्खता परित्याग करे। हे इन्द्र! जैसे उपयुक्त मांस बेचनेवाला व्याधपक्षियोंकी तरह शब्द करते हुए विहङ्गोंको अपने वशमें करके उनका वध करता है, वैसे ही उपयुक्त राजा शत्रुओंको वशमें करके उन लोगोंका वध करे। हे वासव! राजा शत्रुओंको पराभव करके सदा सुखकी नींद न सोवे दुष्टात्मा शत्रुलोग उठी हुई अङ्गराग्निकी भांति सदा ही जागते रहते हैं। जयका निश्चय न होनेपर युद्ध करना उचित नहीं है, इससे उन लोगोंका विश्वासपात्र और मित्र होके

उन्हें वशीभूत करके अर्थ-साधनमें प्रवृत्त होवे। शत्रुओंके उपेक्षा वा अवज्ञा करनेपर भी मनसे पराजित न होकर महात्मा मन्त्र जाननेवाले मन्त्रियोंके सहित मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर शत्रुओंके तनिक विचलित होनेपर ही उस समय उनके ऊपर प्रहार करे और आप्तकारी पुरुषोंके जरिये उनकी सेना तथा दण्ड दूषित करे। राजा शत्रु आदिके मध्य और अन्तको मालूम कर गुप्त भावसे मन ही मन विषम भाव धारण करके उन लोगोंका सब बल प्रमाणके अनुसार जानके भेद, दान अथवा औषधिके जरिये उन लोगोंको दूषित करे; परन्तु शत्रुओंके साथ कभी संसर्ग करनेकी अभिलाषा न करे। शत्रुओंको मारनेके वास्ते बहुत समय तक उपेक्षा करे, वे लोग जिस प्रकार विश्वास लाभ करें वैसे ही कार्य्योंको करते हुए बहुत समयकी आकांक्षा करके समय बितावे। सब शत्रुओंको नष्ट न करके उन लोगोंको विजय प्रदर्शित करे। हे देवेन्द्र! राजा शत्रुओंके ऊपर शस्त्र न चलावे और वाक्यवाणसे भी उन्हें घायल न करे; शत्रुवधकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके शत्रु नाशका समय बीतनेसे वह फिर नहीं प्राप्त होता; इससे समय उपस्थित होनेपर ही राजा शत्रुओंके ऊपर प्रहार करे, कभी समयको न बीतने देवे। जो समय समयकी अभिलाष करनेवाले पुरुषको अतिक्रम करता है, कार्य्य चिकीर्षु पुरुषके वास्ते फिर उस समयका मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। असमयमें शत्रुके प्राप्त होनेपर राजा साधुसम्मत सामर्थ्य संग्रह करके उसे शिक्षित करे, परन्तु उन लोगोंको पानेसे स्वकार्य्य साधन वा उन्हें पीड़ित न करे। योग्य राजा काम क्रोध और अभिमान त्यागके बारबार शत्रुओंके छिद्रका अनुसन्धान करे। हे देवताओंमें उत्तम शक्र! मृदुता दण्ड, आलस्य और प्रमाद ये चारों तथा छल आदि इतर रीतिसे विहित हुई हैं; ऐसी सब मूर्ख पुरुषोंको अवसन्न किया करती हैं। इससे राजा मृदुता आदि ऊपर कहे हुए चारों गुणोंको दमन करके तथा समस्त माया परित्याग करनेसे ही शत्रुओंके वध करनेमें समर्थ होते हैं। राजा अकेले जहांतक मन्त्रको गोपन करनेमें समर्थ होसके, वहां तक गोपन करे; क्योंकि मन्त्री लोग गुप्त मन्त्रोंको गोपन करते और आपसमें प्रकाश भी किया करते हैं। परन्तु अकेले विचार विषयमें एकबारगी असमर्थ होनेपर दूसरेके साथ मन्त्रणा करे। अनन्तर शत्रुओंके अदृष्ट अर्थात् दूर होनेपर उनके ऊपर ब्रह्मदण्ड अभिचार आदि प्रयोग करे; और निकटमें रहनेपर उनकी ओर चतुरङ्गिनी सेना नियुक्त करे। राजा पहिले शत्रुओंके ऊपर भेद और साम दोनोंको ही प्रयोग करे; फिर युद्ध उपस्थित होनेपर उस शत्रुके ऊपर सेना नियोग करनेमें प्रवृत्त होवे राजा समयके अनुसार शत्रुके निकट प्रणत होवे; परन्तु शत्रुके प्रमत्त होनेपर राजा प्रमत्त होके उसके वधका अनुसन्धान करे। राजा प्रणिपात; दान और मीठे वचनसे शत्रुओंकी प्रसन्नता सिद्ध करे परन्तु कदापि उन्हें शङ्कित न करे। जो सब शत्रु शङ्कित हुए हैं, राजा वैसे शत्रुओंके स्थान पर न जावे, उनका कभी विश्वास न करे; क्योंकि वे लोग शङ्कायुक्त होके सदा ही सावधान रहते हैं। हे सुरपति! शङ्कित शत्रुओंके वास्ते कठिन कार्य्य कुछ भी नहीं है; ऐसा कहा गया है, कि विविधवृत्त मनुष्योंके ऐश्वर्य्य की भांति वे लोग योग अवलम्बन करके फिर शिक्षित होनेके वास्ते यत्न किया करते हैं। हे सुरोत्तम! इससे राजा मित्र और शत्रुके विषयमें विशेष करके विचार करे। हे सुरराज! राजाके मृदुस्वभाव होनेपर प्रजा उसकी अवज्ञा करती है और कठोर स्वभाव होने पर उससे व्याकुल हुआ करती है; इससे तुम केवल